

## प्रस्तावना

इतिहास—संस्कृत के प्राचीन विद्वान् कुट्टनीमतम् से भली प्रकार परिचित थे, उन्होंने इसको बहुत स्थानों पर उद्धृत किया है।<sup>१</sup> बाद में यह बहुत समय तक एक प्रकार से लुप्त रहा। सन् १८८३ में डा० पोर्टमन को संस्कृत पुस्तकों की खोज करते समय ताटपत्र पर लिखी इसकी प्रति मिली। इस हस्तलिखित प्रति में पुस्तक का नाम "सम्भलीमतम्" दिया था। यह प्रति अधूरी थी। अपनी रिपोर्ट में डा० पोर्टमन ने इसका उल्लेख किया है।<sup>२</sup>

महामहोपाध्याय पण्डित दुर्गाप्रसाद, जयपुर निवासी ने १८८६ में इसकी दो हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त की। इन हस्तलिखित प्रतियों में पुस्तक का नाम 'कुट्टनीमतम्' था। ये दोनों प्रतियाँ अधूरी और अशुद्ध थीं। फिर भी सन् १८८७ में काव्यमाला गुच्छ तीन में इसका प्रकाशन किया गया, क्योंकि यह रचना प्राचीन और सुन्दर थी।

सन् १८९७-९८ महामहोपाध्याय श्रीहरप्रसाद शास्त्री ने अपनी नेपाल-यात्रा में संस्कृत पुस्तकों की खोज करते समय इसकी एक प्रति प्राप्त की। यह प्रति सबसे पुरानी प्रतीत होती है।<sup>३</sup>

श्री तनमुखराम त्रिपाठी ने सामान्य विद्यार्थियों के उपयोग के लिए इस ग्रन्थ को टिप्पणों के साथ प्रकाशित करने का विचार किया। इसीलिए उनके मित्र काशीवासी श्री बाबू गोविन्दराम ने इसकी टिप्पणों तैयार करवाई। परन्तु

१ कुट्टनीमतम् के आर्थाङ्क	प्रतीक	उद्धृत स्थान
६६७	अतिकौमल ( फलव )	का प्र ७२०२
१०३	अपसारय	का. प्र ८६७, ११८०
१६५	एकामात्र	सुभा १०७१
८३३	बुलपतन	पञ्चतन्त्र ५२०
८१७	वर्कल प्रवर्धति	पञ्चतन्त्र १११५
८२०	सविवादे परलोक्ष	पञ्चतन्त्र ११३६

२ संस्कृत की पुस्तकों की खोज की डा० फिन्सन का रिपोर्ट—दम्बई विभाग—१८८३-८४, पृष्ठ २३।

३ रायल एशियाटिक सामाजिकी द्वारा प्रकाशित कुट्टनीमतम् काव्य की भूमिका के अनुसार।

श्री त्रिपाठीजी को इस टिप्पणी से सतोप नहीं हुआ उन्होंने स्वयं विस्तृत व्याख्या संस्कृत में लिखकर इसे बड़ परिश्रम और मुदरता से प्रकाशित किया ।

**काव्य का नाम**—कल्हण ने अपनी राजतरंगिणी में इस काव्य का नाम कुट्टनीमतम लिखा है इसीलिए कुट्टनीमतम नाम से यह काव्य ख्यात हुआ । कुट्टनी और गम्भीरी दोनों ही गद्य समानाधिक हैं । एक बया द्वारा दिया हुआ परामर्श—इस काव्य का सार है ।

**ग्रन्थकर्ता का समय**—कुट्टनीमत काव्य के निमाण के समय की परिस्थिति का ज्ञान हमको कल्हण की राजतरंगिणी से मिलता है । इसके अनुसार जयापीड राजा से पूर्व जिन दो-तीन राजाओं ने राज्य किया था वे बहुत अयायी अयाचारी लम्पट और कामुक थे । जयापीड ने अपने पास विद्वानों तथा कवियों को आश्रय दिया । उसने ही इस काव्य के कर्ता दामोदर गुप्त को अपना प्रधान मंत्री भी बनाया । जयापीड प्रारम्भ में बहुत ही पवित्र एवं धर्मात्मा थे । परन्तु अपने जीवन के अन्तिम काल में वे लम्पट बन गये थे तथा इन्द्रिय सुख में ही रत रहने लगे थे । जयापीड के पाछ ललितादिय गद्दी पर बैठा था । इसके विषय में कल्हण ने लिखा है कि वह कुट्टनियों से घिरा रहता था । उसकी मित्रता उन लोगों से थी जो वश्याओं की कथाएँ कहने में दक्ष थे । वह थोड़ी स्त्रियों से सन्तुष्ट नहीं होता था ।

राजा का ही अनुकरण अथ राजकुमारों ने किया युवा राजकुमारों ने तथा धनी पुरुषों ने भी राजा का अनुकरण किया । कुट्टनीमतम में जहाँ उच्च समाज का चित्रण मिलता है वहाँ पर छोटे समाज का चित्रण भी मिलता है । जयापीड के समय बहुत से कवि हुए और बहुत से काव्य बने । परन्तु कुट्टनीमतम के सिवाय उनके समय का कोई काव्य अभी तक नहीं मिला । इसलिए इस ग्रन्थ के सिवाय अथ किसी भी प्रकार से हम उस समय की स्थिति का ठीक पता नहीं लग सकता ।

**ग्रन्थकर्ता का उद्देश्य**—दामोदर गुप्त इस अनतिक गिरावट से बहुत दुःखी था इसीलिए उन्होंने कुट्टनीमतम में लम्पट मनुष्यों का चित्रण किया है । कुट्टनी विकराला के मुख से कवि ने चतुरता कपट छल मनुष्यों की निबलता आदि की सब बातें कहलवाई हैं । कवि ने इस काव्य को लिखने का स्पष्ट उद्देश्य अन्त में लिखा है कि—

१ कुट्टनी गम्भीरी संगे —अमरबोध गम्भीरी गणिकानामुपदेशदायिना कुट्टनी इति कविश्च वासवच्छा की व्याख्या में श्रीकृष्णचरि ।

काव्यमिदं यं शृणुते सम्यक् काव्यार्थपालनेनासौ ।

नो वञ्च्यते कदाचिद् देश्याधूर्त्तकुट्टनीभिरिति ॥ १०५९ ॥

जो मनुष्य इन काव्य को सुनता है और ठीक प्रकार से इस पर चलता है वह कभी भी वश्या, धूर्त्त और कुट्टनियों से ठगा नहीं जाता ।

कवि—राजतरंगिणी के अनुसार दामोदर गुप्त जयापीड राजा का मनी था । इसके समकालीन यातुपाठ के कर्त्ता भट्ट, उद्भट भी इसी समय हुए । तीसरे पण्डित मनोरथ थे, जिनके कुछ पद्य क्षेमेन्द्र ने औचित्यविचारचर्चा में उद्धृत किये हैं । चौथे पण्डित वामन थे, जिन्होंने अल्कार सूत्र बनाया और पाणिनि की अष्टाध्यायी पर वाशिकान्वृत्ति सम्मिलित रूप में लिखी<sup>१</sup> ।

कल्हण की दी हुई वशावली के अनुसार जयापीड ने ७५१ से ७८२ ईस्वी परचात तक राज्य किया । परन्तु कुछ लोग इन वशावली को ठीक नहीं मानते, उनके मत से जयापीड ने ७७९ से ८१३ ईस्वी परचात तक राज्य किया (स्टेइन लिखित राजतरंगिणी की भूमिका) । यहाँ काल दामोदर गुप्त का है ।

कवि ने अपने सम्बन्ध में कोई भी परिचय नहीं दिया । राजतरंगिणी में कवि का सम्बन्ध में एक ही श्लोक है, जिससे इतना ही पता चलता है कि वे जयापीड के मनी थे । पुस्तक के अन्त में दो हुई पुष्पिका भी इसी को पुष्ट करती हैं ।<sup>२</sup>

कवि दामोदर गुप्त की बनाई दूसरी कोई रचना अभी तक उपलब्ध नहीं । बल्भदव ने अपनी सुभाषितावली में कवि के चार श्लोक उद्धृत किये हैं । इससे अनुमान होता है कि सम्भवत इनकी अन्य भी रचनाएँ रही हों<sup>३</sup> ।

काव्यरचना—शामान्यतः भाषा सरल है, शब्दों एवं कठिन समासों से रहित है । षोडश स्थानों पर अप्रसिद्ध शब्दों का उल्लेख है (सुम्निका-६४, उच्चष्ट-६६, ) । शब्दरचना सुगम एवं मनोहर है । कुट्टनीमतम् में शृंगार रस

१ क्षीरामिशाच्छब्दविषयोऽध्यायात्मशृङ्गुत ।

तुभै सह ययौ वृद्धिं स जयापीडपण्डित ॥ राजतरंगिणी ४०६,

विद्वान्दीनारक्षेण प्रवदं वृत्तवेतन ।

भट्टोऽभूद्धर्मस्तस्य भूमिभद्रुं सभापति ॥

स दामोदरगुप्ताख्य कुट्टनीमतपरिणम् ।

कवि कवि कीर्तिरिव धूर्त्त धीर्माचन व्यधान् ॥

मनोरथ शरादत्तश्चक सन्धिमास्थथा ।

कभूत्त कवयस्तस्य वामनायाश्च मनिषा ॥ रा त ४६४, ४६६, ४६७

इति श्रीशारदाप्रहामण्डकमहोमण्डनराजशयापाडमन्त्रिप्रवरदामोदरगुप्तकविविरचित कुट्टनी मत समाप्तम् ।

श्री मणेश्वराय रामकृष्ण तैल्य की भूमिका के आधार पर

की प्रदानता है कवि बहुत मूढमदर्शी तथा अनुभवी है, उसने अपनी रचना को अन्त तक बहुत ही सुन्दरता से पूर्ण किया है।

प्रोफेसर कीय ने कुट्टनीमतम् को उपदेशक प्रबोधक काव्य की श्रेणी में रक्खा है, उसने कहा है—

कामरौर के राजा जयापीड ( ७७९-८१२ ) के मंत्री दामोदर गुप्त का कुट्टनामत अपभाषित अधिक रोचक कृति है। उसका समय भी निश्चित है। भारतीय वेश्या-साहित्य का यह एक प्राचीन ग्रन्थ है। इसमें एक युवती वेश्या को शिक्षा दी गई है कि उसे धरावर केवल सम्पत्ति की इच्छा रखते हुए ही किस प्रकार चाटुकारिता की समस्त कलाओं के प्रयोग और कृत्रिम प्रेम द्वारा अपने लिये धन कमाना चाहिये। कल्हण ने एक कवि के रूप में दामोदर गुप्त का उल्लेख किया है और मम्मट ह्यदक तथा सुभाषित सग्रहा में उनके उद्धरण दिये हैं। इससे स्पष्ट है कि इनकी कृति न पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त की थी। साहित्यिक इतिहास की दृष्टि से उक्त काव्य का महत्त्व यह है कि उसमें हर्ष को रत्नावली के प्रदर्शन की एक प्रभावक और वास्तविक ढंग से चित्रित किया गया है। कवि की शैली सरल पर अरमणीय नहीं है। उसके कुछ पद्यों में अपरिष्कृतता या ग्राम्यदोष के रहन पर भी वृद्धि और नर्मोक्ति दोनों विद्यमान हैं।

संस्कृत साहित्य का इतिहास भाग २ पृष्ठ २८२-२८३

कामशास्त्र सम्बन्धी साहित्य संस्कृत में पर्याप्त है। पुरुषार्थचतुष्टय में धर्म के लिये मनु, बृहस्पति, याज्ञवल्क्य, पाराशर के नाम से स्मृतियाँ बनी, उसी प्रकार काम के क्षेत्र में वात्स्यायन, वाग्भय, धनुक, दत्तक आदि ने इसके भिन्न भिन्न अंगों को लेकर ग्रन्थ बनाये। इनमें दत्तक ने पाटलीपुत्र की वेश्याओं की प्रायना पर पृथग् ग्रन्थ रचना की थी। वेश्याओं की शिक्षा के लिये क्षमेन्द्र ने समयमातृका लिखी। इसी कवि ने नर्ममाला में वेश्याओं का चित्र भी चित्रित किया है। इन सबका उद्देश्य एक ही था, मनुष्य इनको पहचानकर इनकी बुराइयों से परिचित हो जाय और इस रास्ते पर पैर न बढ़ायें। इसी श्रेणी में शृंगारदीपिका, रतिमञ्जरी, अनगरग, रतिरहस्य, रतिसास्त्र, पंचसायक आदि रचनाएँ हैं।

प्राचीन काल में संस्कृति के दो ही स्थान थे, एक वाराणसी और दूसरा पाटलीपुत्र या कुसुमपुर। कुसुमपुर का नाम मुद्राराक्षस में भी आता है। इन्हीं दो स्थानों का केन्द्र रखकर कुट्टनीमतम् की रचना की गई है। इसमें प्राचीन काल

था। इसी से स्थान स्थान पर सस्कृत के अन्य ग्रन्थों से प्रसंगानुकूल उद्धरण टिप्पणी के रूप में दिये हैं। इससे इतना लाभ जरूर मिला कि सस्कृत के कुछ नये ग्रन्थ देखने में आ गये। उनसे यह स्पष्ट हो गया कि यह विषय महत्व का है और इस विषय में बहुत अधिक सामग्री सस्कृत साहित्य में सुरक्षित है, जिनका क्रि. उपयोग इस जमाने में हमको करना चाहिये<sup>१</sup>।

अनुवाद के विषय में मुझे स्वयं कुछ नहीं कहना—मैंने अभी तक आयुर्वेद साहित्य में कार्य किया है यह अनुवाद इस विषय में मेरा पढ़ा है। सम्भवतः इसमें भाषा या अन्य प्रकार की कुछ त्रुटियाँ या स्वल्पन रह गया हो, जो कि पाठकों के सुझाव पर अगले मस्करण में सुधार दिया जायेगा। मुझे यही सन्तोष है कि हिन्दी साहित्य में यह अनुवाद प्रकाशित हो रहा है।

मेरी नम्र प्रार्थना को स्वीकार करके, समय न होत हुए भी डाक्टर श्री मूयकान्त जी, डिप्टि प्रिन्सिपल भारतीय महाविद्यालय ने (काशी हिन्दू विश्व-विद्यालय) इसकी जो प्रस्तावना लिखी, उसके लिए मैं बहुत आभारी हूँ। इसके साथ ही प्रकाशक श्री रामेश्वर सिंह (इन्डोलाजीकल बुक हाऊस वाराणसी) का भी उपकार मानता हूँ कि उन्होंने पुस्तक को उत्तमता से समय पर प्रकाशित किया।

अत्रिदेव विद्याकार

# विषयानुक्रमिका



	पृष्ठाङ्क	पृष्ठाङ्क
मंगलाचरण [ कामदेव सम्बन्धी ],	१	१
प्रथमका की प्रार्थना [ काव्य का प्रारम्भ ]	२	१
वायव्यसी [ काशी ] का वर्णन	३ १६	२५
मालती नामक वेश्या का वर्णन	२० २१	६
प्रसंगपर किसी अन्य स गद्द वेश्याओं को कामुक दृष्ट्य से जीतने न उपाय जानने चाहिये	२२ २३	६
इस आया का सुनना और		
इसलिये कुट्टनी के उपदेश का जानने का इच्छा से		
निकराला नामकी कुट्टनी न घर जाना	२४ २६	६७
निकराला नामकी कुट्टनी का वर्णन	२७ ३०	७
उसके घर में जाकर मालती का बैठना	३१	८
मालती का कहना प्रारम्भ करना	३२	८
प्रारम्भ में निकराला की प्रशस्ति	३३ ३६	८६
मालती का धरना मन्त्रन कहना	४० ४२	९
निकराला का मालती को सन्तवना देना	४३	९
निकराला का प्रतिवचन काम'गनों को वश म करने वाले मालती के सान्ध्य का वर्णन	४४ ४७	९ १२
बाल	४४	९
कण्ठ	४५	१०
कान्ठान्ति	४६	१०
दशनशक्ति	४७	१०
सन्तान	४८	११
रान	४९	११
बाहु	५०	११
मध्यदेश	५१	११

	आर्याङ्क	पृष्ठ
रोमराज्जी	५२	११
जयन	५३	१२
ऊरु	५४	१२
जघायें	५५	१२
पैर	५६	१२
चाल	५७	१२
अतिशय धन लाभ के लिये भट्ट के पुत्र पिन्ता		
मणि को आकर्षित करने का उपदेश	५८ ६१	१३
चि तामणि के वश का वर्णन	६२ ६७	१३ १५
चिन्तामणि की चेष्टा का वर्णन	६८ ८७	१५ १८
चिन्तामणि को वश म करने के उपाय का कहना	८८	१६
पहले दूता को भेजने का आदेश	८९	१६
भेजी हुई दूती के करणीय कार्यों का उपदेश	९०	१६
दूती की बातचीत का उपदेश	९१ १०६	१६ १२
भट्टपुत्र के दशन से अपने को धन्य कहना	९१	१६
वेश्या के बुरे आचरणों म दासित मन वाले		
पुरुषों में वेश्या के विरह व्यथा का अनौचित्य—		
प्रकाशन	९२ ९५	१०
इसमें दुराशा से कहना	९६	२०
विरहाक्रान्ता मालती की अवस्था का वर्णन	९७ १०५	२० २२
मालती की जीवन रत्ना की प्रार्थना	१०६	२२
मालती के गुणों को कहना	१०७ १२५	१२ १५
मालती के गुणों का वर्णन	१०८	२२
शरीर	१०८	२२
लावण्य	१०९	२२
अलकावलि	११०	२२
वदन	१११	२३
नेत्र	११२	२३
अंबर	११३	२३
मध्य भाग	११४	२३
नितम्ब	११५	२३

	अध्यांक	पृष्ठांक
ऊदयुगल	११६	२४
सम्पूर्णरूप का वर्णन	११७-१२२	२४
मालती का कामशास्त्र आदि नाना कलाओं में निपुणता का वर्णन	१२३-१२५	२५
अपुण्यकारी पुत्रों के लिये मालती दुःप्राप्त है	१२६-१२७	२५
इतना सब कहने पर भी यदि भद्र का पुत्र मालती के प्रति उदासीन रहे, तब उपालम्भ रूप में दूतों के करणीय कार्यों का उपदेश	१२८	२६
उपालम्भ का दण्ड	१२९-१३३	२६
द्विज दूतों द्वारा साम विधि	१३४-१३७	२७
प्रलोभित भद्रपुत्र के घर में आने पर उसके आदर में करणीय कार्यों का विक्रयला द्वारा उपदेश	१३८-१४०	२८
मालती की माता को स्वामत चाटुभाषण आदि करने का उपदेश	१४१-१४८	२८-३०
मालती को नायक के समीप जाने का उपदेश	१४९-१५०	३०
वैश्वोचित स्वरूप का उपदेश	१५१-१६४	३०-३४
नायक के आकर्षण और रागवृद्धि के लिये वैश्वोचित वचनों का उपदेश	१६५-१६९	३४-३५
प्रेम की स्थिरता के लिये नायक से प्रार्थना करने का उपदेश	१७०-१७२	३५
गणिका में भी दीवने वाले स्नेह, दानिष्ठ आदि गुण कष्टरूप होने की भाँति त्वामादिक भी होते हैं, इनकी पुष्टि—	१७३-१७४	३५
गणिका का प्रेम स्थिर होता है, इसकी सिद्ध करने के लिये मालती द्वारा हारलता का आश्रयान कहना	१७५	३५

### [ हारलता-आश्रयान ]

पादलीपुत्र मदानगर का वर्णन	१७६-१९२	३६-३९
पुस्तर नामक ब्राह्मण का वर्णन	१९३-१९६	३९-४०
पुस्तर द्विज के दंश का वर्णन	१९७-२००	४०
पुस्तर के पुत्र मुन्दरसेन का वर्णन	२०१-२०९	४०-४२



	आपाङ्क	पृष्ठाङ्क
गुण पालित नामक सुन्दरसेन के मित्र का वर्णन	२१०	४२
प्रसंगवश किसी से गाई हुई आर्या में देशान्तर पर्यटन की स्तुति का सुन्दरसेन द्वारा श्रवण	२११ २१२	४२
सुन्दरसेन कृत पृथ्वी पर्यटन प्रयोजन वर्णन एवं पर्यटन के लिये गुणपालित से प्रार्थना करना	२१३ २१६	४२
गुणपालित द्वारा प्रवास में होने वाले हुएों का वर्णन	२१७ २२०	४२
अमीष्ट कार्य के करने में दत्तचित्त मनुष्यों को शयन आसन आदि की चिन्ता नहीं होती इस अभिप्राय की आर्या को किसी से गाते हुए सुन्दरसेन ने सुना	२२१ २२३	४२ ४४
मित्र सुन्दर सेन के साथ नाना प्रकार के कौतुक देखते हुए सम्पूर्ण पृथ्वी का भ्रमण करना	२२४ २३७	४४ ४६
सुन्दरसेन के साथ अर्बुदाचल (आबू) पर ग्राना	२३८	४६
गुणपालित कृत अर्बुदाचल का वर्णन	२३९ २४६	४६ ४७
अर्बुदाचल में स्थित मुनिया का वर्णन	२४७ २४९	४७
अर्बुदाचल उपत्यका का वर्णन	२५० २५३	४७ ४८
इस प्रकार वर्णन करते हुए प्रसंगवश किसी से गाई हुई आर्या में जो अर्बुदाचल के प्रष्ट भाग को नहीं देखते, उनका बहुदेश पर्यटन व्यर्थ है, इस अर्थ की आर्याको सुन्दरसेन ने सुना	२५४ २५५	४८ ४९
सुन्दरसेन का मित्र के साथ अर्बुदाचल की चोटी पर स्थित देवालय आदि की शोभा देखने के लिये जाना	२५६-२५७	५०
वहाँ पर उद्यान में खेलती हुई अति रमणीय हारलता की देखना	२५८ २६१	५०
हारलता को देखकर कामने यशाभूत सुन्दर सेन द्वारा उसके सौन्दर्य का वर्णन	२६० २६६	५० ५१
सुन्दरसेन का अनुराग जानकर कामपोटित हारलता की सात्विकभावादि विविध कामावस्था का वर्णन	२६७ २७५	५१-५२

	आयाङ्क	प्रयाङ्क
हारलता की कामपीडितावस्था को जानकर उसकी सगी शशिप्रभा द्वारा-वेश्याओं का सद्भाव जय अनुपम हितकारी नहीं श्रितु कृत्रिम अनुपम हा हितकारी है-दसका उपदेश	२७६ २८१	५३ ५४
कामपीडा को सहने में असमर्थता जताने द्वारा लता ने उसने लिये शीघ्र यत्न करने के लिये शशिप्रभा से कहना	२८२ २८५	५४-५५
शशिप्रभा का मुन्दरसेन के सामने हारलता की निरहासस्था का वर्णन तथा उसने जीवन की रक्षा के लिये प्रार्थना	२८५-३००	५५ ५८
मुन्दरसेन ने शशिप्रभा के वचनों का श्राद्ध किया है, यह जानकर गुणपालित द्वारा की हुई वेश्याओं की निन्दा	३०१ ३२४	५८-६३
इसी अन्तर में किसी पुरुष द्वारा प्रसंगवश गाई हुई तीन आयाओं द्वारा "स्वयं आई हुई कामपीडित मुन्दरी सुनती का त्याग करने वाला मनुष्य मूर्ख ही है" सुनना	३२५ ३२८	६४
गुणपालित के साथ हारलता के घर जाने का मुन्दरसेन का निश्चय करना	३२९-३३०	६४-६५
वेश्यावास की धीथी में घुसते समय मार्ग में वेश्याओं और बच्चों में होने वाले परस्पर उपालम्भ कलह आदि का मुन्दरसेन द्वारा वर्णन	३३१-३६८	६५ ७२
घरमें आये मुन्दरसेन का हारलता द्वारा किया सत्कार	३६९	७२
मुन्दरसेन के प्रति हारलता की सम्वी की चाटूणि शोर मचाने चला जाना	३७० ३७४	७२-७३
हारलता और मुन्दरसेन का कामशास्त्रानुसार नाना प्रकार के सम्भोग प्रकार का वर्णन	३७५ ३९०	७३-७७
प्रातः काल में हारलता का शय्यागृह से निजलना	३९१	७७

	आयाङ्क	पृष्ठाङ्क
इसने पीछे अपने करणीय कार्यों को करने के लिये बाहर जाते हुए मुद्रसेन ने गणिकाश्री और कामुहों के भिन्न भिन्न सम्भोग में अनुभूत नीचरत श्राप्ति का वर्णन मुनना	३८२ ४०४	७२-८१
मुद्रसेन ने हारलता के साथ षेड वर्ष तक सुखपूर्वक समय व्यतीत किया	४०५	८२
मित्र के साथ उद्यान में घूमते हुए मुद्रसेन ने एक दिन पिता के पास से आये हनुमत नामक लेखवाहक को देखा	४०६ ४०६	८२
सदाचार को छोड़कर कुलित वेश्या सगम म क्या पँस गये, तुम्हारे ऊपर बुद्धिम्य का भार सौंप कर मैं परलाक साधन में इच्छा रखता हूँ, इसलिये घर चले आओ, यह सदेश पाया	४१० ४२४	८२-८४
इस समय प्रसंगवश किसी से पढ़ी आया को "अज्ञानवश कुमार्ग में गिरे पुरुषों के लिये गुरुजनों के उपदेशानुसार कार्य करना ही हितकारी है" मुना	४२५ ४२७	८४
इसी समय गुणपालित ने अपने मित्र को उपदेश देने के लिये विषयासक्त मनुष्यों की की निन्दा, सज्जन पुरुषों की श्लाघा और कुलागनाश्री की स्तुति	४२८ ४४५	८४-८८
पिता का आज्ञा अनुल्लंघनाय, हारलता का वियोग जीवन नाशक, इस प्रकार कर्त्तव्यमूढ़ बने मुद्रसेन का गुणपालित को कहना	४४६ ४४८	८८
पिता के आदेश से जाने का निश्चय करके हारलता का मुद्रसेन के साथ जाने का निश्चय	४४९	८८
नगर के बाहर स्थित वटवृक्ष के नीचे आकर अश्रुभरी श्रोत्रिा स मुद्रसेन का अपनी प्रिया हारलता को कहना 'मुझे भूलना मत कहकर उसके गुणा का कहना	४५० ४५६	८८-८९

	आर्याङ्क	पृष्ठाङ्क
सुन्दर सेन के गुणों का वर्णन करके हल्केपन या प्रणयवश जो अनुचित या प्रतिकूल किया हो, उसने लिये हारलता का सुन्दरसेन से क्षमा मागना	४५७-४६४	८८-९१
एक दूसरे के प्रेमपाश में बद्ध मनुष्यों में वियोग होने से मृत्यु होती है या शान होता है—इस अभिप्राय की आर्या किसने पढ़ी	४६५-४६६	९१-९२
इस आर्या को सुनकर—‘प्रिये ! मैं जाता हूँ, सुखी रहो’ यह कहकर सुन्दरसेन के जाने पर हारलता का घटवृद्ध ने नीचे प्राण त्याग करना	४६७-४७२	९२-९३
पीछे से आने वाले पथिकों से हारलता के स्वास्थ्य सम्बन्धी प्रश्न का सुन्दरसेन द्वारा पूछा जाना	४७३	९३
पथिक ने हारलता की मृत्यु का संदेश दिया	४७४	९३
हारलता की मृत्यु का संवाद सुनकर उसके गुणों का वर्णन करते हुए सुन्दरसेन का विलाप	४७५-४८६	९३-९७
गुणपालित द्वारा चिता बनाकर हारलता का दाह-संस्कार करना	४९०	९७
चिता में जलने का निश्चय करके सुन्दर सेन ने प्रसंगवश किसीसे कही इस आर्या को सुना ‘विवेकी पुरुष को चाहिये स्त्री धर्म में मरने की बुद्धि न करे, किन्तु संसार के मोक्ष का उपाय संन्यास लेना चाहिये	४९१-४९२	९७
आर्या को सुनकर सुन्दर सेन ने संन्यास लेने का निश्चय किया	४९३-४९५	९७-९८
गुणपालित के साथ संन्यास लेकर सुन्दरसेन का वन में जाना	४९६-४९७	९८
इस प्रकार हारलता का आख्यान कहकर नायक का विश्वास टूट करने के लिये विकराला का मालती को उपदेश देना	४९८-५११	९८-१०२

	आख्यांङ्क	पृष्ठाङ्क
फिर भी विश्वास को दृढ करने के लिये प्रातः काल उठते समय नायक का आलिंगन शतकीर्ति आदि का विकराला द्वारा उपदेश	५१२-५१८	१०२ १०३
इस प्रकार से विश्वास हो जाने पर नायक में अनुराग बढ़ाने के लिये और धन प्राप्त करने के लिये विकराला का मालती को ईष्या के बढाने का उपदेश	५१९-५२६	१०३ १०४
फिर भी नायक का अनुराग बढ़ाने के लिये और उसका धन लेने के लिये मालती का अपनी माता के साथ नायक को सुनाते हुए मिय्या वाक्फलह ✓	५२७-५२८	१०४ १०५
मालती की माता का वचन	५२९-५४५	१०५ ११०
मालती का प्रत्युत्तर	५४६-५५६	
मालती का वचन सुनने के पीछे मालती के गुणगौरव वर्णन में विवाहित पत्नी से भी अधिक श्रेष्ठता का विचार ✓	५५७-५८४	१११ ११५
यदि इस युक्ति से भी नायक से धन न मिले तो रात्रि में अभिसरण करके, मालती के आभूषण चोरी ने ले लिया, यह सवाद नायक को दे-ऐसा उपदेश विकराला ने दिया, यह युक्ति भी व्यर्थ जाये तो पहिले से सिराया बणिक नायक के सामने अपना कर्जा माँगने आये-यह उपदेश विकराला ने दिया	५८५-६०४	११६ ११८
यह भी युक्ति व्यर्थ जाये तब मेरे प्राणप्रिय आपके आरोग्य के लिए अपने बलि-उपहार से पूजा करूँगा, यह सकल्प किया था, परन्तु सामग्री के लिए सम्पूर्ण धन न मिलने से वह पूजा अभी तक नहीं हो सकी, इसलिए देवी के कोप की शान्ति के लिए धन चाहिए, ऐसा नायक को कहे—	६०५-६१०	११९
	६११-६१३	११९ १२०

	आयंक	पृष्ठांक
यह मुक्ति भी व्यर्थ जाये तो घर को खाली करके घर में आग लगा दे और दिखाना चाहिए सर्वनाश हो गया	६१४-६१५	१२०
इस प्रकार नायक का सब धन लेकर पृथक् आसन, प्रत्युत्थान आदि में उदासीनता बरतकर उच्च निकाल देना चाहिये	६१६-६२५	१२० १२१
यदि इन सब उपायों से मूढ़ कानुक घर में आने से न रुके तब, दासी द्वारा उसकी चुमने वाले वाक्यों से भर्त्सना करनी चाहिये	६२६-६६०	१२१ १२६
दत्तना करने पर भी यदि मूढ़ कानुक न समझे तब उससे कहे कि मेरा हृदय तो तुममें पँसा है, परन्तु माता के कहने से तेरा साथ छोड़ना आवश्यक है; इसलिए कुछ दिनों के लिये आना छोड़ दो—यह अन्तिम उपदेश	६६१-६६३	१२६ १३०
इस प्रकार से प्रकृत कानुक के निकालने पर पहिले सेवित एव परित्यक्त प्रेमी के पुनः धन प्राप्त कर लेने पर उससे प्रेम करने तथा उसका धन लेने का टपपय विकरान्ता ने मालतीको कहा	६६४-६६५	१३०
इसमें इस प्रकार के प्रेमी के प्रथम दौगने पर मालती का उससे माय पूर्व अनुभूतसमोग विहा यदि क्रीडाओं का वर्णन करने का उपदेश देना	६६५-६७१	१३० १३१
इसने पीछे उसके सामने उसके साथ बैठकर आन्नचूड़ के नीचे पहले मुने विनामोत्पादक, कामोद्दीपक बचनों को करने का उपदेश	६७२-६८४	१३२-१३४
कानुक की मालती से साथ क्रीडा का वर्णन करना	६८५-६९१	१३४ १३५
मुहिलट, द्वार गिरि-काम से अचम शरीर के अर्गों का बम्भाई आदि द्वय दिग्गाना, गूह स्थान आदि को दिग्गवर अचना प्रेम दिग्गाना-कानुक को घर में करने के उपाय	६९२-६९३	१३५

	आर्षाङ्क	पृष्ठाङ्क
इसने पाछे, तुम्हारे वियाग म मेरा दोष नह्रा, तुम ही दूसरी स्त्री में आसक्त हो गये, यह बात दूसरे ने कहकर हम दोनों म भेद उत्पन्न कर दिया, इस प्रकार से दुर्जन साधु पुरुषों को बलाते हैं, अब तो दुरज से मरे सत्र अग जल रहे है, अब मैं तुम्हारे घर में दासी बनकर रहूंगी—कामुक को वश में करने का यह उपदेश	६६४ ७३१	१३६ १४२
इस प्रकार ये उपायों से कामुक को फिर वश में करने धन लेकर उसे निकालने का उपदेश मालती को दिय उपदेश को दृढ करने व लिये विमराला द्वारा मञ्जरी का दृष्टान्त कथा रूप म कहना	७३२ ७३५	१४३
	७३६	१४३

### मञ्जरी का आरयान

सिंहभट्ट नामक राजा का पुत्र समरभट्ट था, वह कभी थोड़े से सम्बन्धी जनों व साथ काशी विश्वनाथ व दर्शन व लिये देवमन्दिर में गया	७३७ ७३८	१४४
समरभट्ट का वयान	७३९ ७४२	१४४ १४५
देवमन्दिर स्थित पितृ चण्डिका आदि का संलाप वयान—	७४३ ७५५	१४५ १४७
राजपुत्र समरभट्ट देवमन्दिर में बैठकर वहाँ व वशिष्, नर्तक आदि व कुशल मंगल का पूछने लगा	७५६ ७६०	१४७ १४८
पैतानिह द्वारा समरभट्ट का श्लथ रूप में प्रभाव, शत्रु विनाश, मीभाग्य आदि का स्तुति करना	७६१ ७८६	१४८ १५३
समरभट्ट ने पैतानिह का सतुष्ट करण, कभी पदल पड़ी दो आपात्रां का फिर पढ़ने व लिये कहा	७८७ ७८८	१५४

	आर्याङ्क	प्रथाङ्क
परनारी वृत शोक एव कामुक को उपालम्भ	८४४-८५५	१६६ १६८
इस प्रकार से कुलगा सग के सुरा वयान में	}	
समरभट के मत्री द्वारा कुलगा सम्भोग को वेश्या		
सम्भोग से उत्तम बताना	८५६-८६१	१६८ १६९
समरभट के मत्री द्वारा की हुई वेश्यारति की		
निन्दा का निराकरण करके, अपने पक्ष के सम		
र्थन में मजरी की माता का किया भाषण	८६२-८७४	१७० १७२
समरभट सचिव का निन्दा	८६३	१७०
ग्राम्य रत वयान	८६४-८६५	१७०
ग्राम्य विट वयान	८६६-८६८	१७० १७१
ग्राम्य दूती वचन प्रकार वयान	८६९-८७४	१७१ १७२
इस प्रकार से कहती हुई मजरी के माता को		
रोककर नाट्याचार्य ने समरभट की सगीतशास्त्र		
में प्रवीणता का प्रशंसा की, एव अपनी सिराई		
नटिया द्वारा खेले हुए रत्नावली नाटिका को		
देखने के लिये प्रार्थना करी—समरभट के आशा		
से अक्र का प्रयोग आरम्भ	८७५ ८८०	१७२ १७३
गीत-वाद्य के साथ में रत्नावली के अक्र का		
प्रारम्भ, सूत्रधार और नटी का प्रवश—सलाप-		
पान के आने की सूचना देकर निकलना	८८१-८८४	१७३ १७४
कथोद्घात का आश्रय लेकर अमात्य योगधरा		
यण का उदयन को प्रासाद पर चढ़कर वसन्तो		
त्सव देखने की सूचना देना और अपना काय		
करने के लिये बाहर जाना	८८५-८८६	१७५
प्रासाद पर चढ़े वसराज उदयन का मञ्च पर		
आकर अपनी श्रौंति देखे पौरजनों की नृत्य		
आदि क्रीडा का वयान—अपने मित्र विदूषक से		
सुनना	८८७-८९५	१७५ १७६
उदयन की महाराणी वासवदत्ता से भेजी चिटियों		
का रगमच पर प्रवश	८९६-८९७	१७६



	आर्याङ्क	पृष्ठा
इस प्रकार से शृंगार रस में डूबे उदयन के लिए वैतालिक ने नेपथ्य में कहा है कि राजा खोग उदयन का दर्शन करने के लिए साय काल के समय सभा मण्डप में आ गये हैं	६२०-६२१	१८०
वैतालिक द्वारा 'उदयन' यह वत्सराज का नामांतर है, यह सुनकर सागरिका आश्चर्य से सोचने लगी कि क्या यह वही उदयन है, जिसने लिये पिता ने मुझे दिया था—मुझे कोई देखे नहीं ऐसा सोचकर मंच से निकल गई	६२२-६२४	१८१
संध्याकाल आ गया ऐसा भिन्न को उहकर सत्रके साथ उदयन भी निकल गया	६-१६-१८	१८१

### रत्नावली नाटिकाङ्ग प्रयोग समाप्ति

अरु प्रयोग के समाप्त होने पर विकराला मजरी कथानक में समरभट्ट द्वारा किये अरु प्रयोग के गुण वर्णन विषयक भाषण को दोहराती है	६२६-६४७	१८२-१८५
समरभट्ट ने अपने नाट्य प्रयोगगत गुण दाप के कहने में नम्रता का प्रदर्शन	६३०	१८७
सतुष्ट-समरभट्ट का नाट्याचार्य को पारितोषक आदि देना	६३१	१८२
बाता बातों में ही नौकरों का पेट भरने वाले स्वामियों द्वारा धन न देकर केवल मिथ्या सान्त्वना से पेट भरने का वर्णन	६३२	१८२
समरभट्ट द्वारा रत्नावली के अरु प्रयोगगत नाट्य गीत, वाद्य की गुण विवेचना	६३६-६४७	१८३-१८५
इसी प्रसंग में किसी ने राजपुत्रों की परम्परागत रणशौर्य, नाटक देखना, काव्य रस का ज्ञान, मृगया इन कुल विद्याओं सम्बन्धी आर्या को गाथा	६४८-६४९	१८६
इस आर्या को सुनकर समरभट्ट ने भयानक रस वाली मृगया का वर्णन किया	६५०-६५७	१८६-१८७

	आर्थाङ्क	पृष्ठाङ्क
विर प्रसंगवशा किसी से गाईं मृगया की कथा सुनने में आसक्त व्यक्ति भोजन करना भी भूल जाते हैं, इस आर्था को समरभट ने सुना	६५८-६५९	१८८
आर्था को सुनकर मंजरी को प्रेमदृष्टि से देखते हुए समरभट का अपने घर में जाना	६६०	१८८
घर में जाकर भोजन करने के पीछे मंजरी में आसक्त मन से अपने सचिव के प्रागे मंजरी के लावण्य आदि की प्रशंसा करना	६६१-६८८	१८८ १९४
मंजरी के गुणों के कहते हुए मंजरी से भर्जा दूती का समरभट के पास आकर मंजरी की विरहावस्था का वर्णन करना और उसे स्वीकार करने के लिए कहना	६८९-१०४१	१९४ २०४
मंजरी दूती कृत मंजरी के विप्रलम्भ शृंगार का वर्णन	६९१-१०३०	१९४-२०२
मंजरी के अनुपम वर्णन प्रसंग में समरभट के हृदय में अनुकम्पा उत्पन्न करने के लिये दूती द्वारा सज्जन पुष्पों के स्वभाव की तुलति	१०३१-१०३०	२०२
आपके कारण ही मंजरी की यह विरहपीडा है, इसलिये आप ही उसके शरण है, इसको दृष्टान्त द्वारा सिद्ध करके दूती द्वारा मंजरी को स्वीकार करने की प्रार्थना	१०३३-१०४१	२०३-२०४
दूती की बात समाप्त होने पर किसी से गाईं हुई आर्था की गाढ प्रेमियों के लिये थोडा सा भी समय का वीतना विधनकारी है सुनकर समरभट ने दूती के वचन का समर्थन किया	१०४२-१०४५	२०४ २०५
दूती का घर जाकर मंजरी को साथ में लेकर समरभट के पास आना, समरभट के पास मंजरी को बिठाकर अपने आप यह कहते हुए चले जाना कि एकान्त में धीठे छी पुरुष के पास दूसरे को नहीं रहना चाहिये	१०४६-१०५२	२०५-२०६

	श्रावण	पृष्ठाङ्क
समरभट्ट और मजरी का सम्भोग वर्णन	१०५३-१०५५	२०७
मजरी ने नाना प्रकार के सम्भोग मुख से समर- भट्ट को प्रसन्न करके थोड़े समय में ही उसका सर्वस्व ले लिया और केवल चमड़ा मात्र उसने शरीर पर छोड़ा—इस प्रकार से विकराला ने मजरी उपाख्यान को समाप्त किया	१०५४	२०७
इस प्रकार मेरे दिये उपदेश के अनुसार चल- कर कामुक जनां से बहुत अधिक धन प्राप्त कर सकेगी—यह कहकर विकराला ने अपने उप- देश को समाप्त किया—	१०५७	२०८
विकराला का उपदेश सुनकर मालती का मोह चला गया, मालती विकराला के पैरे पर गिर से प्रणाम करने अपने घर चली गई—	१०५८	२०८
इस काव्य के सुनने का फल—काव्यकला दामो दर कृत काव्य का उपसंहार	१०५९	२०८



॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

# कुट्टनीमतं काव्यम् ।



स जयति संकल्पभवो रतिमुखरातपत्रचुम्बनभ्रमरः ।

यस्यानुरक्तललनानयनान्तविलोकितं वसति ॥ १ ॥

मंगलाचरण—

सख्य [ मनोनिहार ] से उत्पन्न, रति के कमल रूपी मुख का चुम्बन करने में भ्रमर, अनुरक्त ललनाग्रों के चञ्चल कण्ठ निक्षेपों में रहने वाले [ वहाँ से उत्पन्न होने वाले ] प्रसिद्ध कामदेव<sup>१</sup> की जड़ हो ॥ १ ॥

अवशीर्य द्योपनिचय गुणलेशे संनिवेश्य मतिमार्या

कुट्टन्या मतमेतदामोदरगुणविरचितं शृणुत ॥ २ ॥

दोषों की ओर ध्यान न देकर, गुणों में बुद्धि को लगाकर बुद्धिमान् मनुष्य दामोदर गुण के ज्ञान कुट्टनी<sup>२</sup> मत को सुनें ॥ २ ॥

१. गीता में कहा भी है काम-संकल्प से उत्पन्न होता है [ संकल्पममवान् कामान्—६।२४ ] कामनायें सब संकल्प से होती हैं, संकल्प करना मनका विषय है—“चिन्त्यं विचार्यमूलं च ध्येयं संकल्पमेव च ।

यत्किञ्चिन्मनसो ज्ञानं तत्सर्वं ध्येयंसंज्ञकम् ॥ चरक. शा १।२०

२. कुट्टनी—कुट्टनी, स्त्रियों के शील को नाश करनेवाली [ कुट्टयति—क्षिनति—नाशयति स्त्रीणां शीलमिति कुट्टनी ] चेरया के लिये कुट्टनी आवश्यक है, जैसा कि क्षेमेन्द्र ने बताया है—

(क) व्याघ्रीव कुट्टनी यत्र रक्तपानामिपैपिथी ।

नास्ते सत्र प्रगल्भन्ते जम्बूका इव कामुकाः ॥

यत्र तत्र निमग्नानां वेश्यानां जननीं विना ।

सख्योर्दिवसस्थापि सुहृत्तार्धस्य न क्षणः ॥

न भवत्येव धूर्तस्य वेश्यावेशमन्यमानृके ।

सुवर्त्ती सुष्टय हेमन्ते मार्त्रास्तेव निर्गमः ॥

अस्ति खलु निखिलभूतलभूषणभूता विभूतिगुणयुक्ता ।  
 मुक्ताभियुक्तजनता नगरी वाराणसी नाम ॥ ३ ॥  
 अनुभवतामपि यस्यामुपभोगान्कामत शरीरवताम ।  
 शशधरखण्डविभूपितदेहलय किल न दुष्प्राप ॥ ४ ॥  
 चन्द्रविभूपितदेहा भूतिरता सद्भुजङ्गपरिवारा ।  
 वारध्वियोऽपि यस्या पशुपतितनुतुल्यता याता ॥ ५ ॥

वाराणसी का वर्णन—

सम्पूर्ण पृथ्वी को भूषण ऐश्वर्य गुणा से सम्पन्न मुक्त [ जीव-मुक्त ]  
 और विद्वानों से भरी वाराणसी नगरी है । जिस नगरी में शरीरधारी मनुष्य  
 स्वेच्छापूर्वक माला चन्दन आदि उपभोगों का अनुभव करते हुए भी शिव  
 महादेव में लय होने पर इनका लिए सत्र कुल्ल प्राय रहता है । अथात् कोई भी  
 वस्तु अप्राय नहीं रहती । यहाँ की वारवनितायें भी महादेव का शरीर की तुल्यता  
 (समानता) प्राप्त करती है इनका शरीर चन्द्र [कपूर] समुदर जना रहता है ।  
 [ शिव के शरीर पर चन्द्रमा शोभित है ], वश्याय ऐश्वर्य म मग्न हैं [ शिवजी  
 भस्म में रत हैं ], वारवनितायें भुजंग ( विटो ) से घिरी हैं, [ शिवजी सोंपों से  
 घिरे हैं ], इस प्रकार से वाराणसी की वारवधू महादेव की समानता करती  
 हैं ॥ ३-५ ॥

अतितुङ्गसुरनिवेतनशिखरसमुत्क्षिप्तपत्रनचलिताभि ।

मञ्जरितमिव विराजति यत्र नभो वैजयन्तीभि ॥ ६ ॥

वाराणसी के ऊँचे ऊँचे मन्दिरों में भी लगी पताकायें ध्वजाय वायु से हिलने  
 र मञ्जरी के समान शोभित होती हैं—( मञ्जरी के समान शब्द करता है ) ॥ ६ ॥

प्रविष्टा कुटनीहीनगृह क्षीणपटा विटा ।

गाथा पठन्ति गायन्ति व्ययद्विषमर्थित, ॥

उरकण्टका पुष्पमद्री वेश्यापिदमानुका ।

मन्त्रिहीना च राग्यधीर्भुञ्जयते विटचेतकै ॥

( क ) जयस्यजत्र जनवृक्षपातिनी, प्रष्टमापावतिनी च कुटनी ।

देशोपदेश १ । २

समयमानुका-१ । ४१-४५

( ग ) कुटनी—घ्रायु में पकी स्त्री ही होती है—

पूर्वं चेटी ततो चेटी पश्चाद् भवति कुटनी ।

सर्वोपापपरिहारीणा वृक्षा वेश्या उपरिवनी ॥ गणिकावृत्तसप्तप्रह-१०१

श्रविरतसंचरद्यलाचरणतलालकक्रवाणितम् ।

स्थलरुमलवतीलक्ष्मी विमर्ति वसुधातलं यत्र ॥ ७ ॥

यहाँ की पृथ्वी भी निरन्तर किरती हुई स्त्रियों के पैरों में लगे मरापर से ताल बनकर स्थलरुमलिनी<sup>१</sup> की शोभा को धारण करती है ॥ ७ ॥

यत्र च रमणीभूषणखड्गधिरितसकलदिङ्मनभोभागे ।

शिष्याणामाचार्यैर्नात्रयमवधार्यते पठताम् ॥ ८ ॥

जिस चाराण्मी में स्त्रियों के आभूषणों की आराज ने तन दिशाओं के अधिर हो जाने पर, शिष्यों के अशुद्ध पाठ को पढ़ने हुए भी, आचार्य शुद्ध नहीं कर पाते ॥ ८ ॥

विन्ध्यधराधरभूरिव या राजति मत्तवागणोपेता ।

बहुलनिशीधवतीच प्रोन्ज्वलधिष्ण्योपशोभिता या च ॥ ९ ॥

विन्ध्याचल भूमि के समान वाराणसी बड़े-बड़े चारणों से युक्त है (वाराणसी में मरानों के चारों ओर बड़े-बड़े जगमड़े हैं, विन्ध्याचल में बड़े मम्म हाथी हैं) । कृष्ण पक्ष की रात्रि के समान वाराणसी उज्ज्वल धिष्ण्यों में शोभित है । (वाराणसी के पत्र में—धिष्ण्य-ग्रामाद् ममान मे शोभित है । रात्रि के पक्ष में—धिष्ण्य का अर्थ नक्षत्र, से शोभित है) ॥ ९ ॥

यतिगणगुणसमुपेता या नित्यं छन्दमामिव प्रचितिः ।

वनपंचिारव सशाला तुरष्कसेनेव बहुलगन्धर्या ॥ १० ॥

जिम प्रकार छन्दशास्त्र यति (पाठनिष्ठेद्र स्थल), गण (मगणादि) के गुणों से (ठोक स्थान पर रखने के गुणों से) शोभित होता है, उसी प्रकार से वाराणसी भी यतिगणों (नन्यामी समूहों) के गुण से शोभित है । जिस प्रकार से बंगल में शाल-वृक्ष होने हैं, उसी प्रकार वहा पर शालाओं की पंक्ति है; जिम प्रकार से तुरुष्क देश की राजसेना में बहुत से गायक (या घोड़े) होते हैं, उसी प्रकार यहाँ पर उत्तम घोड़े और गायक हैं । (तुरुष्क-तुर्विस्तान रका) ॥ १० ॥

१—स्थलरुमलिनी—कई प्रकार की हथो है । सब में प्रायः दो रंग होते हैं, किनारोंपर एक रङ्ग और बीच में दूसरा रङ्ग, किनारों पर धाल गुलाबी-बीच में पीला या श्वेत । परन्तु लाल रंगका विशेष अविद्यतः मिश्रता है, इसीसे यहाँ पर महापर के साथ स्थलरुमलिनी की उपमा दी है । परवी में इसको 'छान वेगाना' कहते हैं ।

तारागणोऽकुलीन प्रियदोषा यत्र कौशिका सततम् ।

गद्ये वृत्तच्यवन परगृहरोधस्तथाऽक्षेपु ॥ ११ ॥

जिस प्रकार तारा समूह अकुलीन हैं ( पृथ्वी में लीन नहीं होते ) उसी प्रकार से वाराणसी में भी कोई अकुलीन ( असत्कुल में उत्पन्न ) नहीं है । उल्लू को दोषा ( रात्रि ) प्रिय है, यहाँ पर किमी को दोष ( दुर्गुण ) प्रिय नही । गद्य में वृत्तच्यवन ( छन्द का नियम न होना ) होता है, परन्तु वाराणसी में वृत्तच्यवन ( सदाचार का भंग ) नहीं होता । जुये म-पाशा खेलने में दूसरे घर का रोकना होता है, यहा पर विरोध आदि से दूसरे घर का प्रतिग्रह नही होता ॥ ११ ॥

शूलभृतो व्यालस्था पदवेदिषु यत्र धातुवादित्वम् ।

सुरतेष्वत्रलाक्रमण दानच्छेदो मदच्युतो करिणाम् ॥ १२ ॥

ध्यानस्थ ( क्षपणक आदि ), शूल त्रिशूल को धारण करते हैं, परन्तु कोई शूल रोग से पीडित नहीं है । पदवेदियों में-वैयाकरणों में ही भू आदि धातु का विचार है कोई किमियागिरी से झूठे धातु बनाकर यहाँ ठगता नहीं । सम्भोग में ही स्त्रियों पर आक्रमण-वशीकरण हाता है, वैसे कोई स्त्रियों पर आक्रमण नहीं करता । हाथियों में मदच्युति होने पर ही मदजल पहत है, यहाँ पर ब्राह्मणादि को दिये दान का कोई भंग नही करता—उनकी वृत्ति का उच्छेद कोई नहीं करता है ॥ १२ ॥

सीघ्रकरत्व भानोरविवेको यत्र मित्रहृदयानाम् ।

योगिषु दण्डग्रहण सधिच्छेद प्रगृह्येषु ॥ १३ ॥

सूर्य की विरणों में ही तीव्रता रहती है, राज्यकर म-राज्यभाग में तीव्रता नही, मित्रों के परस्पर व्यवहार में ही भेद रहन्यता रहती है, परन्तु किसी दूसरे में अविशेष प्रमाद नहीं मिलता । योगी लोग ही दण्ड ग्रहण करते हैं किसी अपराधी को दण्ड नहीं दिया जाता, व्याकरण प्रसिद्ध प्रगृह्य सजका में ही सधि तोड़ी जाती है, किमी के घर आदि में चोर सधि संध नही तोड़ते । ( न किसी की मैत्री का भंग किया जाता है ) ॥ १३ ॥

छन्द प्रस्तारविधौ शुरुषो यस्यामनार्जवस्थितय ।

वीणाया परिवादो द्विजनिलयेष्वप्रसन्नत्वम् ॥ १४ ॥

छन्दों में शुरु-लघु वर्ण के ज्ञापन के लिए शुरु वर्ण के लिए ही वक्र रेखा की स्थिति है, परन्तु वाराणसी में शुरु लोग अ-यापक कभी भी वक्र नहीं होते ।

वीणा में परिवाद (बजाना) होता है, आस में परिवाद (निन्दा-अपमान) नही है। ब्राह्मणों ने घरों में अस्त्रत्व मिलता है (प्रसन्ना-मुखा नहीं मिलती) ॥ १४ ॥

अनुरूपवृत्तवदना सत्कविदृतरूपनेषु लोके च ।  
रमणीवचने यस्यां माधुर्यं काव्यग्रन्थे च ॥ १५ ॥

सत्कवियों ने जनाये नाटकों में और लोक में वृत्त-चरित्र और वर्तन के अनुरूप ही चित्रण और वर्तन मिलता है। काव्य-रचना में और स्त्रियों के वचनों में माधुर्य (आह्लाद चित्त को द्रवीभूत बनाने वाला भाव) है ॥ १५ ॥

यस्यामुपवनशील्या तमालपत्राणि युवतिवदने च ।  
नक्षप्रहाररणित तन्नीराद्येषु सुरतकलहेषु ॥ १६ ॥

जिम वाराणसी के उपवन में (कृत्रिम शीतों में) तमाल व वृक्ष हैं, तथा युवतियों के कपोलों पर मरिचिका आदि चित्रण है। नखा के प्रहार से वृजन या तो तनी वीणा में होता है, अथवा फिर सुरत कलह में होता है ॥ १६ ॥

नन्दनवनाभिरामा विबुधवती नाकनाहिनीजुष्टा ।  
अमरावतीव यान्या विश्वसृजा निर्मिता जगति ॥ १७ ॥

वाराणसी ब्रह्मा से बनाई दूसरी अमरावती है, इसमें नन्दनवन है (मुन्दर गगन-श्रीचे हैं, अमरावती में नन्दनवन है) यहा पर गड़े-बड़े विबुध विद्वान हैं, (स्वर्ग में देवता हैं), वाराणसी में नाकनाहिना गंगा है (अन्तावती में देवसेना है), इस प्रकार से यह दूसरी अमरावती बनी हुई है ॥ १७ ॥

तस्यां रत्नपतितनुरिय विलासिना हृदयशोकसंजननी ।  
आरुप्रेश्वरहृदया प्राप्तेयनगाधिराजतनयेव ॥ १८ ॥

मालती का वर्णन—

इस वाराणसी में गगननि-गरुड के शरीर की मौलि विनामियों के (भोगी-पक्ष में माशों व) लिये हृदय शोक को उत्पन्न करने वाला (जिसने देगने मात्र से चिन्तन करने पर उद्भग उत्पन्न होने लगता है, अन्यत्र भय उत्पन्न करने वाला), ईश्वर (पत्नियों के-पक्ष में महादेव के) व हृदय को ग्राचने वाली प्राप्तेयनगाधिराज-वनश की मौलि (दिभाचलमुवा-पारंगती) मालती रहती है ॥ १८ ॥

समस्तभोगिनेत्रा मन्दरधरणीभृतो यथा मूर्ति ।  
उपरि गता शूलानामन्धामुखाग्रनेत्रेव ॥ १९ ॥



जिस मालती मे भोगियों ने ( कामिया ने ) नेत्र लगे हुए है ( पद मे समुद्र मन्थन के समय वासुकि सर्प रूप नेत्र-नेत्र मन्थन-रस्सी लगी है ), जिस प्रकार से महादेव जी के त्रिशूल ने ऊपर ग्रन्थामुर का शरीर पहुँचा है, उसी प्रकार यह सत्रने ऊपर पहुँची है—सत्रने उड़ी है ॥ १६ ॥

समुवास वाररामा मानसवसते शरीरिणी शक्ति ।

नि शेषवेशयोपिद्विभूषण मालती नाम ॥ २० ॥ ( विशेषरुम् )

काम की शारीरिक शक्ति ने रूप म सम्पूर्ण वेश्याओं की नाक यनी उत्तम स्त्री-वेश्या मालती वहाँ रहती थी ॥ २० ॥

पेशलवचसा वसतिर्लीलानामालय स्थिति प्रेम्ण ।

भूमि परिहासानामावसथो वक्रकथितानाम् ॥ २१ ॥

मालतीपेशल-बोमल मुदर वचना ने बोलने म प्रवीण, लीलाओं का निवास स्थान, प्रेम की स्थिति रहने का स्थान, हास्य विनोद की भूमि, वक्रोक्ति का आवास निवास है ॥ २१ ॥

सा शुश्राव कदाचिद्धवलालयपृष्ठदेशमधिरूढाम् ।

केनापि गीयमाना प्रसङ्गपतितामिमामार्याम् ॥ २२ ॥

कथा का प्रारम्भ—

कमी उसने धवल मल<sup>१</sup> के ऊपर ने भाग पर चढ़े हुए—किसी से प्रसङ्गवश गाई हुई नीचे की आया को सुना ॥ २२ ॥

‘यौवनसौन्दर्यमद् दूरेणापास्य वारवनिताभि ।

यत्नेन वेदितव्या कामुकन्दयार्जनोपाया ’ ॥ २३ ॥

वेश्याआ को चाहिये कि अपने यौवन के सौन्दर्य का अहकार भुला कर कामी जनो के हृदय को जीतने का उपाय किसी से सीखें—किसी को गुरु बनायें [ वेश्याओं का गुरु कुट्टनी है ] ॥ २३ ॥

श्रुत्वाथ विपुलजघना मनसीद् मालती चकार चिरम् ।

अतिसाम्प्रतमुपदिष्ट मुहृदेवानेन साधुना पठता ॥ २४ ॥

इसको सुनकर विपुलजघनो वाली मालती ने देर तक मन म सोचा कि इस ने मित्र की भोति बहुत ही उचित सामयिक वान कही है ॥ २४ ॥

१—धवलगृह—[ धौराहर-धराहरा ]—राजकुल के भीतर रामा और महादेवी के निवास का मुख्य महल धवलगृह कहलाता था। हर्ष चरित का सांस्कृतिक अध्ययन, पृष्ठ-२१ पर ढा० वापदेव शरण जी अमवाज ने इसकी विस्तृत जानकारी दी है।

तद्रत्वा पृच्छामो विक्तरालां कलितसकलसंसाराम् ।  
यस्याः कामिजनौघो दिवानिशं द्वारमध्यास्ते ॥ २५ ॥

इसलिये सम्पूर्ण संसार को निगले हुए—विक्तराला कुट्टनी के पास जाकर पूछती हूँ—गुरु बनाती हूँ । जिस विक्तराला के दरवाजे पर रात दिन कामिजनों का झुंड बैठा रहता है ॥ २५ ॥

इति मनसि सा निवेद्य द्रुततरमथतीर्थ वैश्वान शिखरात् ।  
विक्तरालाभयनवरं परिजनपरिवारिता प्रययौ ॥ २६ ॥

मन में यह सोच कर, जल्दी से मरान से उतरकर, सम्बन्धी जनों के साथ विक्तराला के घर की ओर चली ॥ २६ ॥

अथ विरलोन्नतद्रशना निम्नहनुं स्थूलचिपिटनासाग्राम् ।  
उन्वणचु बुज्जलनिनशुप्पकुचस्थानशिथिलकृत्तितनुम् ॥ २७ ॥

विक्तराला का वर्णन—

विरल-दूर दूर आगे निचले उठे दांतों वाली, नीचे दही चिपुक, नासा का अग्रला भाग मोटा और चपटा, उन्वण [ अतिशयान् अतिक काले या सामने निकले ] चूचुन दाँले-मृगे सनों, शरीर की त्वचा शिथिल होने से लटक गई है ॥ २७ ॥

अथलोक्य सा विधाय च्छितिमण्डललीनमौलिना प्रणतिम् ।

परिपृष्टकुशलवार्ता समनुज्ञात्तासन भेजे ॥ ३१ ॥

विकराला को देखकर मालती ने भूमि पर सिर रखकर प्रणाम किया, कुशल मगल पूछने पर आज्ञा मिलने पर आसन पर बैठ गई ॥ ३१ ॥

अथ विरचितहस्तपुटा सप्रश्रयमासन समुत्सृज्य ।

इदमूचे विकरालामवसरमासाद्य मालती वचनम् ॥ ३२ ॥

इसने पीछे ग्रामन को छोड़कर लड़ी होकर विनय पूर्वक हाथ जोड़ कर समय पाकर मालती ने विकराला से कहा ॥ ३२ ॥

विदधासि हरिमकौस्तुभमहरि हरिमगजनाथममरेन्द्रम् ।

अद्रविण द्रविणपति नियत मतिगोचरे पतितम् ॥ ३३ ॥

विकराला के पराक्रम का वर्णन—

आप अपना बुद्धि वैभव—चतुराई से विष्णु को कौस्तुभ मणि रहित कर सकती हैं, सूर्य को उसके धोडा से अलग कर सकती हैं, इन्द्र से ऐरावत को छीन सकती हैं, कुवेर को निर्धन बना सकती हैं, यह सब निश्चित है, इसमें जरा भी सन्देह नहीं ॥ ३३ ॥

अथमेव बुद्धिविभव हतविभवस्ते पटञ्चरावरण ।

कामुकलोक कथयति मन्नागारेषु भुञ्जान ॥ ३४ ॥

निर्धन बने, वटे चीथड़े पहने, मन्नागारों में भोजन करते हुए कामी जन आपने इसी बुद्धि वैभव का चर्चा करते हैं ।

उपसहृतान्यकर्मा धनवर्मा नर्मदाघ्नियुगलस्य ।

सकलसमर्पितसम्पद्यदुपेत पादपीठत्वम् ॥ ३५ ॥

धनवर्मा नामक कोई नौजवान दूसरे सब कामों को छोड़कर नर्मदा नामक वेश्या के चरणों में अपना सब धन समर्पित करके अब उसने पैरों की सेवा करता है ॥ ३५ ॥

यदुपनतो नयदत्त सागरदत्तस्य मध्यम पुत्र ।

प्रीणाति मदनसेना विधाय पितृमन्दिर रिक्तम् ॥ ३६ ॥

सागरदत्त का मध्यम पुत्र नयदत्त नाम धनकर घर को खाली करके मदन सेना को प्रसन्न करता है—सब धन उसको दे रहा है ॥ ३६ ॥

यल्लीलार्पितचरणौ मञ्जर्या भद्रपुत्रनरसिह ।

परितोष त्रनति पर मृदु मृदूनन् पाण्डियुगलेन ॥ ३७ ॥

इदमेव समुल्लपित लीलावति विजितपरभृतधनितम् ।

तव निशेषभुजगव्याकर्षणसिद्धमत्र उच्चरित ॥ ४८ ॥

हे लीलावति—तेरा वाग्विलास कोयल की कुहकू की भी नीचा कर देता है । तेरा बोलना सम्पूर्ण विष्णु को राचने के लिए सिद्ध मान है । [ पद न—भुजङ्ग सपा को राचने के लिए सिद्ध मत्र है ] ॥ ४८ ॥

इदमेव मन्त्रकेतननिकेतन स्तनयुग तवाभोगि ।

भोगवति भोगसाधनमपरोपायघ्नो व्यर्थ ॥ ४९ ॥

हे भोगवति । तरे ये विशाल स्तन कामदेव का घर है, इनमें होते हुए दूसरे भोग साधन के उपार्यों को छूटना व्यर्थ है ॥ ४९ ॥<sup>१</sup>

इदमेव बाहुयुगल मृणालपरिकोमल तव चरोरु ।

कस्य न जनयति मदन वरकटकभूषित सुतनु ॥ ५० ॥

हे उत्तम ऊँचवाली ! मृणाल न समान कोमल सुन्दर कण्डे स शोभित तेरे ये बाहु युगल किस में चाह उत्पन्न न नहा कर देते ? ( सत्रम ही चाह उत्पन्न कर देते हैं ) ॥ ५० ॥

अथमेव मध्यदेश कन्दपदेशकरणाचतुरस्ते ।

प्रकृशोऽपि शरीरवती दशमाप्रापयति मन्मथावस्थाम् ॥ ५१ ॥

कामदेव की श्रावण मानने में चतुर यह तरा मध्य भाग अतिक्रम होने पर भी मनुष्यों को कामदेव की दसवीं<sup>२</sup> अवरथा (मृदु) में पहुँचा देता है—मार देता है ॥ ५१ ॥

इयमेव रोमराजि सकल्पजचापयस्त्रिगुणशोभाम् ।

दधती विदधाति तव स्मरसायकशल्यविस्लवान् यून् ॥ ५२ ॥

तेरी यह रोमराजि कामदेव के धनुष की डोरी के समान सुन्दर है, जो कि युवकों का कामदेव के बाणों के अधीन बना देती है ॥ ५२ ॥

१—कुचक्रीडासौघ स्मरवसतिहेतो विरचित ।

कृताशा रोद्दार्थं धलिकपटनिश्रेणिसरणि ॥

सुदुर्बन्दा रघुस्तदुपरि करालम्बन कृते ।

किमेसेषा शङ्कामकुश्व तदा कोमलतिका ॥

कामिनीस्तनकातारे धमति स्मरतस्कर ।

मनो मा ग्य विवस्त्र स दिवाऽपि कुरुते जगत् ॥

२—काम की दस दशायें—

अभिधापञ्चिन्वास्मृतिगुणकथनोद्दगलप्रलापाश्च ।

उन्मादाऽप्यस्थिर्जडता मृत्तिरिति दशात्र कामदशा ॥ साक्षिपदर्पण

इदमेव च पृथुलजघन कलधौतशिलातलाभिरमणीयम् ।

तव तरुणवशीकरण यतिसयतिनाशकारि करभोरु ॥ ५३ ॥

हे करभोरु—स्वर्णपत्र के समान चिकना-सुंदर तेरा यह पृथुल जघन<sup>१</sup> तरुणा को वश म करने वाला एवं स यासियो की समाधि को तोड़ने वाला है ॥ ५३ ॥

इदमेव तद्योरयुग रम्भास्तम्भोपम मनोहारि ।

वद सुन्दरि नाभिमत मदनज्वरतापशान्तये कस्य ॥ ५४ ॥

हे सुन्दरी ! केले के तने के समान सुंदर तेरे ये दोनों ऊरु किसके काम जय ज्वर को शांत करने के लिए पयाप्त नहा—सत्र के ही काम कर को शान्त कर सकते हैं ॥ ५४ ॥

यौघनकल्पतरोस्ते कनकलताविभ्रम सुवृत्तमिदम् ।

जघायुगल नेच्छति कामफलप्राप्तये क इह ॥ ५५ ॥

तेरे ये सुंदर गोल अधा युगल कल्पवृक्ष पर चढा स्वर्णलता का भ्रम किसम उपन्न नहीं कर देते—[ सत्र म ही भ्रम हो जाता है ] । इच्छित फल की चाह के लिए कान इनको नहीं चाहता, सब चाहते हैं ॥ ५५ ॥

निर्जितदाडिमराग विजितस्थलकमलिनीविलासमिदम् ।

तव तरुणि चरणयुगल कस्य न मानसमलकुरुते ॥ ५६ ॥

अनार की लाली को भी जड़ होने तिरस्कृत कर दिया जिन्होंने स्थल कमालनी की शोभा को जीत लिया है ऐसे तरे चरण युगल किसके मन का शोभत नहा करते—सत्रको ही पसंद हैं ॥ ५६ ॥

ह्येपयति वारणेन्द्र हस हसति प्रयातमिदमेव ।

तव लीलावति ललित यूना हृदयानि मथ्नाति ॥ ५७ ॥

तेरा चलना हाथी को भी नीचा लिप्ताता है हस की चाल पर हसता है हे लीलावति ! तरा विलास युवका के हृदय को बेचैन कर देता है ॥ ५७ ॥<sup>२</sup>

१—जघन—जड़ों पर लगड़ो बांधी जाती है, ऊरु जानु से उपर का भाग, जघा जानु से निचला भाग, चरण गुदक से निचला भाग पैर । का यों में स्त्री शरीर के वर्णन में—नाभि वल्लिन्नय, रामावलि, जघन मदनमदिर, ऊरु, जानु, अधा, गुदक चरण, पादांगुली, भीरु नख इसक्रम से वर्णन किया जाता है ।

२—विद्यास—यानस्थानासनादीना मुखनेत्रादिकमणाम् ।

विशेषस्तु विद्यास स्याद्विष्णु दशनादिना ॥ साहित्यदर्पण ३।१९

तदपि यदि तेकुतूहलमस्त्यवधान सविधाय तनुमध्ये ।

आरुण्य कथयामि स्यनुद्धिविभवानुसारेण ॥ ५८ ॥

हे मुदरि ! यदि इस पर भी तुझे सुनने का शौक है, तो अपनी बुद्धि के अनुसार जो कहती हूँ—उसको ध्यान से सुनो ॥ ५८ ॥

स्वीकुरु तान्प्रथम नृपसेवकभट्टस नुमतिवन्नात् ।

स्वाधीनामतिप्रिपुला यदि सपदमीहसे सुतनु ॥ ५९ ॥

यदि तुम अति विपुल धन को अपना बनाना चाहती हो, तो सबसे प्रथम बहुत प्रयत्न करते राजसेवक भट्ट न पुत्र को अपना बनाओ ॥ ५९ ॥

प्रत्यासन्नग्रामे स्य प्रभु पितरि नित्यकटस्थे ।

भट्टसुतश्चिन्तामणिराकृष्टो भवति पुत्रि नियमेन ॥ ६० ॥

पिता उसका सग सेना न साथ रहता है इसलिय, स्वयं स्वामी बना भट्टपुत्र चिन्तामणि यह नगर न पास रता है हे पुत्रि । वह जरूर तुम्हारी आर प्रिनेगा ॥ ६० ॥

शृणु तस्य चाम्हासिनि वेपग्रहण च चेष्टित चेव ।

निपतति तथा च तूर्णं प्रियसुरभिशरासनप्रसरे ॥ ६१ ॥

हे चारहासिनि ! भट्टपुत्र के वप आर चणग्रो को सुनो—[ इनको जानकर उसी प्रकार परतना ] । जिसस कि काम न बश म होकर चली ही गिर पड़ेगा, तुम्हारे वश म हो जायेगा ॥ ६१ ॥<sup>१</sup>

स्थूलस्थापितचूड पचागुलमात्रकेशप्रिन्यास ।

लम्बश्रवणनिवेशितपरपत्रकषटितदन्तपत्तिश्च ॥ ६२ ॥

परशार्यापितमुद्रिकचामीकरकण्ठसूत्रिनाभरण ।

परिमृग्गात्रकुङ्कुमकिंचित्पिजरितयत्नसवीत ॥ ६३ ॥

प्रविलम्बिकुमुसदामकगलमण्डनजातरूपकृतशोभ ।

अन्तर्निप्रिप्रसिक्थकतौरपि न सुम्भिहादिचरणत्र ॥ ६४ ॥

नानावर्णनिवेशितप्रहलन्शपाशवद्धततकेश ।

एकस्मिन्लवीटकमपरस्मिन्सांसपत्रक कर्ण ॥ ६५ ॥

उच्चण्डकनकूर्णभक्त बुङ्कुमपिनरितयत्नपरिधान ।

स्थूलतरकाचवर्तकमाला च गले दधानेन ॥ ६६ ॥

शृचिपरजितपररुद्धपरमूलनिनद्धशास्त्रचनेण ।

प्रथमवयस्य भजता ताम्बूलकरकजाहिनातुगत ॥ ६७ ॥

### भट्टपुत्र के वेप का वर्णन—

लम्बी-मोटी चोटी रक्मे; शिर के बाल पाँच अंगुल छोड़े; कानों में कणपत्र के आकार का हाथी दाँत से बना विशेष आभूषण पहिने; हाथ की अँगुली में सोने की अँगूठी, गले में सूत में गूँथा आभूषण धारण किये; शरीर पर केसर का लेप लगाये; कुँडू विञ्जरित [ पीला-लाल ] वस्त्र पहने हुए; गले में सोने के बनी सुन्दर लम्बी लटकती माला धारण किए; मोम एवं शिल्दक<sup>१</sup> में चिकना और सुगन्धित बना, नाल लगा, जूता पहने; कानों पर से उज्ज्वल; नाना प्रकार के मूत्रों में लम्बे बालों को बाँधे; एक कान में दलबीटक और दूसरे कान में आभूषण धारण<sup>२</sup> किए; साफ दिगानेवाले सोने के धागों से निम्ला —केशर के रंग से रंगा वस्त्र पहने; गले में बड़े बड़े काचमनको को धारण किये; लाल पुनर्नवा के रम से नगूनों को रँगे; कलई में शंख और चक्र को बाँधे हुए; यौवनाद्यमथा में पहुँचे; साथ में ताम्बूलकरंकाहिनी को लिये भट्टपुत्र को तुम देगोगी ॥ ६२-६७ ॥<sup>३</sup>

१—तुरक-शिल्दक-शिलारस-सुगन्धित द्रव्य, जिससे धूप बनती है। सिक्क मोम जूते के अन्दर पतावे पर तथा अन्दर की और मोम और शिलारस लगाने से पैरों में बिबाई तथा धूल-रेत से कदर आदि रोग नहीं होते-पैर नरम रहते हैं।

२—दलबीटक-पत्तों में लिपटा पान या इस प्रकार का कोई आभूषण, सोसपत्रक भूषण विशेष, अथवा कान बाँधने पर तुरन्त सोसक या रांग का छल्ला बनाकर डाल देते हैं, ये दोनों घातुयें नरम होती हैं, इसीसे बाँधने के पीछे कष्ट नहीं होता-साथ ही छेद भी बंद नहीं होता। जब कान इनका अभ्यस्त हो जाता है, तब चाँदी या सोना का आभूषण पहनाते हैं।

३—सोने के तारों से निकले बस्त्रों का उल्लेख अन्यत्र भी है—

‘समल्लविविधलेखा चौमवस्त्रावृताङ्गैः ॥’ हृदय ७। ७८,

वृथिक—पुनर्नवा एवं तुरक-सिण्ठी दोनों अर्थ हैं, सम्भवतः इनमें छाज पुनर्नवा और छाज फूलकी सिण्ठी नखोंके रंगने के काम आती हो। देखिये प्राचीन भारत के प्रसाधन—अग्निदेव विद्यालंकार। कच्छई में आज भी गँडे के चर्म का बना कड़ा हीन दृष्टि आदि को दूर करने के लिये पहनते हैं, ताम्बूल करंकाहिनी का उल्लेख संस्कृत ग्रन्थों में प्रायः मिलता है, यथा कादम्बरी में पत्रलेखा का वर्णन।

श्रेष्ठिवगिगिटितप्रधानरंगस्य सुमहतो मध्ये ।  
 शूलापालस्थापितकृतिपद्यद्वोरुपीठिकासीन ॥ ६८ ॥  
 उत्सगापितलङ्गैरयथातथभापिभिर्मदोद्धृत्यम् ।  
 विभ्राणैरनुर्जात्रिभिरधिष्ठित पचपै मुच्यै ॥ ६९ ॥  
 चतुरतरसेवनापितप्रष्टपरिचिप्रपूर्वदेहार्ध ।  
 अन्तर्धृततान्मूलप्रोन्दनकपोलकलितकम्पर्ण ॥ ७० ॥  
 अनपेक्षितप्रसङ्ग पुन पुन पठति सौन्नतध्रुक् ।  
 गायादलोक्तप्राय भावितचेता दथातयाऽधातम् ॥ ७१ ॥  
 त्रिमयलोलितमौलि पादगतास्ताडयन रसावेगान् ।  
 हा ऋटु साधिति वाद्रेन्तग्यति परसुभापितश्रवणम् ॥ ७२ ॥  
 इदमुक्तो रहसि रूपा तातेन नृपो, नृपेण तातोऽपि ।  
 इति पिहुराधिष्ठुक्तं महीभृत् प्रणयविष्णुसौ ॥ ७३ ॥  
 पत्रच्छेदमजानन् जानन् वा कौशल कलारिपवे ।  
 प्रकटयति जनसमाने विभ्राण पत्रकर्तरी सत्तम् ॥ ७४ ॥

भट्टपुत्रकी चेष्टाओं का वर्णन—

धनिन, वणिक्, विट, कितव, प्रवान रंगशाला नृत्यशाला ने मय्य म  
 वरना नरु द्वारा लाय हुए नो-तान तरना से उना न्नी विशाल आत्तन चौकी  
 पर बैठा हुआ, शरान क न्शे में पागल दान क कारण अमगत जोलने हुए,  
 गोट म तलवार रखने, पाँच छ सेवनों क साथ, चतुर सेवन द्वारा दिय हुए  
 तन्विय का सहारा लहर आधा लट हुए, मुग्य क अन्तर पान का ग्राडा रखने  
 से फूल हुए गाला की हाथ से छूते हुए, विना प्रसंग क ही भ्रुना का ऊँचा  
 टढा करन, श्लोकमयी गाथा को अशुद्ध रूप में पढकर प्रसन्न होते हुए,  
 प्राश्चर्य से शिर की हिलात हुए, रम आनन्द क अतिरक्त म पास म बैठ हुआ की  
 थपथपाते हुए, दूसरे से सुनाय सुभाषिता की अच्छा-बुरा कहकर राकते हुए, पुत्र  
 ने पिता की आर पिता ने पुत्र की काव से एफान्त म यह कहा था' यह रहकर  
 पिता पुत्र ने ऊपर रात्तान अनिश्चय प्रीति आर निश्चाल को बताते हुए, पत्रच्छेद  
 पत्रमग को न जानते हुए, या थाग रहत जानते हुए—जन समान म बला  
 सम्म वी अपना कौशल दिखाने क लिए सग पत्रकर्तरी साथ म लिये  
 भट्टपुत्र को तुम देखोगी ॥ ६८-७४ ॥<sup>१</sup>

१—वट्ट—हामल व बला काविद, अथवा नायक और नायिका का सन्देह  
 एक-दूसरे का पहँचाने वाला, कितव—धूर्त या उधारी, रंग ( रंग्यते  
 जनो सिम्न् ) रंगशाला-नृत्यशाला-शूलपाला-रक्षयाप्यक्ष ।



“ब्रह्मोक्तनाट्यशास्त्रे गीते सुरजादिवाद्ने चैव ।

अभिभवति नारदादीन् प्रावीण्यं भट्टपुत्रस्य ॥ ७५ ॥

भट्टपुत्र की मिथ्या स्तुति—

ब्रह्मा से कहे नाट्यशास्त्र में, गायन में, मुरज आदि [ मृदंग आदि ] बजाने में भट्टपुत्र की प्रवीणता नारद आदि की भी नीचा दिखाती है ॥ ७५ ॥

वसुनन्दचित्रदण्डकमुक्तायुधरत्नद्विगुणधनुष्येषु ।

त्यजति पुरतोऽस्य नियत भार्गवता परशुरामोऽपि ॥ ७६ ॥

वसु, नन्द, चित्र, दण्ड, मुक्तायुध [ चक्र आदि अस्त्र ], तलवार, धनु [ हुरी ] आदि शास्त्रा के प्रयोग में इसके आगे परशुराम भी अपनी चतुर्पाई को निश्चित भूल जाता है ॥ ७६ ॥

वात्स्यायनमयमवुध वाह्यान्दूरेण दत्तकाचार्यान् ।

गणयति मन्मथतन्त्रे पशुतुल्य राजपुत्र च ॥ ७७ ॥

इसने वात्स्यायन को भी नहीं पढ़ा, यह दत्तकाचार्य से बनाये वैशिक सत्रक छूटे अधिकरण के पास भी नहीं गया, मन्मथ तन्त्र में राजपुत्र को पशु तुल्य समझता है ॥ ७७ ॥<sup>१</sup>

य प्राथितोऽपि यत्नात् कवच राधासुतो ददातिस्म ।

अविचिन्तितवसुवर्षस्त्यागगुण हसति तस्यायम् ॥ ७८ ॥

जिस कर्ण ने बहुत बार प्रयत्न पूर्वक मागने पर अपना कवच दिया था, उसके इस त्याग पर, बिना सोचे समझे अपना धन लुटाने वाला यह भट्टपुत्र, हँसता है ॥ ७८ ॥

प्रपलायनैकहृदये यो विक्रममातनोति हरिणेऽपि ।

सिंहस्य तस्य शौर्यं त्रपाकर भवति भट्टपुत्रस्य ॥ ७९ ॥

भागने में मन लगाये हरिण के शिकार में जो पराक्रम करता है, ऐसे भट्टपुत्र के शौर्य के आगे सिंह का पराक्रम भी पानी भरता है ॥ ७९ ॥

आपेटकेऽपि कीतुकमस्त्येव जयश्च चचले लक्ष्मणे ।

भट्टभयेन न ऐलति भट्टसुत किंत्वतिप्रकटम् ॥ ८० ॥

१—वसु, नन्द, चित्र—ये गति भेद हैं, दण्ड से दण्डक न्यूह विशेष, मुक्तायुधी जो अस्त्र हाथ से फेंक कर चलाये जाने हैं ।

२—दत्तकाचार्य—पाटली पुत्र की वेश्याओं के कहने से इसने कामशास्त्र के अगमूख वैशिक अधिकरण को पृथक् बनाया था ।

राजपुत्र—कोई पुराना कामशास्त्र का आचार्य, पालकाप्यय हस्तायुर्वेद में ( ३ । ८ । ०० ) इसका नाम है ।

भट्टपुत्र को शिकार का शौक है, अस्थिर लक्ष्य के जीतने में निपुण है, भट्टपुत्र पिता के डर से तुलसीर अपना शौक पूरा नहीं करता ॥ ८० ॥

इति निजसेवकनिगदितरामणिक्यवचनजनितपरितुष्टया ।

अन्तर्मुदितो ब्रूते मामेप खलीकरोतीति ॥८१॥

इस प्रकार अपने नौकर चाकरों से की हुई अपनी प्रशंसा को सुन कर—  
आनन्द से अन्दर ही अन्दर प्रसन्न होकर उनको कहता है कि ये सब तो मुझे  
पनाते हैं, झूठी प्रशंसा करता है ॥ ८१ ॥

“कतमत् कृतमल्लग्न प्रस्थानं, का च नर्तकी भद्रा ।

विदरसटके वा नृत्यति कोहलभरतोदितत्रियया ॥८२॥

नाट्यादि शास्त्र का दुर्गम विषय कौन-कौन सा जाना हुआ है, कौन सी  
श्रेष्ठ नर्तकी है, कोहल और भरत के कहे हुए अनुसार निर्गों के सन्हीं में कौन  
नाचती है? ॥ ८२ ॥

कीटकत्वं न (ल ?) यमार्गे धेनुकरचिते च तालके कीटक् ।

प्रेक्षणकादावेवं पृच्छति नृत्योपदेशकं यत्नात् ॥८३॥

तुम्हारा लय ज्ञान कैसा है, धेनुक से बनाये ताल को कितना जानते हो,

१—नर्तकी लक्षण—यौवनादिगुणोन्मत्ता नृत्तगोविचक्षणता ।

सदा प्रगल्भा च तथा स्पष्टालक्ष्या त्रितयमा ॥

समागतानु नातोप रूपयौवनकान्तिषु ।

न हरयते गुणैस्तुल्या नर्तको सा प्रकीर्तिता ॥

विद्वद्धृष्य—नेशयोपचारकुशाहो मधुरो दक्षिणः कविः ।

ऊढापोद्वहमो धाम्नी चनुरक्ष विटो भवेत् ॥ २४ ॥ १०४

विद्वद्धृष्य—विटो के धांकक्षा चाद विद्वद्धृष्य के स्थान पर—  
शृंगार के का नृत्यति भी पाठ है, शृंगारक चौराहा सुखा स्थान । त्रिपाठी  
जोने शृंगार के पाठ ठीक माना है—मराठी में हींदी के छिपे शृंगार शब्दों  
आता है—

शृंग का लक्षण—सहसाः समक्षं पायुपंदुद्वर्तं वृष्टमुच्यते ।

मसृणं च क्वचिद् धूर्तं चरितं शृंगटं कस्तु सः ॥

कोद्वह—भरत पुत्र, भरत—ये दोनों नाट्याचार्य हैं ।

प्रेरक-उपरूपक में तुम्हारा कितना प्रवेश है, इस प्रकार नृत्य उपदेशक-नृत्य के आचार्य से पहले पृष्टता है<sup>१</sup> ॥ ८३ ॥

सुमनोमाला कण्ठान्त सादरचेता ददाति नर्तक्यै ।

अपनीय सताम्बूलाभनवसरे साधुवाद च ॥ ८४ ॥

भट्टपुत्र बड़े सम्मान के साथ अपने गले की फूलों की माला को उतार कर ( पिता की श्रांत उचाकर ) ताम्बूल के साथ नर्तकी को देता है, बिना समझे ही बीच-बीच में बाह-बाह करता है ॥ ८४ ॥

भुजबलनगात्रसस्थितिलालित्योद्धहनपार्श्ववलितानि ।

अनयैव निर्मितानि स्थानशुद्धिरच चातुरस्य च ॥ ८५ ॥

ऐसा भास होता है कि हाथों भुजाओं का चलाना, मोड़ना, शरीर को स्थिर करना, लालित्य पार्श्वों में झुकना, कौशल प्रदर्शन, चातुरस्य-आदि भाव विशेष इसी ने बनाये हैं, इनको अच्छी प्रकार जानता है ॥ ८५ ॥

प्रतिभक्तैर्भावरसैरभिनवभङ्गया परिक्रमैश्चित्रै ।

रम्भामप्यतिशेते विमुतेतरनर्तकीलोकम् ॥ ८६ ॥

रति आदि भावों<sup>२</sup> की पृथक् पृथक् अभिव्यक्ति, शृंगार आदि रसों की नई नई रचना से, नाना प्रकार की परिक्रमाओं से, नृत्य में घूमने से रम्भा को भी लजाता है, मनुष्य लोक की दूसरी नर्तकियों की बात ही क्या ? उनको तो अवश्य ही भेँसा देगा ॥ ८६ ॥

इत्यपसारकविरतावविरतमुच्छलितकण्ठमत्युच्चै ।

वर्णयति भावितात्मा ललितपदमात्रया पात्रम् ॥ ८७ ॥

नृत्य बन्द करते हुए नर्तकी के निर्गमन सूचक गीत वादन की समाप्ति पर नृत्य में प्रसन हुआ वह ऊँचे स्वर में कुछ चुने हुए थोड़े ही शब्दों में नर्तकी की प्रशंसा करता है ॥ ८७ ॥

१—लय—नृत्य, गीत और वाद्य की समता का नाम लय है, अथवा तालों के बीच का समय लय कहलता है ।

तादृक्कालान्तरस्थायी द्रुतमध्यविलम्बित ।

त्रिधा लय इति प्रोक्तो बदशमस्रविलम्बत् ॥

धेनुक—बन्धादि विशेषकी धेनुक सज्ञा है, अथवा धेनुक नाम के किस गायक से बनाये गीत की सज्ञा है ।

प्रेरक-उपरूपक—उपरूपक, गमसन्धि और अवमर्श सन्धि रहित ।

२—भाव—'निरविकारात्मक [चित्ते भाव प्रथमावक्रिया-साहस्यदृश्य १।३७ ।

प्रायेण भट्टतनयो भवतीदृशवेपचेष्टितो भद्रे ।

तं मदनवागुरान्तः पातयसि यथा तथा ब्रूमः ॥ ५८ ॥

हे भद्रे ! अधिकतर इस प्रकार के वेश और चेष्टावाले भट्टतनय को कामदेव के बाल में जिस प्रकार से पँसा सकोगी उसी को कहती हूँ ॥ ५८ ॥

दूती का चुनाव—सबसे पहले दूती को मेजना चाहिए—

चतुरा प्रागल्भ्यवती परचित्तज्ञानकौशलोपेता ।

योज्या तस्मिन्दूती वक्रोक्तिविभूषिता प्रयत्नेन ॥ ५९ ॥

चतुर; लूज बात-चीत करने वाली, दूसरे के मन को समझने में कुशल; श्लेषात्मक बात करने में निपुण दूती को कोशिश से उसके बात पहुँचाना चाहिये ॥ ५९ ॥

समुपेत्य तयाऽवसरे ताम्बूलं सुमनसश्च दत्त्वेत्थम् ।

अभिधातव्यं सुन्दरि मकरध्वजदीपकैर्वचनैः ॥ ६० ॥

हे सुन्दरि ! दूती भट्टतनय के पास जाकर समझ को देखकर उसको ताम्बूल और फूल भेंट करके, मौका देखकर काम को बताने वाले वचनों से बात करना प्रारम्भ करे ॥ ६० ॥

जन्मसहस्रोपचितैः पुण्यवयैरद्य फलितमस्माकम् ।

यत्त्वं नयनानन्दन नयनावसरं समेतोऽसि ॥ ६१ ॥

हजारों हजारों जन्म-जन्मान्तरों के पुण्यों का फल आज सामने आया है, जो आँखों को मुख देने वाला आपका दर्शन आज मिला ॥ ६१ ॥

१. दूती—“दूत्याः सखी नदी दामी धात्रेयी प्रतिवेशिनी ।

धात्रा प्रमत्रिता कारुः शिषिन्यावाः स्वर्ष तथा ॥

दूती के गुण—कलाकौशलमुसाहो भक्तिश्चित्तज्ञता स्मृतिः ।

माधुर्यं नमंविज्ञान वाग्मिता चेति तद्गुणाः ॥

साहित्यदर्पण ३-१२८।१२९.

धनंरंग में—“मालाकारवधुः सखी च विधवा धात्री नदी शिषिनी

सैरन्ध्री प्रतिगोहिकाऽथ रजकी दासो च सम्बन्धिनी ।

वाला प्रमत्रिता च भिक्षुवनिता तदस्य विकेयिका

मान्धा काह्वधूर्विदग्धपुरुषैः प्रेष्या इमाः दूतिकाः ॥ ८।१९.

पत्रच्छेद—अपना अभिप्राय बताने के लिये भूर्जपत्र आदि पत्तों पर चतुराई

से कटाव करना, पत्रकतंरी-पत्तों को काटने के लिये कैंची,

या पत्तों के साथ कैंची लिये ।

चाटुक्रममनुरागं प्रणयरुपं विरहजनितशोकार्तिम् ।

प्रकटयति चाररमणी नटीव शिक्षाभियोगेन ॥ ६२ ॥

सिताने से वेश्या भी नटी के समान मिथ्या प्रशंसा; स्नेह, प्रणय मिला मोध, विरह जनित शोक को दिखाने लगती है ॥ ६२ ॥

प्रवयसि यौवनशालिनि हीनकुले सत्कुलप्रसूते च ।

रोगवति दृढशरीरे समचित्ता योगिनश्च गणिकाश्च ॥ ६३ ॥

बड़ी आयुवाले वृद्ध और युवक में, हीन कुल में उत्पन्न और उत्तम कुल में उत्पन्न, रोगी एवं स्वस्थ शरीरवाले में, योगी और वेश्याओं का एक समान भाव रहता है ॥ ६३ ॥

उपचरिताप्यतिमात्रं पण्यवधू क्षीणसम्पदं पुंस ।

पातयति दृशं व्रजत स्पृहया परिधानमात्रेऽपि ॥ ६४ ॥

बड़े परिश्रम के साथ सेवा को हुई भी वेश्या निर्धन व्यक्ति के पड़ने हुए वहाँ पर भी अपनी लालच भरी दृष्टि गड़ाये रहती है ॥ ६४ ॥

इत्थं दृढतरवासितमनसा पुंसामसाम्प्रतं पुरत ।

वेशविलासवतीनामशरीरशरन्न्ययाकथनम् ॥ ६५ ॥ (कुलकम्)

ऊपर के तीन श्लोकों में कहे हुए विचारों से युक्त चित्त वाले पुरुषों के सामने वेश्याओं के कामनाओं की बात करना व्यर्थ है ॥ ६५ ॥

केवलमगणितलाघवदूरपरित्यक्तधीरताभरणा ।

मुखरयति मा दुराशादग्धसखी तेन, कथयामि ॥ ६६ ॥

तुच्छता हीनता का विचार न करके, धीरता को दूर छोड़कर, यह जलमुही-दुराशा ही मुझे कहने के लिये प्रेरित कर रही है, इसीसे कहती हूँ ॥ ६६ ॥

हृदयमधिष्ठितमादौ मालत्या, कुसुमचापबाणेन ।

चरमं रमणीवल्लभ लोचनविषयं त्वया भजता ॥ ६७ ॥

हे रमणीवल्लभ ! तुमको देखकर ही मालती का हृदय कामदेव के बाण से पूरे रूप में विंध गया है—वह तुम्हारी ही उन गई है ॥ ६७ ॥

नीचे आठ श्लोकों में मालती की विपुल अवस्था का वर्णन—

क्षणमुत्पट्टकिताङ्गी क्षणमुल्वणदाहवेदनावस्था ।

क्षणमुपजातोत्कम्पा स्वेदार्ववपु क्षणं भवति ॥ ६८ ॥

क्षण भर में मालती को रोमांच हो जाता है, थोड़ी देर में तीव्र दाह होने लगता है; क्षण ही कँपकँपी आ जाती है, और थोड़ी देर बाद ही सारा शरीर पसीने में नहा जाता है ॥ ६८ ॥

मुहुरविभावितहास्या मुहुरग्मितधीरभावमत्युच्चैः ।

रोदिति गायति च पुनः पुनश्च मौनावलम्बिनी भवति ॥६६॥

क्षण भर में अपने आप हँसने लगती है, फिर तुरन्त ही धवराकर जोर-जोर से रोती है, कभी गाती है और तुरन्त ही मौन धारण कर लेती है ॥६६॥

पतति मुहुः पर्यङ्के मुहुरंके परिजनस्य मुहुरवनी ।

किसलयकल्पिततल्पे मुहुरम्भसि मुहुरनङ्गसंतप्रा ॥ १०० ॥

कामाग्नि से सन्तप्त मालती—कभी विस्तर पर लेटती है, कभी सम्बन्धी जन की गोठ में पड जाती है और कभी भूमिपर; कभी पत्तों की उनी शय्या पर और कभी जल में लेटती है ॥१००॥

महिषीव पङ्कदिग्धा हंसीव मृणालप्रलयपरिवारा ।

सुभग मयूरीवासी भुजंगनिद्वेषिणी जाता ॥ १०१ ॥

सताप को दूर करने के लिये मालती ने शरीर पर कर्पूर चन्दन आदि का लेप किया है; जिससे वह कीचड से लिपटी भैंस के समान दीप्तती है; सताप को दूर करने के लिये उसने कमल माल के कडा (आभूषण) पहने हुए हैं; इससे वह मृणाल समूह से विरी हँसी के समान दीखती है। हे सुभग! इस समय वह मयूरी की भाँति भुजंगों से द्वेष करने लग गई है ( भुजग-साँप से, तथा-भुजग-पिठों से ) मयूरी जैसे साँपों से द्वेष करती है, उसी प्रकार मालती भी अत्र विठों से द्वेष करने लगी है ॥१०१॥

कदलीचन्दनपंरुपंकेरुहनीरहारघनसारम् ।

सुन्दरशशधरकान्तं नो शान्त्यै मदनहुतभुजस्तस्याः ॥ १०२ ॥

कामाग्नि में जलती मालती को नेले की शीतलता, चन्दन का लेप, कमल, पानी, फूलों का हार, कर्पूर और चन्द्रकान्त मणि भी शान्ति नहीं दे पाते ॥१०२॥

अपसारय घनसारं कुरु हारं दूर एव किं कमलैः ।

अलमलमालि मृणालैरिति वदति दिवानिशं याला ॥ १०३ ॥

हे सखि ! 'कर्पूर को दूर ले जा, हार को हटा दे, कमलों से क्या लाभ, कमल नामों को कोई जरूरत नही', इस प्रकार से गला रात दिन कहती रहती है ॥१०३॥

संकल्पैरुपनीतं त्वामन्तिरुमुल्लसन्मनोवृत्तिः ।

दृढमालिगति पश्चात्स्वभुजापीडेन याति, वैलक्ष्यम् ॥ १०४ ॥

संकल्प-व्यानावस्था से तुमको समीप में लाकर-प्रसन्न होकर दृढ अलिंगन

करती है—श्रीर पीछे अपनी ही भुजाओं को दगाने पर आश्रय करने लगती है ॥१०४॥

कुसुमामोदी पवन पिन्तूजितभृङ्गसार्थरसितानि ।

इयमियती सामग्री घटिता विधिनैव तद्विनाशाय ॥ १०५ ॥

सुगन्ध से भरी वायु, कीयल का कुट्टना, अभिप्राय भरा अमरों का गुजन, यह सब सामग्री विधि ने उसने नाश के लिये ही बनाई है ॥१०५॥

अबला बलिना नीता दशामिमा मकरपेतुना रक्ष ।

आपत्पतितोद्भृतये भवति हि शुभजन्मना जन्म ॥ १०६ ॥

बलवान् कामदेयने उस बेचारीको इस दशा तक पहुँचा दिया है, अब उसकी रक्षा करो । भले मनुष्यों का जन्म आपत्ति में पैसे व्यक्तियों के उद्धार के लिये ही होता है ( 'आपत्तार्तिप्रशमनफला सग्यदो ह्युत्तमानाम्'—मेघदूत ) ॥१०६॥

नो गृहन्ति यथार्था अर्थिजनैर्निर्गदिता गिर प्राय ।

मालत्या गुणलेश शृणु धृष्टतया तथापि कथयामि ॥ १०७ ॥

अर्थियों द्वारा की गई गुणों को प्रशंसा को प्राय लोग यथार्थ होने पर भी नहीं मानते । तथापि मालती के थोड़े से गुणों को धृष्टतावश कहती हूँ ॥ १०७ ॥

आस्फालयतो नून धनुरतनो कौसुम रज पतितम् ।

संगृह्य सा मुगात्री विश्वसृजा निर्मिता तेन ॥ १०८ ॥

कामदेव ने धनुष तानते समय जो पुष्पमय धूल गिर पड़ी थी, उसी धूल को इकट्ठा करके ब्रह्मा ने उसके शरीर का निर्माण किया है ॥ १०८ ॥

उपहसति गिरिसुताया लावण्य येन सततलग्नेन ।

न द्रवतामुपनीत भोगोन्द्रविभूषणस्य देहार्धम् ॥ १०९ ॥

निरन्तर लगी हुई उस धूल के कारण वह पार्वती के लावण्य को भी हसती है । क्योंकि पार्वती के लावण्य से महादेव का आधा शरीर भी द्रव नहीं बन सका ॥ १०९ ॥

शशधरविम्बार्धगता छायामिव सैहिकेयवदनस्य ।

अलिपटलनीलकुटिलामलकावलिमलिकसनिधौ वहति ॥ ११० ॥

१. मेघदूत में इससे मिलता जुलता वचन आया है—

मामाकाशप्रविहितमुज निर्दंयाश्लेषहेतो

लब्धायास्ते कथमपि मया स्वप्नसन्दर्शनेषु । मेघदूत उक्तर ४९ ।

२. मुक्ताफलेषु छायायास्तरलत्वमिवान्तरा ।

प्रतिभाति यद्गणु तच्छावप्यमिदोऽप्यते ॥ दशरूपक ।

राहु के मुख में पहुँचे चन्द्रमा की काली छाया के समान भ्रमरों के समूह जैसी काली कुटिल केशराशि उसके ललाट के पास में है ॥ ११० ॥

सरसिजमस्थिररौभं विभ्रमरहितं च मण्डलं शरितः ।

केन समेतु समत्वं हृदयप्रियं मालतीवदनम् ॥ १११ ॥

मन को लुमाने वाले मालती के मुख की तुलना जिसमें करें, क्योंकि कमल की कान्ति अस्थिर है, चन्द्रमा का मण्डल विभ्रम ( मिलास ) रहित है, इसलिये इनसे तो तुलना हो नहीं सकती ॥ १११ ॥

अलिरुपरितदीक्षणयोभ्रान्त्वा सौगन्धसूचितविशेषः ।

निपतति कर्णांभुरुहे निर्गुणताप्यवसरे साध्वी ॥ ११२ ॥

विशेष सुगन्ध से सिंचा भ्रमर भी में उसकी श्रोंगों पर आकृष्ट होकर कानों में गिर पड़ता है, मौके पर निर्गुणता भी मली होती है ( भ्रमर गुणहीन न होता तो उसकी श्रोंग की दुर्गति कर डालता ) ॥ ११२ ॥

विभ्राणोऽरुणिमानं सहजं जितवन्धुजीवरुचिमधरे ।

यदलककविन्यसनं तत्तस्या मण्डनक्रीडा ॥ ११३ ॥

स्वामात्रिक लाली लिये हुए-दुपहरिया गुण की शोभा को भी तिरस्कृत करने वाले होठों पर जो लाल रंग लगाया है, वह तो केवल अलमार करने का लिलवाइ ही है ॥ ११३ ॥

चित्रमिदं यत् कृशता तस्या बलिपरिगृहीतमध्यस्य ।

अथवा नो विधिविहिता महताप्यपनीयते तनुता ॥ ११४ ॥

त्रिवली वाले उसके या बलवान मध्यभाग में जो कृशता ब्रह्म ने बनाई है, वह पतलापन बहुत कोशिश करने पर भी दूर नहीं किया जा सकता, यह आश्चर्य है ( बली का अर्थ बली और बलवान है । ) ॥ ११४ ॥

आस्तागपरस्तावत्तस्याः स्मरवसतिपृथुतरनितम्बः ।

श्लथयति कपिलमुनेरपि दृक्पथपतिनः समाधानम् ॥ ११५ ॥

और सब बातों को छोड़ो, काम का वास स्थान-उसका जो विशाल नितम्ब है, उसको देगकर कपिल मुनि भी समाधि लगाना भूल जाते हैं ॥ ११५ ॥

तस्या रन्भावपुपो रम्भोपममूर्त्युगलमथलोक्य ।

मकरध्वजोऽपि सहसा निजसायकलक्ष्यतां याति ॥ ११६ ॥

१. ऐसा भाव कालिदास ने भी वर्णन किया है—

तस्याः सुजातोत्पलपत्रकान्तेः प्रसाधिकाभिर्नवने निरोधव ।

न चक्षुषोः कान्तिविशेषदुभ्या कालाञ्जन मंगलमित्युपाणम् ॥



कामदेयको चाहिये कि वह फूलों के धनुष को रख दे और बाणों को तरकस में पक दे । क्योंकि उसका काम करने के लिये अकेली मालती पर्याप्त है ॥ १२२ ॥

वात्स्यायनमदनोदयदत्तकविट्पुत्रराजपुत्राद्यैः ।

उल्लापितं यत्किञ्चित्तस्या हृदयदेशमध्यास्ते ॥ १२३ ॥

वात्स्यायन [ कामशास्त्र का कर्ता ]; मदनोदय; दत्तक [ वेश्याधिकरण का कर्ता ]; विटपुत्र, राजपुत्र आदि ने जो कुछ भी कहा है; वह सब उसके हृदय में स्थित है—वह सब अच्छी प्रकार जानती है ॥ १२३ ॥

भरतविशाखिलदंतिलवृत्तायुर्वेदचित्रसूत्रेषु ।

पत्रच्छेदविधाने भ्रमकर्मणि पुस्तसूदशास्त्रेषु ॥ १२४ ॥

आतोद्यवादनविधौ नृत्ते गीते च कौशलं तस्याः ।

अभिधातुं यदि शक्तो वदनसहस्रेण भोगिनामीशः ॥ १२५ ॥

भरत [ नाट्यशास्त्र कर्ता ]; विशाखिल [ कलाशास्त्र कर्ता ]; दन्तिल [ कीदृश का शिष्य - संगीताचार्य ] के बनाये शास्त्रों में; आयुर्वेद, चित्रकर्म [ आलेखकर्म ]; सूत्रकर्म ( जीवन-कर्म या अगुली में धागा डालकर नाना प्रकार के रूप बनाने में ); पत्रच्छेदन; भ्रमकर्म ( येन्द्र जालिक ), पुस्त ( मिट्टी आदि के मोडल ); सूदशास्त्र ( रसोई ); आतोद्य ( वीणा, मुरज, बंसी, कांत्यक ) के बजाने में; नृत्त ( ताल और लय के साथ नाचने ) में; गाने में मालती के कौशल को शेषनाग ही अपने हजारों मुरों से कहने में समर्थ हो सकेगा ॥ १२४-१२५ ॥

परिगलदालोलांशुकमपयंत्रणमुरसि मालती रभसात् ।

निपतति नाऽपुण्यवतां रतिलालसमानसा रहसि ॥ १२६ ॥

प्रेम से बेचैन होकर स्वनों से लिसकते हुए बल्ल को एकान्त में छाती पर सहसा ठीक करती हुई मालती को पुण्यशाली मनुष्य ही देख सकते हैं ॥ १२६ ॥

रतिरसरभसास्फालनचलवलयनिनादमिश्रितं तस्याः ।

तत्कालोचितमणितं श्रुतिपथमुपयाति नाऽल्पपुण्यस्य ॥ १२७ ॥

1. बेरवा को कामशास्त्र के साथ कणार्घों में भी निपुण होना चाहिये—

आभिरम्युच्छ्रिता वेरवा शीघ्ररूपगुणान्विता ।

छमते गणिकाशब्दं स्थानं च जनसंसदि ॥ कामसूत्र

विशाखिलः—कलाशास्त्रकर्ता—विशाखिलादिप्रणीतानिकलाशास्त्राणि-काम्या-  
खंकारवृत्ति [ १३।० ]; पत्रच्छेद-पत्रमंग-मकरिका आदि; कपोल आदि  
पर चित्रकर्म-प्रसाधन; पुस्त-मृदा वा दास्या वाऽथ वरत्रेणाप्यथ धर्मणा ।  
बोहरत्नैः कृतं वाऽपि पुस्तमित्यभिधीयते ॥

रतिरस के वेग से परस्पर सम्भोग में हिलते हुए बलयों से मिश्रित उस समय का उसका रतिकृजन (रतिसमय का शब्द-विशेष) थोड़े पुरयशालियों के मुनने म नहीं आ सकता, इसे तो बड़े पुरयशाली ही मुनते हैं ॥१२७॥

इत्थमभिधीयमान शुभमध्ये यदि भवेदुदासीन ।

एव ततोऽभिधेय सदर्शितकोपया दूत्या ॥ १२८ ॥

हे शुभमये । इतना मुनने के पीछे भी यदि भद्रनायक उपेक्षा ही दिखाये, तब दूता को चाहिये कि क्रोध दिखाकर इस प्रकार से कहना प्रारम्भ करे ॥१२८॥

कि सौभाग्यमदोऽथ यौवनलीलाभिरूपतादर्प ।

सहजप्रेमोपनता मालतिका न बहु मन्यसे येन ॥ १२९ ॥

तुमको क्या अपने सौभाग्य का गव है, अथवा जवानों की सुदरताका अभिमान है, जिससे तुम स्वाभाविक प्रेम स आई मालती को कुछ नहा समझते हो ॥१२९॥

न गणयति या कुलीनान्द्रविणवत् शास्त्रवेदिन प्रणतान् ।

सा भवदर्शे शुष्यति कुर्यान्निवेशित धिगनुरागम् ॥ १३० ॥

मालती तुम्हारे लिये कुलीन पुरुषों को, धनिकों, विद्वानों, नम्र बने पुरुषों को भी नहीं पूछती, तुम्हारे लिये सूखकर काँट बन रही है, (अयोग्य स्थान में) किये प्रेम को विकार है ॥१३०॥

कमलवनी तीव्ररुची बहुभस्मनि शम्भुशिरसि शशिलेखा ।

सा च त्वयि पशुकल्पे यदभिरता तेन मे कृशता ॥ १३१ ॥

जिस प्रकार स कौमल कमलिनी-तीक्ष्ण किरणों वाले सूर्य पर और शरीर पर भस्म लपेटे महादेव के शिर पर चन्द्रमा की चोंदनी आसक्त है, उसी प्रकार पशु समान तुम पर वह जान देती है, इसी की मुझे चिन्ता है—दुःख है ॥१३१॥

असरलमरस कठिन दुर्ग्रहमस्त्रिग्धमाश्रिता खदिरम् ।

यदुपैति वाच्यपदवी मालतिका तत्किमाश्चर्यम् ॥ १३२ ॥

जिस प्रकार टेढ़े, सूखे, कठोर, पकड़ने में कठिन, स्नेह रहित-सूखे रौर के वृक्ष पर मालती चमेली चढ़ जाये—उससे लिपट जाये, उसी प्रकार टेढ़े, सूखे, कठोर, पकड़ने में कठिन, स्नेहरहित, सूखे तुमस मालता ने जो प्रेम किया—यह यदि निन्दा का विषय बन गया, तो इसम आश्चर्य ही क्या है ? ॥१३२॥

अथवा क खलु दोषो यदतुल्यतयोपजनितवैलक्ष्य ।

स्वाधीनामपि सरसा परिहरति मृणालिका ध्वात् ॥ १३३ ॥

अथवा इसम दोष ही क्या ? दोनों म किसी भी प्रकार की समानता न

होने पर भी वश में आई हुई रसवाली कमलिनी को कौआ एकदम से छोड़ देता है ( इसी प्रकार स्वतन्त्र-स्नेह शील मालती को तुम छोड़ रहे हो ) ॥१३३॥

माऽत्र करिष्यसि खेद निष्ठुरमुक्तोऽसि यन्मया सुभग ।

यूना हि रक्ततरणीसुहृदभिहितपरपमाभरणम् ॥ १३४ ॥

हे सुभग । मैंने जो भी कच्चा बात कही हो उसके लिये दुःख न करना । अनुरक्त तरुणी की सती का कठोर वचन युवाओं के लिये ग्राह्य ही होता है ॥१३४॥

चन्द्रमसेव ज्योत्सना, कसामुरवैरिणेव वनमाला ।

कुसुमशारासनलतिना कुसुमाकरवल्लभेनेव ॥ १३५ ॥

मदलीला हलिनेव, स्तनयुगलेनेव हारलता ।

रम्यापि सा सुगात्री रम्यतरा भवतु सगता भवता ॥ १३६ ॥

( युगलकम् )

जिस प्रकार चंद्रमासे चोदनी श्रीकृष्णके गलेसे वनमाला, कामदेव से फूलों व धनुष की प्रथञ्चा ( डोरी ) नलराम से मदलीला स्तनयुगल से हारलता अधिक सुन्दर जनी हैं उसी प्रकार वह सुगात्री सुन्दर होनेपर भी आपके साथ मिलकर श्रीर भी अधिक सुन्दर बने ॥ १३५ १३६ ॥

कि बहुना, यदि यूनामुपरि विधातु समीहसे चरणम् ।

तत्कुरु रमणीरत्न प्रेमोज्ज्वलमकतस्तूर्णम् ॥ १३७ ॥

अधिक कहने से क्या लाभ यदि सब युवाओं के सिर पर पैर रतना चाहते हो तो जल्दी ही प्रेम से उज्ज्वल ( स्नेह करनेवाली ) रमणी रत्न मालती को स्वीकार करो ॥ १३७ ॥

१ वनमाला—आपादपञ्च या माला वनमालेति सा मता अथवा पुत्रपुत्र मर्या माघा वनमाला प्रकृतिता ।

२ रमणीरत्न—रत्न का लक्षण—“जातौ जातौ पदुकृष्टं तद् रत्नमभिधीयते” अथवा रमणीयतर यस्माद् रमन्तेऽस्मन्नतीव वा । तस्माद् रत्नमिदं ख्यात श-रशास्त्र विशारदे ॥ स्त्रीरत्न—स्त्रीणां गुणा यौवनरूपवेशदाक्षिण्य विज्ञानविज्ञासूर्वा । स्त्रीरत्नदर्शा च गुणान्वितासु स्त्री-शाधयाऽन्यारचतु रत्य पुंस ॥ बृह-संहिता [ ७३११३ ]

अत्रिपुत्र ने भी कहा है—

इष्टा ह्यकैकशोऽप्यर्या पर प्रोतिकरा स्मृता ।

कि पुत्र स्त्रीशरीरे ये सवातेन प्रतिष्ठिता ॥

सघातो हीन्द्रियार्पाना स्त्रीषु नापत्र विद्यते ॥

अथ तद्वचनश्रवणप्रविजृम्भितमदनभट्टदायादः ।

उपचरणीय सुन्दरि निजवसतिमुपागतस्त्वयाऽप्येवम् ॥ १३८ ॥

दूती के वचन को सुनकर भट्टपुत्र में जब काम उद्दीत हो जाये, और वह तुम्हारे घर में आये, तब तुमको भी उसकी इस प्रकार सेवा करनी चाहिये<sup>१</sup> ॥ १३८ ॥

दूराद्भ्युत्थानं, प्रणमनभात्मासनप्रदानं च ।

प्रविधेयमंचलेन प्रफोटनमङ्घ्रियुगलस्य ॥ १३९ ॥

उसे दूर से आता देखकर तुमको खड़ा हो जाना चाहिये, नमस्कार करना चाहिये, अपना आसन उसको देना चाहिये, अपने आँचल से उसके पैरों को पोंछना साफ करना चाहिये ॥ १३९ ॥

ईपदयत्नप्रकटितकक्षोदरबाहुमूलकुचयुगलम् ।

सदर्यं भ्रूटिति यास्यसि नायकदृग्गोचरात्तूर्णम् ॥ १४० ॥

अनजाने ही कक्षा, उदर, बाहुमूल, स्तनों को थोड़ा सा दिखाकर तुरन्त जल्दी से उसकी आँखों के सामने से हट जाना<sup>२</sup> ॥ १४० ॥

अथ पर्यकसनार्थं दीपोज्ज्वलकुसुमधूपगन्धाढ्यम् ।

विततवितानकरम्यं प्रवेशितो वासकागारम् ॥ १४१ ॥

दीप से प्रकाशमान, कुसुम और धूप से महकने वाले, पलंग बिछे, चौड़े चँदोये से सुन्दर रतिगृह में उसे ले जाना चाहिये<sup>३</sup> ॥ १४१ ॥

मात्रा ते गुरुजघने सादरभवतारणादिकं कृत्वा ।

अभिनन्दनीय एभिर्वचनविशेषै प्रयत्नेन ॥ १४२ ॥ (युगलकम्)

हे विशाल जघनों वाली ! तेरी माता (समयमातृका) को चाहिये, वह

१. दायाद--'दाय पैतृक धन आदत्ते इति दायादः ।'

२. साहित्यदर्पण तथा अन्य ग्रन्थों में नायिका के अमुराग के लक्षण दिये हैं; यथा--

कापि कुन्तलसम्भानसयमग्यपदेशतः ।

बाहुमूल स्तनौ नाभिभङ्गज दर्शयेत्स्फुटम् ॥ साहित्यदर्पण ३।।१।२

३. रतिगृह--'स्फुज्जंशीपशिखोज्ज्वले सुललिते रम्योन्नते विस्तरे

धूपोद्गारमनोहरे कुसुमसद्गामोपशोभाञ्जिते ।

बोधालाक्षरवाङ्मले मनसिजप्रस्तावनानन्दिते

सम्भोगः कुरालैः स्वकीयभवने कार्यो यथा कालक्षया ॥

पद्यसायक ४।१८.

आदर के साथ दृष्टि-दोष को दूर करने के लिए अवतारणक आदि क्रियाएँ करें<sup>१</sup>। फिर इन सुन्दर वचनों से उसका स्वागत करना चाहिये ॥ १४२ ॥

अद्याशिपः समृद्धाः, परितुष्टा इष्टदेवता अद्य।

कल्याणालंकारो यदलंकृतवानिदं वेश्म ॥ १४३ ॥

आज हमारा भाग्य खुल गया; देवता आज प्रसन्न हो गये, आप भाग्यमान जो हमारे घर पधारे—घर की शोभा बढ़ाई ॥ १४३ ॥

अनुरूपपात्रघटन कुर्वाणस्याद्य कुसुमचाणस्य।

सुचिराद् वत संजात शरासनाकर्पणश्रमः सफलः ॥ १४४ ॥

आज कामदेव का भी देर तक वनस्पत खींचने का फल सफल हो गया, जो उसने आप की यह सुन्दर मूर्ति बनाई ॥ १४४ ॥

विन्यस्य शिरसि चरणं सुभगा गणिकान्नस्य सकलस्य।

सौभाग्यवैजयन्ती सम्प्रति वत्सा समुत्तिपतु ॥ १४५ ॥

सौभाग्यवती यह मालती; सम्पूर्ण वेश्याओं को तिरस्कृत करके अब सचले अधिक सौभाग्यवती बनें ॥ १४५ ॥

दुहितर एव श्लाघ्या, धिग्लोकं पुत्रजन्मसंतुष्टम्।

जामातर आप्यन्ते भवाद्दशा यदभिसम्बन्धात् ॥ १४६ ॥

कन्याओं का उत्पन्न होना ही उत्तम है, पुनोत्पत्ति से प्रसन्न होना निन्दनीय है, क्योंकि कन्या के जन्म के कारण आप जैसे योग्य जामाता मिल जाते हैं ॥ १४६ ॥

दृढपरिचया गुणज्ञा भवद्विधा मानदा यदपि।

तदपि हृदयाभिनन्दन दुहितस्नेहादहं वच्मि ॥ १४७ ॥

आप जैसी का परिचय स्थायी है, आप स्वयं गुणों को जानने वाले, गुणों का सम्मान करने वाले हैं, हे हृदय को प्रसन्न करने वाले ! तथापि कन्या के स्नेह से कुछ कहती हूँ ॥ १४७ ॥

१. अवतारणक—उतारना; दूषित दृष्टि आदि को दूर करना; जैसा कादम्बरी में—‘स्वयमेव कृत्वावतरणका’—[ चन्द्रापीडका माता-पिता का दर्शन ]; विद्यासवती ने चन्द्रापीड के ऊपर अवतरण किया; इसका स्पष्टीकरण डाक्टर वासुदेवशरद्व आग्रवाँल ने कादम्बरी एक अक्षयन अदुन्देद-६१; पृष्ठ ७५) में दिया है। स्त्रियों की धार्मिक क्रियाओं में उतारा का बहुत महत्व है। उतारे कई प्रकार के होते हैं, भिन्न-भिन्न अवसरों पर भिन्न-भिन्न प्रकार के उतारे बरते जाते हैं। कुछ उतारे मांगलिक और कुछ अशुभ फल वाले धार्मिक होते हैं। कादम्बरी में—‘सज्जिज्ञाज्ञाभिश्चाचारकुशलेनान्त-पुरजरापीजनेन क्रियमाष्यावतरणकमंगलम्।’ (गर्भवती विद्यासवती)।

सहजप्रेमोपनता न्यस्ता त्वयि मालती, तथा कार्यम् ।

न यथा भवति घराकी त्वद्विप्रियजन्मनां शुचां वसतिः ॥ १४८ ॥

नैसैगिक स्नेह से पाली यह मालती तुमको सोंप दी गई; अब ऐसा करना कि इस बेचारी का कुछ बुरा न हो—भूल होने पर दया ही दिलाना, जिससे इसको दुःख न हो ॥ १४८ ॥

मृदुधीतधूपिताम्बरमग्न्यं मण्डनं च विभ्राणा ।

परिपीतधूपवर्तिः स्यास्यति रमणान्तिके सुतनुः ॥ १४९ ॥

महीन-धुला-धूपित ( मुगंधित ) बर्र एवं बारीक चतुराई से बनाया प्रसाधन धारण किये; धूपवर्ति को पीकर यह कोमलांगी आप के पास आयेगी ॥ १४९ ॥

सन्नेहं सग्रीडं ससाध्वसं सस्पृहं च पर्यन्ती ।

किंचिद्दृश्यशरीरा प्रविरलपरिहासपेशलालापा ॥ १५० ॥ ( युग्मम् )

अनुराग-लजा-भय और प्यासी आँसुओं से आपको देखती हुई, शरीर का थोड़ा सा भाग सामने पड़ने पर थोड़ी-मुन्दर, कोमल बातचीत करता हुई आप के पास आयेगी—हँसी मजाक करती आयेगी ॥ १५० ॥

मातरि निर्यातायां, परिजनसुक्ते च वासकस्थाने ।

अभियुंजाने रमणे, यामाचरणां क्षणं कार्यम् ॥ १५१ ॥

माता के चले जाने पर; सम्बन्धियों के घर खाली कर देने पर; विलास का प्रारम्भ करने पर थोड़ी देर के लिये विह्वल आचरण करना चाहिये—रौकना चाहिये [ देर तक इन्कार नहीं करना चाहिये ] ॥ १५१ ॥

रतिसंगरनिहितमतावाकर्षति रभसतः पुरस्तस्मिन् ।

कुट्टमितमाचरन्ती जनयिष्यसि किंचिदंगसकोचम् ॥ १५२ ॥

( अब नायिका को उपदेश है ) सम्भोग में दत्तचित्त होने पर इसको और भी आगे बढ़ावा देते हुए, कुट्टमितशृंगारचेष्टा को करके अंगों को थोड़ा सा सिकोड़ना चाहिये ॥ १५२ ॥

१. धूपवर्ति—कपूरगुरुचन्दनमुस्तकपूतिप्रियंगुवाले च ।

मांसी चेति नृपाया योग्या इतिनाथधूपवर्तिरियम् ॥

२. 'साय बैठकर हँसी-मजाक करना बुद्धिमान पसन्द करते हैं ( 'सदास्यवचन-प्रायं नमोच्छ्रन्ति मनीषिणः ॥' )

३. कुट्टमित—'केशस्तनाधरादीनां ग्रहे हर्षेऽपि संभ्रमात् ।

आहुः कुट्टमितं नाम शिरःवरविधूननम् ॥''

प्रारब्धे सुरतविधौ क्रमदर्शितचित्तयोनिसवेगा ।

अपराधमर्षयिष्यसि निर्व्याज पुत्रि गात्राणि ॥ १५३ ॥

हे पुत्रि ! सम्भोग प्रारम्भ करने पर क्रमशः कान का उद्वग प्रवृत्त होने पर बिना शोक और दुःख के अपने अर्गों को निखाओ । [ चित्तयाने - कामर, अथवा चित्त और योनि द्वन्द्व समास-क्रमशः चित्त और योनि में उद्वग टाखने पर ] ॥ १५३ ॥

यद्यद्वाहति हन्तु यद्द्रष्टु यच्च विलिखितु गात्रम् ।

तत्तदपसारणीय सावेग डौर्नीय च ॥ १५४ ॥

नायक जिस जिस अंग को पान्ति करना चाहे देखना चाह नहीं सान्न पर चूत करना चाहे उन उन अर्गों को जला से बर्चना के साथ हटा लना चाहिये और ढाँपना चाहिये ॥ १५४ ॥

दृगे सज्यथहुकृतिमामर्दे त्रिप्रियकण्ठरसितानि ।

नलविलिखने च सीत्कृतिमाघातेपूल्बण क्वणितम् ॥ १५५ ॥

नायक के कान्ते पर पाडा के नाय हुकार करना, लन आदि क जोर से टकाने पर गले से नाना प्रकार के शब्द करना, नखचूत करने पर सत्कार स्कन्ध, जवन आदि पर आगत करने पर नूपरों का ध्वनि का माँति शब्द करना चाहिये ॥ १५५ ॥

१ दृश स्थान - कक्षाशरस्तनयुग च कपालभागी

कण्ठ च दन्तपरिपीडनपल्पदानि ॥ शृ गारदीपिका २।७३ ॥

हिंकारसोत्कारविद्येष ढको दन्तापणे कामकृत्वाविदुषे ।

रागरभृश स्निग्धतरा समाना घनाश्च सूक्ष्मा सशिस्रासमाना ॥

दन्ता प्रशस्ता भ्रयसर्वरक्षा करालबाह्या मञ्जिनारचानन्द्या ॥

॥ अमरग १।३१ ॥

दन्तसम्पत्—कारपसहिता एव चरकग्रहिता में भी वर्णित है ।

नैषध में—आहोव परय प्रतिपेक्षतीय कपोतहुकारगिरा वनाहो ॥ ३।१४ ॥

सोत्कार—धूनो प्रहरयात्रातपीडाव्यच्छिक्ते भवेत् ।

गलाविजातो यः शब्दविशपस्ताद् सीकृतम् ॥

हात रत्नदीपिका ॥

नखक्षत स्थान—प्रीवाकरोरुजघनस्तनपृष्ठव क्षाहृत्पात्रवंगयद्विषये नखरा

चरा स्यु । माने नवीनसुरते विरहे प्रयासे द्रव्यक्षयेष्य

विरतौ च मदे प्रयोष्य ॥ अमरग १।२२ ॥

आपाव स्थान—स्कन्धौ शिरस्तनातरं पृष्ठं जघन पाश्र्वे

असमंजसमरलीलं दूरोष्मितधैर्यमविनयप्रसरम् ।

व्यवहारमाचरिष्यसि वृद्धिमुपेते रथावेगे ॥ १६० ॥

नायक में रति वेग के बढ़ने पर असंगत; अश्लील, धैर्य का परित्याग और अविनय-भृष्टता आदि का व्यवहार करना चाहिये<sup>१</sup> ॥ १६० ॥

अविचेतितनयपरत्तुरामीलितलोचना निरुत्साहा ।

नायकरकार्यसमाप्तौ रथास्यसि शिथिलीकृताश्रयवा ॥ १६१ ॥

सम्भोग की समाप्ति पर शरीर को ढीला करके, नखच्चतों के कष्ट का कुछ भी विचार न करते हुए, अर्थों बन्द किये, उत्साहहीन बन जाना चाहिये<sup>२</sup> ॥ १६१ ॥

मदिति नितम्बावरणं, नि.सहतनुतां, स्मितं सबैलक्ष्यम्, ।

खेदालसां च दृष्टिं, जनयिष्यसि मोहनच्छेदे ॥ १६२ ॥

सम्भोग को समाप्ति पर जल्दी से नितम्ब-गुह्य भाग को ढॉप लेना; श्रृंगों

१. रतिवेग बढ़ने पर शास्त्र या कर्म-कर्मव्याकृतंय का विचार नहीं रहता—

शास्त्राणां विषयस्त्रावद् यावन्मन्दरसा नराः ।

रतिवके प्रवृत्ते तु नैव शास्त्रं न च कर्म ॥ कामसूत्र ४

अश्लीलता भी कहीं गुण होती है—

अन्यदा भूपथं पुंसः क्षमा लज्जेव योषितः ।

पराक्रमः परिमवे वैवाय्य सुरतेष्विव ॥ भाष्य २।४४ ॥

(ख) 'अविनय एव विभूषणमरलीलाचरणमेव बहुमान' ।

निःशंकैव सौष्टवमनवस्थितिरेव गौरवाधानम् ॥ कुट्टनीमतं २७१ ॥

(ग) 'दूषयै पदैः पिरुनयेच्च रहस्यवस्तु ॥'

२. सम्भोग के पीछे की अवस्था—

नारी विषष्टकृष्णमेपुत्रजा रतान्ते

नृत्यं करोति बहुवचन रोदने च ।

वैकल्पमेति मुकुलीकृतचारुनेत्रा

रक्तनोति नो किमपि सोढुमतिप्रयासान् ॥ अनंतरंग २।११ ॥

(ख) समादिष्ट शिथैरसमिद्ध यन्निवृत्तिपदं;

पुनर्दग्धौऽप्याशु प्रभवति यतो मन्मथतरुः ।

धृते परिमन्कामो भवति कृतकृत्यो रतिमुत्थे,

स सीस्कारः पायादमृतविजयो मुन्दरदशम् ॥

(ग) अस्तता वपुषि मोलने दर्शः,

मूर्धना च रतिमायच्छयम् ॥ रतिरहस्य १०।४४ ॥



में खिन्नता-ग्लानि; लज्जा युक्त मुसकान; मुकुलित दृष्टि ( अर्ध विकसित दृष्टि )  
उत्पन्न करेगी १ ॥ १६२ ॥

घृत्ते रताभियोगे, स्पृष्ट्वा सलिलं विविक्तभूभागे ।  
प्रक्षाल्य पाणिपादं, स्थित्वा क्षणमासने, समूह्य कचान् ॥ १६३ ॥  
उपयुक्तवदनवासा शय्यामारुह्य दर्शितप्रणया ।  
इति वक्ष्यसि संरणं दृढतरमालिङ्ग्य रभसतः कण्ठम् ॥ १६४ ॥ (युग्मम्)

सम्भोग समाप्त होने पर एकान्त स्थान में जाकर पानी से अंगों को तथा हाथ-पैर को धोकर, बालों को त्रोंध ले । फिर आसन पर थोड़ी देर बैठ कर, पान आदि से मुग्न को सुवासित करके, शय्या पर बैठे, प्रेम का प्रदर्शन करते हुए, नायक के गले में बलपूर्वक एव हृष से आलिङ्गन करके इस प्रकार से कहे २ ॥ १६३-१६४ ॥

भट्टसुत नूनमिष्टा तव जाया यदनुरक्तहृदयम् ।  
जनयति परितुष्टिमलं, नापररामापरिष्वंगः ॥ १६५ ॥  
सफलं तस्या जन्म, स्पृहणीया सैव सकलललनानाम् ।  
गौरी तयैव महिता, सुभगंकरणं तपस्तया चरितम् ॥ १६६ ॥  
सैवैका गुणवसतिस्तस्या एवान्वयः सदा श्लाघ्यः ।  
यस्याः शुभशतभाजः पाणिप्रहृणं त्वया विहितम् ॥ १६७ ॥ (युग्मम्)

हे भट्टपुत्र ! स्नेहशील हृदय के लिये, आप की परनी ही मन्तोप के लिये पर्याप्त है; दूसरी स्त्रियों में आसक्ति अच्छी नहीं । उमका जन्म सफल है, सब स्त्रियों के लिये यह ईर्ष्या की वस्तु है, गौरी की महिमा उसी से है, उसका आचरण सौभाग्यजनक है, वही अकेली गुणों का वास स्थान है, उसी का वंश पृवनीय है, जिस बहुत पुण्यशालिनी का विवाह तुमसे हुआ है ॥ १६५-१६७ ॥

तिष्ठतु सा पुण्यवती वंशद्वयभूषणं वरारोहा ।  
या नापयाति भयतो लक्ष्मीरिव नरकवैरिणो हृदयान् ॥ १६८ ॥

१. "रतामन्ते च ध्रमे चैव सुखसंभोगभावेन ।

गन्धे स्पर्शे च हर्षे च मुकुत्ता दृष्टिरिष्यते ॥" भरत नाट्यशास्त्र ॥

२. चरक में अग्निपुत्र ने भी कहा है —

"पर्यान्ते चैना शीतोदकेन पशिसिध्रेत् ॥" शा० घ० ८।६

विस्तार के लिये आग्नेदेव विघालंकार को संस्कारविधिविशेष में पृ० ४२;

संप्रद में भी पानी से प्रक्षालन सुरन्त करने को कहा है—

'न कुप्यात् मिथुनीभूष शीचं प्रति विक्षम्यनम् ॥'

दोनों कुलों को शोभित करनेवाली श्रेष्ठ पुण्यशाली वह ननी रहे, लक्ष्मी जैसे विष्णु के हृदय से प्रथक नहीं होती, उसी प्रकार यह भी आप के हृदय से कभी अलग नहीं हो ॥ १६८ ॥

पातयसि फुवलयनिभे कौतुकमात्रेण लोचने यासु ।

ता अपि सत्यं सुन्दर हर्षोच्छ्रलिता न भान्ति गात्रेषु ॥ १६९ ॥

(संदानितकम्)

कमल के समान उसकी आँखों की कौतूहल भरी निगाह जिन पर पड़ जाती है, उनमें भी प्रसन्नता फूटकर शरीर से बाहर आने लगती है, हे सुन्दर ! यह सत्य है ॥ १६९ ॥

तनुरपि नाथप्रणय. प्रायो मुखरीन्रोति लघुमनसः ।

स्वार्थनिवेशितचित्ता करोमि तेऽभ्यर्थना तेन ॥ १७० ॥

प्रेमी का थोड़ा सा भी प्रेम छोटे मनवालों को मुखर-सीट बना देता है, इसीसे स्वार्थवश कुछ प्रार्थना करती हूँ ॥ १७० ॥

तीव्रस्मरताहृष्याद्यापलत. कौतुकेन घृणया वा ।

मद्भाग्यसंपदा वा दूत्या वा कौरालात् स्वभावाद्वा ॥ १७१ ॥

योऽयं प्रेमलवांशः प्रदर्शितोऽस्मासु जीवनोपायः ।

धाधा नात्र विवेया गणिकाजनभावमन्यथानुद्धवा ॥ १७२ ॥ (युग्मम्)

प्रवल कामवाली ज्ञानी की चपलता से, कुतूहल से या दया से, अथवा मेरे सौभाग्य से, या दूती की चतुराई से, अथवा स्वभाव से, जीवन का साधन रूप जो प्रेमरस आपने मुझे दिया है, वेश्याओं के स्वभाव को विपरीत समझ कर इसमें किसी प्रकार की कमी या बाधा नहीं लाना ॥ १७१-१७२ ॥

येन स्नेहः क्रोधः शाठ्यं दाक्षिण्यमार्जवं व्रीडा ।

एतानि सन्ति तास्वपि जीवद्धर्मापनीतानि ॥ १७३ ॥

प्राणियों को नैसर्गिक धर्म से, स्वभाव से वेश्याओं में भी स्नेह प्रीति, क्रोध, शठता धूर्तता, दाक्षिण्य चतुराई, आर्जव नम्रता, व्रीडा लजा, ये सब रहते हैं ॥ १७३ ॥

निर्व्याजसमुत्पन्नप्रवलप्रेमाभिभूतहृदयानाम् ।

दयितविरहाक्षमाणां गणिकानां तृणसमाः प्राणाः ॥ १७४ ॥

बिना कष्ट के उत्पन्न प्रवल प्रेम से भरी हृदय वाली, प्रेमी के विरह को न सहन करने वाली वेश्याओं प्राणों को तृण के समान मानती हैं ॥ १७४ ॥

अत्रानर्णय साद्भुतमाख्यान वर्णयामि यद्वृत्तम् ।

अद्यापि विमर्ति वटीविरोपणं यदभिसम्बन्धात् ॥ १७५ ॥

इस विषय में एक आश्चर्य वृत्तान्त कहती हूँ जिसके कारण आज भी वद वट वेश्यावट के नाम से प्रसिद्ध है ॥१७५॥

पाटलिपुत्र का वर्णन—

अस्ति महीतलतिलक सरस्वतीकुलगृह महानगरम् ।

नाम्ना पाटलिपुत्रं परिभूतपुरन्दरस्थानम् ॥ १७६ ॥

पृथ्वी का तिलक बना, विद्या का निय स्थान, अमरावती को तिरस्कृत करने वाला, पाटलिपुत्र नामक बड़ा नगर है ॥१७६॥

त्रिभुवनपुरनिष्पादनकौशलमिव पृच्छतो विरिंचस्य ।

दर्शयितुं निजशिल्प घर्णकमिव विश्वकर्मणा विहितम् ॥ १७७ ॥

ऐसा मालूम होता है कि ब्रह्मा के तीनों भुवना के नगरों के निर्माण में कौशल पृच्छने पर विश्वकर्मा ने अपना शिल्प दिखाने के लिए पाटलिपुत्र को नमूने के रूप में बनाया है ॥१७७॥

अश्रेयोभिरनाश्रितमभिभूत नाभिभूतिदोषेण ।

न स्वीकृतमुपसर्गं कलिकालमलैरनालीढम् ॥ १७८ ॥

अमगलों से अनाश्रित, पराभव के दोष से बचा, उपद्रवों से अलग, कलिकाल के दोषों से रहित, पाटलिपुत्र है ॥१७८॥

पातालतल भोगिभिरम्भोधिर्विविधरत्नसघातै ।

सुरसदनं विद्युधराणैर्द्रविणोपचयै पुर कुबेरस्य ॥ १७९ ॥

जिस प्रकार भोगी ( सोंप ) पाताल में रहते हैं, उसी प्रकार भोगी ( प्रेश्वर्य शाली ) यहाँ पर रहते हैं । जिस प्रकार समुद्र में रत्न हैं, उसी प्रकार पाटलिपुत्र में बहुत रत्न हैं । जिस प्रकार अमरावती में विबुध देवता समूह हैं, उसी प्रकार यहाँ पण्डित समूह है, जिस प्रकार कुबेर के पास धन राशि है, उसी प्रकार यहाँ भी धन राशि है ॥१७९॥

महिलाभिरसुरविवर कटक हि हिमाचलस्य गन्धर्वै ।

हरिनगरं त्रतुयूपै, शमविभवैर्मुनिजनस्थानम् ॥ १८० ॥

जिस प्रकार से असुरविवर<sup>१</sup> महिलाओं से व्याप्त है, उसी प्रकार पाटलि

१—असुरविवर का वर्णन हर्षचरित में कई विभागों में है, यथा—बाण की मिश्रमण्डली के विषय में—असुरविवरस्यसनी लोहिताक्ष, चीये उद्धास में—असुरविवराणीव अपाकृतानि, छठे उद्धास में—असुरविवरस्यसनिन्; तीसरे उद्धास में—असुरविवरमिति वातिके —डॉक्टर अग्रवाल ने हर्षचरित का सांस्कृतिक अध्ययन [ पृष्ठ १८ ] में इस सम्बन्ध में लिखा है कि यह

पुत्र भी स्त्रियों से भरा है । जिस प्रकार हिमालय का मध्य भाग ग वनों से भरा है, उसी प्रकार यहाँ भी गर्वर्च-नायक हैं । जिस प्रकार हरिनगर (हरिद्वार) यशपूर्वों से पूर्ण है उसी प्रकार पाटलिपुत्र भी । मुनि का स्थान वदरिकाश्रम जैसे शान्ति धनवाले मुनियों से पूर्ण है, यहाँ भी शान्तिवाले मनुष्य हैं ॥१८०॥

तिष्ठन्तु सकलशारत्रव्यालोकनविमलजुद्धयो विप्रा ।

सदसद्गणनिर्णीतौ ललना अपि निरुपभूमयो यत्र ॥ १८१ ॥

पाटलिपुत्र में सम्पूर्ण शास्त्रों के पढ़ने से विमल बुद्धि वाले ब्राह्मण रहे तो रहे, स्त्रियाँ भी सत् और असत् को पहचानने में कसौटी रूप हैं ॥१ ८१ ॥

कलिकालोदितभीत्या क्रतुदुतवहधूमकम्वलावरण ।

तिष्ठन्निभृतोऽपि वृषश्चरितैरनुमीयते यत्र ॥ १८२ ॥

कलियुग के आने के भय से यद्योप वहि धूम का काला आवरण ओढकर एकान्त में बैठी है, बहुत यश होते हैं इसका अनुमान घमाचरण से हाता है, ( यहाँ पर घमात्मा ही रहते हैं ) ॥१८२॥

अपहरति पिधातुमिव स्वकलक शशधर प्रसार्य करान् ।

रात्रौ यत्र वधूना लावण्य वदनकोरोम्य ॥ १८३ ॥

जहाँ पर चंद्रमा अपने कलक का दूर करने के लिए अपनी किरणों को फैलाकर स्त्रियों के मुखों से लावण्य का हरण करना चाहता है ॥१८३॥

तिमिरपटलासिताम्बरमपहरदभिसारिकाजनौघस्य ।

निजतनुकान्तिवितान यल्लमसमोगविहितये यत्र ॥ १८४ ॥

जहाँ पर अपने प्रेमी से मिलने के लिए अभिसारिकायें अपने शरीर की कान्ति द्वारा काले यत्न को दूर करती हैं ॥१८४॥

तांत्रिक प्रयोग है—जिसमें आदमी को गहरे गड्ढे में उतारा जाता था । यह कोई तांत्रिक प्रयोग था ।

असुरविवरम् अचलं—अचल आदि सातपातालों में असुरबगवसति भूगर्भ भाग है, वहाँ पर महिलाओं की अधिकता है । महिला [ महान्ते पूज्यन्ते कामिजनेन इति महैला—यह अर्थ मा श्री त्रिपाठी जी ने टीका में दिया है । ] भागवत में कहा है कि अचल में नयपुत्र बच्च असुर रहता है, उसके मुख से स्वैरिणी, कामिनी और पुष्यली तीन स्त्रोगण उदभन्त हुए ।

१—जावण्य—मुष्ठाफलेषु छायायास्त्ररत्नविमान्तरा । प्रतिभाति यदङ्गेषु सावण्य यदिहोच्यते ॥

२—अभिसारिका—अभिसारपते कान्ठं या मन्मपवशवदा । स्वयं कामिसारत्वेपा धीरैरुक्ताभिसारिका ॥ सा०द० ३१७९

[अ] दहाममन्मधमहाज्वरवेपमाना, रोमाञ्चकण्टकितगात्रच्छतां वदन्ती ।

निःशङ्किनी व्रजति या प्रियसतमाय सा नायिका निगदिता स्वभिसारिकेति ॥

यत्र नितम्बवर्तीना विचलन्नयनान्तशितशरैर्ब्रूयित ।

शिथिलयति पथिकलोक स्वकलत्रसमागमोत्कण्ठाम् ॥ १८५ ॥

जहाँ पर स्त्रियों के नयनों के तीक्ष्ण बाणों की चोट खाया पथिक—अपनी स्त्री के समागम की उत्कण्ठा का भूल जाता है (अर्थात् उन्हा से फँस जाता है) ॥१८५॥

यत्र च कुलमहिलानामल्पत्व वचसि पाणिपादे च ।

स्वच्छत्वमाशयेषु व्यालोलविशालनेत्रे च ॥ १८६ ॥

जहाँ पर कुलान ललनाओं व वचनों में, हाथ पैरों में उत्पत्ता, हृदयों में निर्मलता और विशाल नेत्रों में चञ्चलता है ॥१८६॥

स्तनजघनचिकुरभारे घनता जीवेशसहनरागे च ।

कुलदेवतार्चनविधौ बलिशोभा मध्यभागे च ॥ १८७ ॥

स्तन-जघन और नेशा में भारीपन, जीवश प्रमी की नैसर्गिक प्रीति में घनता स्थिरता, कुलदेवता की पूजाविधि में तथा मध्यभाग में बलिनैबद्ध भोग की शोभा है ( मध्यभाग में—बलिलियों हैं ) ॥१८७॥

गम्भीरता स्वभावे चेतोभववाणतूष्णनाभौ च ।

विस्तीर्णता नितम्बे गुरुजनपूनानुरक्तचित्ते च ॥ १८८ ॥

स्वभाव में और कामदेव के धनुष के मध्य भाग में गम्भीरता है। नितम्बों में तथा गुरुजनों की पूजा में अनुरक्त मन में विस्तार है ॥१८८॥

हरिणायतेक्षणाना विन्धित्ति, कोशहरणमस्त्रेषु ।

कुटिलत्वमलकफक्तौ, बालाना कामचेष्टित यत्र ॥ १८९ ॥

हरिण ने समान श्रेणों वाली स्त्रियों की श्रेणों में ही शोभा है, कश का हरण (खोल का निकालना) अन्त्रा में है (कोई किसी का कोश धन नहीं लेता)। बालों में ही कुटिलता मिलता है ( मनुष्या में कुटिलता नही ), बच्चों में ही कामरथा ( इच्छित चण ) है, ( दूसरा में कामचेष्टा नहीं है । ) ॥१८९॥

सयमनमिन्द्रियाणामिनोपघातप्रहस्तमिस्रस्य ।

स्तघत्व तालतारौ, हारलतास्तरलसगता यस्मिन् ॥ १९० ॥

इन्द्रियों का ही नियमन किया जाता है ( कितने अपराधा का नही ), यह ही सूर्य को प्रदग् करता है, (कई अपराधी परगा नही जाता—अपराधा है ही नहीं ) । ताड के बद्ध में ही स्तम्भता-जन्ता है, (भय विपाद से किसी व्यक्ति में बढ़ता नहीं) तरल (मध्यमस्थि) हारलता में ही रहती है (किसी मनुष्य के स्वभाव में चञ्चलता नहीं) ॥१९०॥

१ 'तरलता हार-प्यग हायसर । मबदूत म—दारास्त्रारोस्तरलगुटहास्कोत्तिग बाह्यरुति—रू मेघ ।

भुजगा पररन्त्रदृश, रणङ्गन्ते प्रियतमाधरा यत्र ।

सूर्या व्यथानुमूर्तिर्नृत्याभ्यास-प्रवृत्तानाम् ॥ १६१ ॥

जहाँ पर सौँ ही दूसरे के छिद्रों को ढँढते हैं (पायलिपुत्र में कोई किमी के दोरों का नहीं देखता है), प्रियतमाओं के अन्तर ही काटे जाते हैं (किसा का अग्रमान नहीं होता), नृत्य के संखने के आरम्भ में ही आङ्गिक अभिनय में पाषा होता है (सूड चुभाकर किसा 'को व्यथा नहीं पहुँचाइ जातो') ॥१६१॥

नतवपुरण्यतिसरला, मन्थरगमनाऽपि नर्मदा यस्मिन् ।

गुरुजनशास्त्ररताऽपि स्वभावमुग्धागनाजनता ॥ १६२ ॥

शरीर के मुझे हाने पर भी जहाँ पर स्त्रियों अतिशय सरल (साधा) हैं, नर्मदा (परिहास में-प्रसीख) होने पर भी मथरगामी हैं, जहाँ पर स्त्रियों गुरुजन (श्वशुर आदि) एवं शास्त्र (शासन आज्ञा) म रत होने पर भी स्वभाव से मुग्धा (भोली और मोहग्रस्त) हैं ॥१६२॥

तस्मिन्मत्परावपूतं पुरहूत इव द्विजन्मना प्रवर ।

गुणरिव विद्यावसतिर्वसति स्म पुरन्दरो नाम्ना ॥ १६३ ॥

ऐसे पायलिपुत्र में इद्र के समान सैकड़ों यत्नों से पवित्र, वहस्पति का मोति त्रिया का स्थान ब्राह्मणों में श्रेष्ठ पुरन्दर नाम का ब्राह्मण रहता था ॥१६३॥

धर्मात्मजस्य सत्य, त्रिपुररिपोर्निजितकुसुमचापत्वम् ।

इरिनामिपक्जमुषो नियतेन्द्रियता जहास य सततम् ॥ १६४ ॥

मुविष्टिर की सत्यता को, महादेव की वाम त्रिपुर को, ब्रह्मा की जितेन्द्रियता को भी जो हँसता था—इससे भी अधिक सत्यवादी, काम विजया, जितेन्द्रिय था ॥१६४॥

न्यस्तुतवृष इति शर्वे, याचक इति कौस्तुभाभरणे ।

पीडितवसुधामुत इति कपिले, न बभूव यस्य बहुमान ॥ १६५ ॥

महादेव वृष [ नन्दी ] पर चढ़ने के लिये उसे नीचे गिराते हैं, परन्तु इसने वृष [ धर्म ] को नीचा नहा किया, त्रिपुत्र न रति से याचना करने अग्ने को याचक बनाया—इसने किसी क आग हाथ नहा पर रा, कपिल ऋषि ने

१ - 'ह्या सूची नृत्यमेदे च व्यधनोशिखयोरपि'-मेदिना, 'वत्तं गसा भवे' सूचो भाविनाशयोपजीवनात्'-सगीतरत्नाकर ।

२-मुग्धा—प्रथमावतीर्ण्यौवनमदनविकारा रतो वामा ।

पृथ्वी और सगर के पुत्रों को पीड़ित किया था, इसने पृथ्वी और पुत्रों को कभी पीड़ित नहीं किया इससे भी उसको कभी श्रद्धाकार नहीं हुआ ॥१६५॥

मार्गानुगतौ लुब्धो य प्राणिवपुर्विनाशविमुखोऽपि ।

परिहृतपरदारोऽपि स्वाकाक्षितगुरुजनप्रमद ॥ १६६ ॥

मृगों के पीछा करने में शिकारी ( पक्ष में मार्ग सदाचार के पालन में सदा लगा ) प्राणियों की हिंसा से विमुख पराई स्त्रियों का त्याग करने पर जिसने गुरुजनों की प्रसन्नता प्राप्त कर ली है ( यहां मार्ग, लुब्ध, प्रमद शब्द दो अर्थ रखते हैं । अतः विरोधाभासालंकार है ) ॥१६६॥

यस्यान्वये महीयसि सरसीय समस्तसत्त्वनिजवसतौ ।

सञ्चरितजन्मभूमौ, धिनिवारितकलिसलप्रसरे ॥ १६७ ॥

जिस प्रकार बड़े भारी तालाब में जलचर प्राणी बसते हैं उसी प्रकार इसके विपुल वश में समस्त सत्त्व गुणों का वास है, सदाचरण का जन्मस्थान है कलियुग का मल इस वश को छुआ भी नहीं है ॥१६७॥

पितृतर्पणप्रसंगे खड्गग्रहण न शौर्यदर्पेण ।

ब्रुटन मेखलिकाना बटुकजने, नो रताभिसमर्दे ॥ १६८ ॥

पितरों के तर्पण करने में गंडे के सींग का बना पात्र हाथ में लिया जाता है (हत्या के लिये नहीं) । शौर्य के अभिमान से कोई तलवार नहीं पकड़ता । बटुकों की भेरलार्यें टूटती हैं, सम्भोग में मेखला ( रशना ) नहीं टूटती ॥१६८॥

श्रुतिभेदेषु विवादो, नो रिक्थविभागमन्युना कलित ।

तेजस्विता हविर्भुजि, न शमैकरतेषु भूमिदेवेषु ॥ १६९ ॥

श्रुतिभेद शास्त्र विचार में ही भेद (शास्त्रार्थ) होता है, धन के बन्वार में कोई झगडा नहीं करता । अग्नि में ही तेजस्विता है, विनय प्रधान ब्राह्मणों में तेजस्विता क्रोध नहीं है ॥१६९॥

जरतामेव स्रलन, जपतामेवाधरस्फुरणम् ।

यजतामेव समिद्रुचिरेणाजिन एव कृष्णसपर्क ॥२००॥

बुढ़ापे के कारण ही लडखडाना होता है, ( शास्त्र या धर्म में च्युति नहीं होती ), जप करने में ही श्रद्धा आठ हिलते हैं ( क्रोध से होठ नहीं हिलते ) हवन करने में ही समिधाया की इच्छा होती है ( समित्-युद्ध में किसी की रुचि नहीं ), मृग चर्म में ही कालापन रहता है ( मनुष्यों के मन में कालापन नहीं है ) ॥२००॥

तस्याभूत् सकलकलोद्भासितपद्मद्वयस्य सुत एक ।

नाम्ना सुन्दरसेन कच इव वचसामधीशस्य ॥२०१॥

उस पुरंदर को अपनी सम्पूर्ण कलाशा से ( निदाओं से ६४ कलाओं से ) माता

एव पिता के दोनों कुलों को प्रकाशित करने वाला, सुन्दरसेन नाम का एक लडका था, जिस प्रकार कि बृहस्पति का अनेला कच था ॥२०१॥

पशुपतिनयनहुताशनभस्मितमवधार्य यं वपुष्मन्तम् ।

अपरमिव कुसुमचापं रतिरतये निर्ममे घाता ॥ २०२ ॥

महादेव की श्रौंलकी ज्वाला से मस्मीभूत कामदेव को जानकर विघाता ने कामदेव की पत्नी-रति के विलास के लिये मारने दूसरा देहधारी कामदेव ही बनाया था ॥२०२॥

तिष्ठन्तु तावदन्याः कुलललना यस्य रूपमवलोक्य ।

साऽपि महामुनिदयिता कृच्छ्रेण ररक्ष चारित्रम् ॥ २०३ ॥

जिसके रूप को देखकर वशिष्ठ की पत्नी अरुन्धती, अत्रि की पत्नी अनुसूया भी कठिनाई से अपने चरित्र को रक्षा कर पाती हैं, दूसरी कुल ललनाओं की तो बात ही क्या है ॥२०३॥

कलपीतफलकशोभां विभ्राणं यस्य प्रथुतरं वक्षः ।

दृष्ट्वा, चिराय लक्ष्मीर्हरिहृदये दुःस्थितिं मेने ॥ २०४ ॥

जिसके स्वर्ण पट के समान सुन्दर वक्षस्थल को देखकर लक्ष्मी भी विष्णु के हृदय में अपना रहना दुर्गति ही मानती है ॥२०४॥

कथमीदृश्यदि न कृतः शरिशकलैरथ कृतं कथं व्ययकः ।

इत्यथमीक्षमाणो निर्णयमगमन्न कामिनीसार्थः ॥ २०५ ॥

ब्रह्मा ने इसका शरीर चद्रमा के टुकड़ों से बनाया है, यदि उनसे बनाया है, तो यह कैसे पीडा बनक है ( मदन पीडाबनक है ), उसको देखकर स्त्रियाँ इस विषय में कोई निर्णय नहीं कर पाती ॥२०५॥

यो जग्राह हिमांशोः प्रसन्नमूर्तित्वमचलतः स्थैर्यम् ।

जलधरत उन्नतत्वं, गाम्भीर्यं चादसां पत्युः ॥ २०६ ॥

उसने! चन्द्रमा से माधुर्य, पर्वत से स्थिरता, मेघ से उन्नतत्व, समुद्र से गम्भीरता प्राप्त की थी ॥२०६॥

यो विनयस्य निवासो, वेदाध्यस्याश्रयः स्थितेः स्थानम् ।

प्रियवाचामायतनं, निवेतनं साधुचरितस्य ॥ २०७ ॥

१- स्थिरता-जो दुःख-सुख में, शोक-दर्प में समान बुद्धि रहना, जैसा कि गीता में कहा है-दुःखेष्वनुद्विग्नमना सुखेषु विगतस्पृहः ।

वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरप्यते ॥ गीता २।१६

धर्मायकामसंयुताः पशुभान्मनुजान्मुनिपताम् ।

व्यवसायादश्नन् स्वैर्यमित्यभिसञ्चितम् ॥ भरतनाथ्य २२।३२



आकर्याथ तमूचे वचनमिदं सुन्दरः सुहृन्मुख्यम् ।

शोभनमेतद्गीतं गुणपालित साधुनानेन ॥ २१३ ॥

इस आर्यां को सुनकर सुन्दर ने अपने प्रधान मित्र को कहा—“हे गुणपालित ! इस भले आदमी ने अच्छा ही कहा” ॥२१३॥

साधूनामाचरितं रत्नचेषां विविधलोकहेवाकान् ।

नर्मविदग्धैर्विहित कुलटाजनवक्रकथितानि ॥ ११४ ॥

गुरगूढशास्त्रतत्त्वं विटवृत्तं धूर्तवचनोपायान् ।

वारिधिपरिस्रां पृथ्वी जानाति परिभ्रमन् पुरुष ॥ २१५ ॥

( युगलकम् )

सजनों का आचरण, दुष्टों का व्यवहार, मनुष्यों की भिन्न भिन्न रुचि, चतुर पुरुषों से किया परिहास, कुलटाओं के मुख से निकले व्यंग, गुरु गम्भीर शास्त्र विषय, कामशास्त्र ने जानने वालों का चरित, धूर्तों के ठगने के उपाय, ये सब बातें समुद्र से गिरी सम्पूर्ण पृथ्वी पर घूम कर ही मनुष्य जान सकता है ॥२१४-२१५॥

अत उज्जित्य गृहस्थितिसुरालेशं विविधलाभपरिणामे ।

स्थापय गमनारम्भे वयस्य हृदयं मया सहितः ॥ २१६ ॥

इसलिये हे मित्र ! घर के मुख को छोड़कर नाना प्रकार के लाभ को देने वाली यात्रा पर मेरे साथ चलने के लिये तैयार हो जाओ ॥२१६॥

इत्थं निगदितवन्तं सुहृदुत्तरलाभलालासात्मानम् ।

ऊचे सुन्दरसेनं लज्जित इव सहचरो वचनम् ॥ २१७ ॥

ऐसा कहने पर मित्र के उत्तर की प्रतीक्षा करनेवाले सुन्दरसेन को मानो लज्जित होते हुए गुणपालित ने कहा ॥२१७॥

अभ्यर्थनानुबन्धो लज्जाकर एव मादृशा किन्तु ।

आकर्ण्य कथयाम. पथिकानां यानि दुःखानि ॥ २१८ ॥

तुम मेरे जैसे लोगों से प्रार्थना कर रहे हो वह मेरे लिये शर्म की वस्तु है । फिर भी यात्रिया को जो कष्ट होते हैं, उनको तुम्हें सुनाता हूँ ॥२१८॥

कपटकाधृतमूर्तिदूराध्वपरिश्रमायसितशक्तिः ।

पांसूत्करधूसरितो दिनावसाने प्रतिभ्रयाकांक्षी ॥ २१९ ॥

मातर्भगिति दयां कुरु, मामेवं निष्ठुरा भव, तवापि ।

कार्यवशेन गृहेभ्यो निर्यान्ति भ्रातरश्च पुत्राश्च ॥ २२० ॥

किं वयमुत्पाट्य गृहं प्रातर्गन्तार ईदृगेव सताम् ।

भवति निवासो यस्मिन्निज इव पथिका. प्रयान्ति विश्रामम् ॥२२१॥

चिथडों में लिपटा, मुसाफरी के कारण सारी शक्ति नष्ट होने से यका, धूल के ढेर से भरा, सायकाल में आश्रय की चाह से ( घर के द्वार पर जा कर कहता है ), हे माता, या हे बहिन ! इस प्रकार से कठोर न उनो । तुम्हारे भी भाई लडके कार्य के कारण घर से बाहर जाते हैं । क्या हम घर उठाकर सबेरे भाग जायेंगे ? सज्जनों के घर तो ऐसे होते हैं, जिनको यानी अपना ही घर मानकर विश्राम करते हैं ॥२१६-२२१॥

अत्र रजनीं नयामो यथाकथञ्चित् तवाश्रमे मात ।

अस्त गतो विवस्वान्, वद सप्रति कुत्र गच्छाम ॥ २२२ ॥

हे माता ! तुम्हारे घर में जैसे तैसे एक रात काट लेंगें, सूर्य छिप गया है, बोल, अच कहाँ जायें ? ॥२२२॥

इति बहुविधदीनवचा प्रतिगेहद्वारदेशमधितिष्ठन् ।

निर्भर्त्स्यते वराको गृहिणीभिरिदं वदन्तीभि ॥ २२३ ॥

( कुलकम् )

इस प्रकार नाना प्रकार की दीनता के साथ प्रत्येक दरवाजे पर भौख मॉंगते हुए विचारे को गृहिणियों यह कहते हुए अपमानित करती हैं ॥२२३॥

“न स्थित इह गेहपति, किं स्टसि वृथा, प्रयाहि देवकुलम् ।

कथितेऽपि नापगच्छति, पश्य मनुष्यस्य निर्बन्धम्” ॥ २२४ ॥

“घर का स्वामी यहाँ नहीं है, ध्यर्थ मैं क्यों चिल्ला रहे हो, मन्दिर में जाओ । कहने पर भी नहीं जाता, देखो ता कितना जिद्दी है” ॥२२४॥

अथ यदि कथञ्चिदपर पुन पुनर्याचितो गृहस्वामी ।

निदिशति सावधीरणमत्र स्वपिहीति जीर्णगृहकोणे ॥ २२५ ॥

तत्र कलहायमाना तिष्ठति गृहिणी विभावरीं सकलाम् ।

अज्ञाताय किमर्थं वासो दत्तस्त्वयेति सह भर्त्रा ॥ २२६ ॥

यदि किसी प्रकार बार-बार प्रार्थना करने पर दूसरा गृहस्वामी अपमान के साथ कह देता है कि इस पुराने छप्पर के एक कोने में पड़े रहो, तब उनकी स्त्री सारी रात उनसे झगडा करती रहती है, कहती है कि बिना जाने हुए को तुमने क्यों टिका लिया ॥२२५-२२६॥

ईदृगय सरलात्मा किं कुरुपे भगिनि तावको भर्ता ।

स्थास्यसि गेहेऽवहिता, भ्रमन्ति खलु वचका एवम् ॥ २२७ ॥

इति भाजनादियाच्चा बुद्धौ विनिधाय निकटवर्तिनो गेहान् ।

नारीजन समेत्य ब्रूते तामाप्तभावेन ॥ २२८ ॥ ( युग्मम् )

पास वाले घरों से बर्त्तन आदि मॉंगने के विचार से जब वह जाती है, तब

स्त्रियों इकट्ठी होकर बड़े विश्वास के साथ उससे कहती हैं, हे बहिन ! तुम्हारा पति बहुत सीधा आदमी है, तू क्या करेगी—घर में साफपान, होकर रहना, इसी रूप में ठग घूमते हैं ॥२२७—२२८॥

गृहशतमधिकमटित्वा कलमकुलत्थागुचणमसूरादि ।

एकीभूतं भोक्ता लुधीपत्तप्तोऽध्वगो भैक्षम् ॥ २२६ ॥

भूल से बेचैन बना यात्री बहुत से घरों से मोंगफर कलम ( शाली धान्य), कुलथी, कगनी, चना, मसूर इकट्ठा करके खाता है ॥२२६॥

परवशमशनं, वसुधा शयनीयं, सुरनिकेतनं सद्य ।

पथिकस्य विधिः कृतवानुपधानकमिष्टकारण्डम् ॥ २३० ॥

यात्री का भोजन दूसरे के अर्बान खाता है, सोने के लिये पृथ्वी, मन्दिर पर होता है, सिराहने का काम इंट से चलता है ॥२३०॥

इति निगदितवति तस्मिन्सुन्दरसेनस्य चोत्तरावसरे ।

इयमुपगीता गीतिः केनापि कथाप्रसङ्गेन ॥ २३१ ॥

गुणपालक के इतना कहने पर सुन्दरसेन के उत्तर देने के समय किसी ने इस प्रसंग में यह गीति गाई ॥२३१॥

“निजवरभवनं सुरगृहमुर्वातलमतिमनोहरं शयनम् ।

कदशनममृतमभीप्सितकार्यकनिविष्टचेतसा पुंसांम्” ॥ २३२ ॥

“अभिलषित कार्यों में चित्त लगाये हुए पुरुषों के लिये देवालय में रहना अपने घर से अच्छा है, पृथ्वी पर सोना उत्तम है, कुत्सित भोजन भी अमृत होता है” ॥२३२॥

तां च श्रुत्वा सुहृदं पौरन्दरिरिदमुवाच प्ररितुष्टः ।

मम हृदयगतं प्रकटितमेतेन, सहैव भवतु गच्छामः ॥ २३३ ॥

इसको सुनकर प्रसन्न होकर सुन्दरसेन ने मित्र से कहा—इसने मेरे हृदय की बात कही है, साथ ही चलेंगे ॥२३३॥

अथ सहचरद्वितीयः क्लेशसमुद्रावतरणकृतचित्तः ।

निरगात्सुन्दरसेनः कुसुमपुरादविदितः पित्रा ॥ २३४ ॥

सब प्रकार के दुःखों के उठाने का निश्चय करके, पिता को बिना बताये सुन्दरसेन मित्र के साथ अकेला कुसुमपुर से निकल गया ॥२३४॥

१- गीति का अर्थ—यस्या पारे प्रथमे द्वादश मात्रास्तथा तृतीयेऽपि ।

अष्टादश द्वितीयान्तिमपोगीतिर्हि गायकमीत्यै ॥

पश्यन् विदग्धगोष्ठीरभ्यस्यन्नायुधानि विविधानि ।  
 शास्त्रार्थानधिगच्छन् विलोकयन् कौतुकान्यनेकानि ॥ २३५ ॥  
 जानन् पत्रच्छेदनमालेरथ सिक्थपुस्तकमार्गिण !  
 नृत्य गीतोपचित तन्त्रीमुरजादिवाद्यभेदाश्च ॥ २३६ ॥  
 बुध्यन् वचकभगीर्विटकुलटानर्मवक्रकथितानि ।  
 वभ्राम सुद्वत्सहित सुन्दरसनो महीमखिलाम् ॥ २३७ ॥  
 ( विशेषणम् )

विद्वानों की गोष्ठी को देखते हुए, नाना प्रकार के शास्त्रों का अभ्यास करते हुए शास्त्रों के अभिप्राय को जानते हुए, बहुत से कौतुक आश्चर्यों को देखते हुए, पत्रच्छेदन कला, आलेख्य चित्रकर्म, मोम के मोडल बनाना, नृत्य, गाना, तन्त्री मुरज आदि वाद्यों को बजाना, ठगों के इशारे, भिट कुलटा के हास्य-परिहास-ज्यंग आदि को सीखते हुए सुन्दरसन मित्र के साथ सम्पूर्ण पृथ्वी घूमा <sup>१</sup> ॥ २३५-२३७ ॥

अथ विदितसकलशास्त्रो विज्ञाताशेषननसमाचार ।

निजग्रहगमनाकाक्षी स शिलोच्चयमर्बुद प्राप ॥ २३८ ॥

सम्पूर्ण शास्त्र जानकर सम्पूर्ण मनुष्यों के आचार-व्यवहार को समझ कर पर लौटने की इच्छा होने पर अर्बुदाचल (आबू पर्वत) पर पहुँचा ॥ २३८ ॥

तत्पृष्ठेशदर्शनलोलमति सुन्दर परिज्ञाय ।

गुणपालितो वभाषे विलोक्यतामद्रिरान इति ॥ २३९ ॥

अपने मित्र सुन्दरसेन का इच्छा आबू पर्वत को देखने की जान कर गुणपालित ने कहा—कि इस पर्वतराज को देखिये ॥ २३९ ॥

‘एष सुत सानुमत स्यन्दच्छीताच्छसलिलसपन्न ।

लोकानुक्रमयेव प्रालेयमहीभृता मरौ न्यस्त ॥ २४० ॥

इस अर्बुदाचल को मनुष्यों पर टपा करके हिमालय ने मरुभूमि में अपने पुत्र रूप में बनाया है इसमें से निमल शीतल जल के स्रोत बह रहे हैं ॥ २४० ॥

शिशिरकरकान्तमौलि कटकस्थितपवनभोचन सगुह ।

विद्याधरोपसेव्यो विभर्ति लक्ष्मीमय शम्भो ॥ २४१ ॥

यह अर्बुदाचल शम्भु की कान्ति का धारण करता है जिस प्रकार महादेव जी का मस्तक चन्द्रमा से शोभित है, उसी प्रकार इसने शिरपर भा चन्द्रकान्त मणियाँ से शोभित है । जिस प्रकार से महादेव जी सापा का कटक पहा धारण

१ पत्रच्छेदन, आलेख्य, सिक्थ कर्म आदि कलाओं का स्थापन में गिनी है ।

क्रिये हुए हैं, उसी प्रकार इस पर्वत के मध्य भाग (कटक) में वायु का सेवन करने वाले तपस्वी रहते हैं। जिस प्रकार शिव के साथ गुह-भार्तिक्य हैं, उसी प्रकार इसमें गुहायें हैं, जिस प्रकार शिव विद्याधर से धिरे हैं, उसी प्रकार इसमें भी विद्याधर-देवयोनि विशेष (अथवा गुप्तिना अँजन आदि से सिद्ध बने मनुष्य) रहते हैं ॥ २४१ ॥

अत्रतरुशित्तरसगतसुमनसइति जातविस्मयो मन्ये ।

अभिलषति समुच्चेतु तारा निशि मुग्धकामिनीलोक ॥ २४२ ॥

इस पर्वत के ऊँचे ऊँचे बृक्षों के शिरो भाग पर चमकते तारा को समूह देखकर मुग्ध स्त्रियाँ आश्चर्यभूत होकर रात में उनको पूल समझ कर एकत्रित करना चाहती हैं ॥ २४२ ॥

आश्चर्यं यदुपान्ते तिष्ठन्त्येतस्य सप्त मुनयोऽपि ।

अथवा कस्त्यार्पणं न करोति समुन्नतिर्महताम् ॥ २४३ ॥

यह आश्चर्य है कि इस पर्वत के पार्श्वभाग में सप्तर्षि भी रहते हैं अथवा ठीक है, वृष का उन्नति किरण अथवा ग्रह नहीं लाचती ? उनको खींचती है। (अर्जुनचल के पास में ध्रुव तारे के पास रहने वाला सप्तर्षि मण्डल है) ॥ २४३ ॥

अबगम्य निरचलम्वनमम्बरमार्गं पतगतुरगाणाम् ।

अयमवनिधरो मन्ये विश्रान्त्यै वेधसा जिहित ॥ २४४ ॥

सूर्य के घाटों के लिये आकाशमार्ग में कोई भी आश्रय स्थान न होने से ब्रह्मा ने उनका विश्रान्ति के लिये यह पर्वत बनाया है, ऐसा मैं मानता हूँ ॥ २४४ ॥

इममाश्रित्य हिमाशोरोपधय सन्निकर्षमुपयाता ।

प्रत्यासत्तिं प्रभुणा प्रायोऽनुमाहकवशेन ॥ २४५ ॥

इस पर्वत का आश्रय करके आपथियों चंद्रमा के समीप में आ गई, प्रभु की अनुकम्पा होने से ही सन्निकर्ष मिलता है ॥ २४५ ॥

सेक्तुमिवाशाकरिणो विसृजत्ययमवनिधरणपरिसिन्नान् ।

निर्भरसलिलकण्ठीधान्, भवति हि सौहार्दमेककार्याणाम् ॥ २४६ ॥

पृथ्वा टटाने के भाग से यह सिंगरुँ भरने के जल समूह का इस पर्वत पर बरसा रहे हैं। एक समान काय करने वालों में मित्रता ही होती है।

१ गीता में—पुष्पामि चौपथी सर्वा सामोभूवा रसात्मक ॥ गीता १२।१३ ॥

आपथय सवदन्ते सोमेन सऽगशा ।

यस्मै कृष्याति ब्राह्मणस्त राजन् पारयामसि ॥

( यह पर्वत और दिग्गज मृष्वी-के धारण करने के लिये बनाये गये हैं —दोनों में कार्य की समानता होने से मित्रता हो गई ) पर्वत पर-चारों ओर झरने हैं ॥२४६॥

हारीताहितशोभो मुदितशुको व्यासरमणीय ।

विश्रान्तभरद्वाज समतामयमेति मुनिनिवासस्य ॥२४७॥

यह अर्बुदाचल मुनियों के आश्रम के समान है, जिस प्रकार मुनि आश्रम में हारीत, शुक्रदेव, व्यास और भरद्वाज रहते हैं, उसी प्रकार यह पर्वत भी हारीत [ हरियाल हारील ], मन्दा से शोभित है तोते प्रसन्न है, व्यास [ कौश्यों ? ] से सुन्दर बना है, भरद्वाज पक्षी इस पर विश्राम करते हैं ॥ २४७ ॥

अस्मिन्नि सगा अपि परलोकप्राप्त्युपायकृतयत्ना ।

गन्धयहभोजना अपि न हिंसका , फलमुजोऽपि न प्लवगा ॥२४८॥

वायु का भोजन करने वाले [ मुनि ] साप की माति हिंसक नहीं फल का भोजन करने पर भी [ मुनि ] बन्दरों की भाति नहीं हैं । इस पर्वत पर मुनि लोग आसक्ति रहित बन कर परलोक की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करते हैं ॥ २४८ ॥

शुभकर्मकरता अपि पटकर्मण्या यता अपि स्ववशा ।

अनभिमतरौद्रचरिता शिवप्रिया अपि, वसन्ति शमनिरता ॥२४९॥

अदृष्ट जनक अकेले शुभकर्म में ही निरत, अध्ययन-अध्यापन यजन याजन दान प्रतिग्रह रूपी छ कर्मों में लगे, जितेन्द्रिय-सयमी, रौद्र भयानक आचरण को पसन्द न करने वाले शिव के प्रिय शम प्रधान-मुनि जहाँ रहते हैं ॥२४९॥

मूर्तिरिव शिशिररश्मेर्हरिणवती, सप्तपत्रकृतशोभा ।

सरशिरिव चण्डभास , पलाशिनी यातुधानजायेव ॥ २५० ॥

जिस प्रकार चन्द्रमा हरिण बाला है, उसी प्रकार यहाँ पर भी हरिण समूह है, जिस प्रकार सूर्य की शोभा सात घोड़ों से है, उसी प्रकार आबू पर सतवन के वृक्ष हैं । जिस प्रकार सूर्य का मार्ग है, उसी प्रकार यहाँ पर भी मार्ग बने हुए हैं, जिस प्रकार राक्षसों की पत्नी मास खाती है, उसी प्रकार से यहाँ पर पलाश-टाक के वृक्ष और मासपणा है ॥ २५० ॥

सोत्कण्ठेव समदना, वासुकसज्जेव कृततिलकशोभा ।

बहुहरिपीलुसनाथा नरनाथद्वारभूमिरिव ॥ २५१ ॥

उत्कण्ठा नायिका की भाँति यहाँ पर भदन है [ उत्कण्ठा नायिकाग्ने काम और यहाँ पर भदूर हैं ], जिस प्रकार से व्यासकसजा नायिका माये पर तिलक रचती है, उसी प्रकार तिलक वृक्षां से आबू शोभित है । जिस प्रकार राजा की द्वार भूमि बहुत से हरि ( घोड़ों ) से सनाथ-रहती है, उसी प्रकार यहाँ भी

बहुत से इरि ( सिंह या बन्दर ) और पीलु ( मनीष ) के वृक्ष हैं। जिस प्रकार राजद्वार में हाथी रहते हैं, वैसे वृक्ष पर भी हाथी हैं ॥ २५१ ॥

अर्जुनवाणप्रातैः कुम्भनाथवरुथिनीव सन्ध्याम् ।

शृङ्गसहस्रोपचिता लक्ष्मीरिव गगनदेशस्य ॥ २५२ ॥

जिस प्रकार अर्जुन के वाण समूहों से दुर्योधन की सेना द्रव गई थी, उसी प्रकार यह पर्वत भी अर्जुन वृक्ष, वाण ( भिस्ली ) वृक्षों से ढँपा है। आकाश की लक्ष्मी जैसे हजारों ऋक्षों से ( नक्षत्रों से ) भरी रहती है, उसी प्रकार आबू हजारों ऋक्षों से ( भालुओं से ) भरा है ॥ २५२ ॥

ध्वजिनीव दानयानां मिष्टसमधिष्ठिता, प्रियामेव ।

उद्यातरोहिणीका, रन्ध्रेयमुपत्यजा भाति ॥ २५३ ॥

( संदानितम् )

जिस प्रकार से राजसों की सेना में मिष्ट-राक्षस है, उसी प्रकार यहाँ पर मिष्टक ( आम के वृक्ष ) हैं, जिस प्रकार रात्रि में रोहिणी नक्षत्र निरलता है उसी प्रकार यहाँ पर रोहिणी ( मासरोहिणी ओपवि ) उत्पन्न हुई है, यह उपत्यका; [ पर्वत के पास की भूमि ] अति सुन्दर है ॥ २५३ ॥

इति दर्शयति वयस्ये, सुन्दरसेने च पश्यति प्रीत्या ।

स्वप्रस्तायोपगता गीतिरियं केनचिद्वीता ॥ २५४ ॥

इस प्रकार मित्र के दिग्गाने पर एव सुन्दरसेन के प्रीति से उपत्यका को देखते हुए—प्रसंग वश किसी ने स्वयं ही यह गीति गाई ॥ २५४ ॥

“अतिशयितनाकपृष्ठं पृष्ठ ये नार्बुदस्य पश्यन्ति ।

बहुषिययपरिभ्रमणं मन्ये क्लेशाय केवलं तेषाम्” ॥ २५५ ॥

१—कण्डिता — विविचकुमुममात्राभूपिताग्नी मनोज्ञा,

सुस्तरसविबोला सानुरागा स्वकान्ते ।

निवसति चट्टबाज्ञा वामगेहे चिरं या,

वरकविभिरिहोका सा किलोःकण्डितेति ॥ अनंगरंग १०।१९

(ख) आगन्तुकृत्वाचिच्छोऽपि देवान्नायाति यत्रिया ।

उदनागमदु क्षार्त्वा विरहोःकण्डिता तु सा ॥ सा. द. ३।८६

वासकसज्जा—यनिता शुभवासवेशमनि गृधुशय्यामधिवासिनी निशि ।

पतिमार्गचिरार्पितेक्षणा कथिता वापकसज्जिता बुधैः ॥

(ग) कुम्भे मण्डनं वरया. सज्जने वासवेशमनि ।

सा तु वापकसज्जा स्याद्विदितप्रियसज्जा ॥ सा. द. ३।८९

स्वर्ग की भूमि को भी तिरस्कृत करने वाले अर्बुदाचल के उपरी भाग को जो नहीं देखते, उनका बहुत से देशों में घमना केवल कष्ट ने लिये ही है ॥२५५॥

आकर्ण्य च स वभाषे, महात्मनाऽनेन युक्तमुपगोतम् ।

शिखरिशिर पश्यामो वयस्य रम्य समास्त्र्य ॥ २५६ ॥

इसको सुनकर सुन्दरसेन ने कहा कि “इम महात्मा ने ठीक ही कहा है, हे मित्र ! पर्वत के शिखर पर चढ़कर इसकी सुन्दरता को देखें” ॥२५६॥

अथ गिरिवरमारूढो विलोकयन् विविधविबुधभवनानि ।

वापीरुद्यानभुव सरासि सरितश्चचाराविस्मेर ॥ २५७ ॥

इसने पीछे पर्वत पर चढ़कर बहुत से देवमंदिरों को वापी (बावड़ी), उद्यान, तालाब और नदिया को आश्चर्य से देखते हुए घूमने लगा ॥२५७॥

अचिराभामिव विघना, ज्योत्स्नामिव कुमुदवन्धुना विक्रलाम् ।

रतिमित्र मन्मथरहिता, श्रियमित्र हरिविद्मस पतिताम् ॥ २५८ ॥

हस्तोच्चय विधातु, सार सकलस्य जन्तुजातस्य ।

दृष्टान्त रम्याणा, शस्त्र सकल्पजन्मनो जैत्रम् ॥ २५९ ॥

विकसितकुमुमसमृद्धि, शृगाररसापगैककलहसीम् ।

लोलापल्लववल्ली, व्रतिनामवधानवर्मणा भल्लीम् ॥ २६० ॥

विचरन्तुपवनमण्डपपुष्पप्रकराभिरामभूपृष्ठे ।

रममाणा सह सरया ललनामालोकयामास ॥ २६१ ॥ (कुलकम्)

निगाह के सामने पड़ी नायिका का वर्णन—मेष रहित अचिराभा (विद्युत्) के समान, चंद्रमा से बिजुड़ी ज्योत्स्ना के समान, कामदेव से प्रथक् हुई रति के समान, विष्णु के वक्ष से गिरी लक्ष्मी की भक्ति, ब्रह्मा के हस्त कौशल का नमूना, सम्पूर्ण प्राणियों की सार भूत, सुन्दरता का उदाहरण, कामदेव का विजय प्राप्त करने का शस्त्र, खिले फूलों की समृद्धि-वसन्त ऋतु, शृगाररस रूपी नदी की कलहसी, नाना प्रकार के पल्लवों वाली लीलावती लता, तपस्वियों क समाधि रूपी कवच को तोड़ने म भाला, फूलों से सुन्दर उपवन मण्डप में घूमती एय सखियों के साथ खेलती ललना नायिका को देखा ॥२५८-२६१॥

अवलोकयतस्तस्य स्मरसायकवेध्यतामुपगतस्य ।

इदमभवन्मनसि चिर विग्मयमाराभिभूयमानस्य ॥ २६२ ॥

नायिका को देखते हुए कामदेव के बाण से विद्ध होने के कारण उसके मन में बहुत अधिक आश्चर्य हुआ ॥२६२॥



क्वेदं खलु विश्वसृज. कौशलमत्यद्भुतं जातम् ।

येन विरुद्धानामपि घटितैकत्र स्थितिस्तथा हीयम् ॥ २६३ ॥

ब्रह्मा का यह श्रुत कौशल कहाँसे उत्पन्न हो गया, जिसमें विरोधि वस्तुओं का भी एकत्र सकलन सुन्दरता उत्पन्न करता है ॥ २६३ ॥

ललितवपुर्निर्दोषा स्फुरदुज्ज्वलतारकाभिरामा च ।

निर्वाच्यवदनकमला जितवीणा कण्ठितवाणी च ॥ २६४ ॥

प्रकटितविग्रहमंस्थितिरतिशोभाघटितसन्धिवन्धा च ।

उन्नतपयोधराह्वया शरदिन्दुकरावदाता च ॥ २६५ ॥

अभिमतसुगतावस्थितिरभिनन्दितचरणयुगलरचना च ।

अतिविपुलजघनवेशा विध्वस्तशरीरविहितशोभा च ॥ २६६ ॥

सुन्दर शरीर, निर्दोष, हिलती हुई निर्मल आँखों की पुतली से मनोहर (चंचल आँखों वाली), श्रवणीय मुख शोभा, वीणा का भी जीतने वाली मधुर वाणी, उत्तम शरीर विन्यास, सुन्दर गठन, अभिराम सन्धिवन्ध (श्रवण सश्लेष), भारी स्तन, शरद् शत्रु ने चन्द्रमा के समान शुभ्रता, सुन्दर चलना और खड़ा होना, अनिन्दित चरण युगल, अति विपुल जघन प्रदेश, नष्ट शरीर [ कामदेव ] से बनाई शरीर शोभा, वाली हारलता को देखकर सुन्दरसेन में प्रथम अनुराग उत्पन्न हुआ<sup>१</sup> ॥ २६४-२६६ ॥

आविर्भवदनुरागे तस्मिन्नथ यलितलोचना सहसा ।

सापि यभूव मृगाक्षी हस्तगता कुसुमचापस्य ॥ २६७ ॥

इसके पीछे सुन्दर आँखोंवाली, मृगाक्षी हारलता भी सहसा कामदेव के वशीभूत हो गई<sup>२</sup> ॥ २६७ ॥

तरुमूलमाश्रिताया विस्मृतसकलान्यकर्मण सपदि ।

तस्या गात्रलतायामंकुरितं सात्त्विकैर्भाविः ॥ २६८ ॥

द्वुरन्त ही वह वृक्ष के नीचे बैठ गई, सब कार्यों का करना भूल गई, उसके शरीर में सात्त्विक भाव उत्पन्न हो गये<sup>३</sup> ॥ २६८ ॥

१. इन हीन श्लोकोँ में विरोधाभास अलंकार है ।

२. यहाँ पर कवि ने नायक में पहले कामवेग दिखाया है, परन्तु कविप्रसिद्धि से प्रथम नायिका में अनुराग कहा जाता है—

एवं नारी भवेदक्ता पुमान् परचात्तद्विद्विषै ॥

३. काम के सात्त्विक भाव—

रतम्न स्त्रेदोऽथ रोमाञ्च रत्नरङ्गोऽथ वेपथुः ।

वैवर्ण्यमधु प्रह्वय इत्यष्टौ सात्त्विका मताः ॥ सा. द. ३।१३२

सत्त्व-भन में मत्त्वगुण से उत्पन्न होनेवाले विकार सात्त्विक-भाव हैं ।

सेवोपवनसमृद्धिस्तस्मिन्नेव क्षणे स्मर स्मृत्या ।

ता व्यथयितुमारंभे, प्रभोर्हि कृत्य करोति खलु सर्व ॥ २६६ ॥

वसत से उत्पन्न उपवन का ऐश्वर्य इसने शरीर में ( हारलता का यौवन ही वसन्त कृत उपवन की शोभा थी ), अपने प्रभु [कामदेव] को स्मरण करके उसको पीड़ित करने लगा, क्योंकि सत्र कोई अपने स्वामी की आज्ञा का पालन करता है ॥ २६६ ॥

गात्रशिरासन्धिभ्य प्रस्वेदजल विनिर्ययी तस्या ।

अन्तर्ज्वलितमनोभयहृदयभुजा दह्यमानेभ्य ॥ २७० ॥

अदर जलती हुई कामाग्नि से जलते हुए उसने गात्र शिरा-संधियों से प्रस्वेद पसीना जल निकलने लगा ॥ २७० ॥

कुसुमशरजालपतिता मुहुर्मुहुर्विदधती विवृत्तानि ।

अनिमेष पश्यन्तीमत्स्यवधूमनुचकार सा तन्वी ॥ २७१ ॥

कामदेव के जाल में पसा हारलता मछली की भाँति करवट खलती थी, मछली के समान निर्निमेष दृष्टि अपलक आँख से वह देख रही थी ॥ २७१ ॥

स्तब्धतनु सोत्कम्पा पुलकवती स्वेदिनीं सनि श्वासाम् ।

विदधे तामसमशर, क्रीडति हि शठो त्रिशिष्टमासाद्य ॥ २७२ ॥

काम के कारण उसका शरीर ढब बन गया, उसमें उत्कण्ठा उत्पन्न हो गई, शरीर रोमाञ्चित हो गया, पसीना बहने लगा, गहरे लम्बे श्वास लेने लगी । धूर्त व्यक्ति-शेष को प्राप्त करके इच्छानुसार खेलता है ॥ २७२ ॥

उच्छ्वासैरुल्लसन कुचयुगले, सौष्ठव विलासानाम् ।

अभिलपितेन, प्रेम्णा स्निग्धत्व चक्षुषोर्मनोहारि ॥ २७३ ॥

अनुरक्त्या वदनरुचिं, वचसि च गमने च साध्यसस्तरलनम् ।

तस्या भदन कुर्वन्नुपनिन्ये चारुतामवधिम् ॥ २७४ ॥ ( युग्मम् )

उच्छ्वासों से स्तन ऊपर उठने लगे, अभिलाषा—चाह से विलासों में सौष्ठव आगया, प्रेम के कारण आँखों में स्नेह तथा मुदरता आ गई । अनुरक्ति से चेहरे की कान्ति बढ़ गई, भय के कारण बोलने में और चलने में लडखडाना प्रारम्भ हो गया, इस प्रकार से कामदेव ने उसकी मुन्दरता सीमा तक पहुँचा दी ॥ २७३—७४ ॥

१ माघ ने कहा है—'प्रभुवित्तमेव हि जनाऽनुवृत्तते ।' शिशुपालवध ११।४१

२ विलास—यानस्थानासनादीनां मुखनेत्रादिकर्मणाम् ।

विशेषस्तु विलास स्यादिष्टसदृशनादिना ॥ सा० द० ३।९९९

विदधति—आकुञ्चितकपोलाक्ष सस्वन । न स्वन तथा ।

प्रस्तावोत्थ सानुरागमाहुर्विहासत बुधा ॥

पार्व्यगतैऽपि प्रेयसि कामरारात्तारताड्यमानाऽपि ।

न शशाक साऽभिधातुं नित्तगतं प्रणयभंगतो भीता ॥ २७५ ॥

मेरे कहने से कहीं प्रणय भंग न हो जाये, इस भय से कामदेव के बाणों से पीड़ित होते हुए एव प्रेमी के पास में होने पर भी उसने अपने मन की बात नहीं कही ॥२७५॥

अथ विदितचित्तवृत्तिः सक्तदृशं प्रियतमे समाकृष्य ।

मदनेन दह्यमानां विहसितविशदं जगाद् तामालोक्य ॥ २७६ ॥

इसके पीछे प्रियतम में निगाह लगाये; कामदेव से जलती हारलता की मनो-दशा को समझकर, दैसती हुई मखी ने हारलता को खाँचकर स्पष्ट रूप में देखा ॥२७६॥

अयि हारलते संहर हरहुंकृतिदग्धदेहसंज्ञोभम् ।

सद्भावजाऽनुरक्तिर्न हि पश्यं पश्यनारीणाम् ॥ २७७ ॥

हे हारलता ! महादेव से भक्त मैंने कामदेव जन्म सद्भाव-वैचनी को रोक, वेश्याओं के लिए सद्भाव जन्म प्रेम ( अभिमान जन्म अनुराग ), अच्छा नहीं ॥२७७॥

१. स्त्री चाह-कामना करती है परन्तु बाणी से कुछ नहीं कहती, पुरुष कामना करता है, और मुक्त से प्रेम की माँग भी कर बैठता है — ( 'क्षिर्यः कामयन्ते, न तु प्रार्थयते, पुरुषः कामयते-प्रार्थयते च' — वात्स्यायन ) । प्रथम समा-गम में ही स्त्री के करने चाप कहने पर इच्छापन दीखता है—

सर्वा एव हि कर्माः पुरुषेण प्रयुज्यमान वचनं विप्रदन्ते,

न तु क्षणमिभामपि वार्णं वदन्तीति घोटकमुलः ॥ वात्स्यायन ।

नैपथ्य में भी क्षमयन्ती के लिए कहा है—

'का नाम बाला द्विवराजपाणिप्रदाभिलाषं कथयेदलम् ॥' ३।५३

२. प्रीति-अनुराग चार प्रकार का है:

धैर्यासादभिमानाच्च तथा संभवयादपि ।

विपयेन्पथ सन्त्रज्ञाः प्रीतिनाहृद्यनुर्विधाम् ॥ वात्स्यायन २।।

कर्माम्पाय से, सकार से, स्वयं व से और परस्पर दान मानादि से उत्पन्न, इसमें अभिमान जन्म प्रीति को यहाँ कहा है, जैसा काव्यसूत्र में कहा है—

अनन्वयस्तेव्यपि पुनः कर्मवैविपदात्मिका ।

संस्वराग्नायते प्रीतिर्पा सा एषादाभिमानिनी ॥

इसी को अनुराग में समा कहा है—'समयोगे समा स्मृता'—४।२७ ।

अवधीरय धनविकलं, कुरु गौरवमकृशसंपदः पुंसः ।

अस्मादृशां हि मुग्धे धनसिद्धये रूपनिर्माणम् ॥ २७८ ॥

निर्धन का तिरस्कार करो; धनी पुरुष को सम्मान दो, हे मुग्धे ! हम लोगों का रूप धन प्राप्ति के लिए ही बना है ॥ २७८ ॥

अभिरामेऽभिनिवेशं विदधाना विविधलाभनिरपेक्षा ।

उपहस्यसे मुमध्ये विदग्धवारांगनावारैः ॥ २७९ ॥

हे मुग्धे ! नाना प्रकार के लाभों की उपेक्षा करके अभिराम ( मनोरु-  
सुन्दर ) मनुष्य में अनुरक्त होने पर चतुर वेश्याओं की हँसी का पात्र बनोगी—  
वे तुम पर हँसेंगी ॥ २७९ ॥

येषां श्लाघ्यं यौवनमभिमुखतामुपगतो विधिर्येषाम् ।

फलितं येषां सुकृतं जीवितसुखिवार्थिता येषाम् ॥ २८० ॥

ते वश्याः स्वयमेव त्वामनुबध्नन्ति मदनशरभिन्नाः ।

न हि मधुलिहः कृशोदरि मृग्यन्ते चूतमञ्जर्या ॥ २८१ ॥

( युगलकम् )

जिन कामुकों का यौवन प्रशसनीय होगा, जिनका भाग्य उदय हो गया होगा,  
जिनका सुकृत फल गया होगा, जिनमें जीवन के सुख की चाह होगी, वे कामदेव  
के शरों से विधे अवश्य ही तेरे पास खय आयेगे, आम की मजरी के पास भ्रमर  
स्वयं लिचकर आते हैं, मंजरी उनके पीछे नहीं भागती २ ॥ २८०-८१ ॥

इति गदितवतीमालीं कामशारासारभिन्नसर्वांगी ।

अव्यक्तखलिताक्षरमूचे कृच्छ्रेण हारलता ॥ २८२ ॥

सखी के इस प्रकार कहने पर, कामदेव के वाणियों से छिदी हारलता ने  
लड़खड़ाती एवं अस्पष्ट वाणी द्वारा कठिनाई के साथ कहा ॥ २८२ ॥

१. सेमेन्द्र ने भी कहा है—

प्रक्षीणचित्तेन निरस्यमेन किं रूपयुक्तेन करोति वेश्या ।

विच्छिन्न दुग्धा न पुनः सर्गा सा कस्य गौश्राश्रययोपयुक्ता ॥

इत्युक्त्वा तं क्षपितविभवं बद्धकामं भुजगी

त्यक्त्वा गच्छेत्सधनमपरं वैशिकोऽयं समाप्तः ॥ समयमातृका १।८१, ८१

२. धन्यत्र भी कहा है—नारयन्ते मधुनि मधुषाः पारिजातप्रसूतैः,

नाभ्यर्धन्ते तुदिनरुचिना चन्द्रिकाभिश्चकोरः ।

काश्चिद्वास का वचन प्रसिद्ध ही है—

‘न रत्नमन्विच्छति मृग्यते हि तत्’—कुमार. ५।४४

सरि कुरु तावद्यन्नं पटुतरमतिवेदनाप्रतीकारे ।

क्रोडीकृता विपत्त्या न भयन्त्युपदेशयोग्या हि ॥ २८२ ॥

हे सखी ! वेदना को दूर करने का कोई उत्तम उपाय शीघ्र करो, तिर पर आई विपत्तियाँ केवल उपदेश से दूर नहीं की जा सकती ॥ २८३ ॥

अस्त्रायत्तं प्रेष्यान् मृदुपवनं सुरभिमास उद्यानम् ।

इयतीं खलु सामग्रीं भवति क्षीणायुषामेव ॥ २८४ ॥

अस्वतन्त्र प्रेमी, मृदु पवन, सुरभिमास ( चंद्रमान ), उपवन, ये सब, उनके मारने के लिए पर्याप्त हैं, जिनकी आयु क्षीण हो गई है ॥ २८५ ॥

मत्वा मदनार्शोविपवेगाकुलितविप्रहामालीम् ।

समुपेत्य शशिप्रभया पौरन्दरिरभिदवे कृतप्रणतिः ॥ २८६ ॥

सर्प निप की भाँति कामाग्नि से बेचैन, अपनी सखी को जानकर, चन्द्रप्रभा ने मुन्दरसेन के पास जाकर, हाथ जोड़कर निवेदन किया ॥ २८७ ॥

यदि नाम कृणुद्वि गिरं गणित्वाभावोपजनितवैलक्ष्यम् ।

तदपि कथनीयमेव, क्षिग्धापदि न हि निरूपयते युक्तम् ॥ २८८ ॥

वेश्या माय के कारण उत्पन्न लज्जा मुझे कहने से रोकती है, तथापि कहना ही होगा, क्योंकि स्नेहोजन की आपत्ति में औचित्य का विचार नहीं होता ॥ २८९ ॥

एतावति संसारे परिगणिता एव ते मुजन्मानः ।

आपन्नपरिप्राणे व्याकुलमनसः स्फुरन्ति ये बुद्धौ ॥ २९० ॥

इतने बड़े ससार में उर्दी लोगों का जन्म धन्य है, जो आपत्तियों में पँसे मनुष्यों की रक्षा करते हैं; उनको ही मनुष्य स्मरण करते हैं ॥ २९१ ॥

यस्मिन्नेव मुहूर्ते चतुर्विपयं गतोऽसि मे सरया ।

तत एवारभ्य गता विधेयतां दग्धमदनस्य ॥ २९२ ॥

जिस मुहूर्त में आप मेरी सरि की आँसुओं के सामने पड़े हैं, तब से ही वह दुष्ट कामदेव के अधीन बन गई है ॥ २९३ ॥

रोमोद्गमसन्नद्धं भित्त्वाऽन्तर्निप्रहं परापतिता ।

सत्या मानससम्भवकोट्यडविनिर्गता इषयः ॥ २९४ ॥

कामदेव के धनुष से निकले हुए शरों के रोमाचरुपी कणों का भेदन करके शरीर के अन्दर अतः करण में गिरे हैं ॥ २९५ ॥

१० माय ने भी कहा है—'विपदि न दृष्टिवाऽतिभूमिः'—८१२० आशुषि में अमर्षादा दूषित नहीं ।

किं वा वदतुं वराकी, कुत्र समाश्वसितु, यातु कं शरणम् ।

पीडयति भृशं यस्मान्नित्यं शुचिदक्षिणो मृदुः पवनः ॥ २६० ॥

गरीब बेचारी वह क्या कहे; कहीं सान्त्वना पावे; किसकी शरण में जाये; क्योंकि निर्मल, कोमल, दक्षिण की वायु उसको निरन्तर बहुत अधिक पीड़ित कर रहा है<sup>१</sup> ॥२६०॥

वचसि गते गद्गदतामुज्जितमौनव्रताश्विराय पिकाः ।

हृष्टा व्यथयन्ति सखी जातावसरा निरर्गलं विरुतैः ॥ २६१ ॥

उसकी वाणी में अस्पष्टता आजाने से, देर से धारण किये मौन व्रत को छोड़कर, अब कोयलें भी प्रसन्न होकर निरर्गल ( अण्ड-बण्ड ); वाणी में बोलकर मेरी सखि को पीड़ित कर रही हैं ॥२६१॥

स्त्रलिताकुलिते गमने तन्वंग्या अर्गणितश्रमा हंसाः ।

मुचिराल्लब्धावसरा. कुर्वन्ति गतागतानि परितुष्टाः ॥ २६२ ॥

उस तन्वगी की चाल में वेचैनी धोर स्त्रलन आ जाने से अब इस भी थकान की चिन्ता न करके, देर में अवसर मिलने के कारण प्रसन्नतापूर्वक खाना-आना करने लगे हैं ॥२६२॥

उप्योच्छ्वसितसमीपे विदहमानोऽपि मधुकरमत्स्याः ।

अलककुसुमं न मुंचति, कृच्छ्रेष्वपि दुस्त्यजा विषयाः ॥ २६३ ॥

उसके गरम उच्छ्वास से जलते हुए भी भ्रमर, केशों में लगाये फूल को नहीं छोड़ते; शारीरिक कष्ट होने पर भी विषय दुस्त्याज होते हैं, कठिनाई से छोड़े जाते हैं<sup>२</sup> ॥२६३॥

नो वारयसि तथा मां साम्प्रतमिति कथयतीव मधुलेहः ।

नि.सहवपुपः कर्णे श्रुतिपूरकपुष्पसंगतो गुञ्जन् ॥ २६४ ॥

अब भ्रमर भी असहाय बनी सखी के कान में लगे फूल के सहारे गूँजते हुए, मानों यह कह रहे हैं, कि जिस प्रकार से पहले तुम मुझे हटाती थी, अब उस प्रकार से नहीं हटाती ॥२६४॥

१. घसन्ते दक्षिणः—

बहामं दक्षिणारूपो मलितमल्लयजः सारधिर्मनकेतोः ।

प्राष्ठः सीमन्तिनीनां मधुमयसुद्गन्मानचीरः समीरः ॥ काव्यमीमांसा ॥१८॥

२. तुषों को पीड़ित करने, छोड़ों के काटने में भी नायिका को घानन्द मिषता है ।

प्रशिथिलभुजलतिक्रायास्तस्या पतितस्य हेमन्टकस्य ।

यत्प्रापणं पृथिव्यास्ताग्मिन्पलु मुचहस्तता हेतुः ॥ २६५ ॥

उसकी बाहुओं के शिथिल-कृश हो जाने के कारण स्वर्ण का बलय जो भूमि पर गिर पड़ा; वह उसकी उदारता ही समझो ॥२६५॥

रशनागुणेन विगलितमेकपटं तन्नितम्बतश्चित्रम् ।

पतनाय नियतमथवा निपेयणं गुरुकलत्रस्य ॥ २६६ ॥

रशनाग्जु-करघनी से रिसना हुआ भी एक पैर भारी श्रोणि भाग से नहीं गिरता; यह बड़े आश्चर्य की बात है<sup>२</sup> जब कि ( गुरुपनी पर आसक्ति करना लोक में पतन का कारण होती है, यहाँ निपरीत है ) ॥२६६॥

अंगीकृत्य मनोभयमुरसि तथा लालितोऽपि हतहारः ।

तापयति सर्षीं तत्क्षणमन्तर्भिन्नाल्लुक्त- कुशलम् ॥ २६७ ॥

बड़े चाव से पहना दुष्ट हार कामदेव के पक्ष को स्वीकार करके-शत्रु बनकर सली को दुःख दे रहा है, अन्तर से जो पूछ गये-उनकी वहाँ कुशल ? उनकी वहाँ भी शान्ति नहीं ( हार भी अन्तर से छिपा होता है ) ।

वाससितं स्वेदजलं कज्जलमलिनाश्रुवारिणा मिश्रम् ।

कुचतटपतितं तस्याः प्रयागसंभेदसलिलमनुकुरुते ॥ २६८ ॥

चन्दन के लेप से मुवासित स्वेद जल, कज्जल मिश्रित औंसुओं ने साथ मिलकर स्तना पर गिरकर, प्रयाग में मिली गंगा-यमुना के जल का अनुकरण करता है<sup>३</sup> ॥२६८॥

पिक्रन्वमलयसमीरणमुमनं स्मरभृंगदहनपरिकलिता ।

पद्मतपश्चरति भवत्परिरन्मणसौर्यलम्पटा चाला ॥ २६९ ॥

फोयल का कुदरना, मलयाचल की वायु ( शीत वायु ), मल्लिकादि पुष्प, काम और भ्रमर ये पाँच काम से पीड़ित उसको जलाने वाली अग्निपौ हैं ।

१. काळिदास ने भी सोने के घण्ट के गिरने का उल्लेख किया है—  
'मुद्गमण्डिपन्थनात् कनकवलयं अस्तस्रसं मया प्रतिसार्धते'--  
शाकुन्तल-२।१३
२. गुदरनी का सेवन मिश्रित पतन का कारण है—यह दूसरा घण्ट है ।
३. काळिदास ने रघुपथ में गंगाके श्वेत जल और यमुना के काले जल के मिलने का वर्णन किया है—

अचिच्च वृष्णोरत्नभूपगेव भस्मांगारागात्रनुरोरवरस्य ।  
परयश्चरद्याद्रि विभाति गगा विन्नप्रधाहा यमुनावरगैः ऋषुः १३।५७

आपसे मिलने के सुख की लालसा में वह बाला पाँच श्रमियों का तप कर रही है ॥२६६॥

न परा पतति वराकी दशमी यावन्मनोभवावरथाम् ।

त्रायस्व सुभग तावच्छरणगततरक्षणं व्रत महताम् ॥ ३०० ॥

वह गरीब जब तक काम की दसरी दशा (मृत्यु) तक नहीं पहुँचा, हे सुभग !  
उससे पहिले ही उसको बचा लो—सज्जनों का यही धर्म है कि शरणागत की रक्षा करें ॥३००॥

अथ तद्वचसि कृतादरमुद्भूतमनोभव समवधार्य ।

अवगोतिभीतचेता उचे गुणपालित सुहृदम् ॥ ३०१ ॥

शशिप्रभा के वचना का आदर करके, मनोभव काम उत्पन्न हुआ जान कर निन्दा क भय से अपने मित्र गुणपालित को मन में डरते हुए सुन्दरसेन ने कहा ॥३०१॥

यद्यपि भारप्रसरो दुर्वार प्राणिना नवे वयसि ।

चिन्त्य तदपि विवेकिभिरवसान वारयोपिता प्रेम्ण ॥ ३०२ ॥

यद्यपि उठती जवानी में प्राणियों के लिए काम विकार असहनीय होता है,  
तथापि बुद्धिमानों को वश्या प्रेम का परिणाम सोचना ही चाहिये ॥३०२॥

वारस्त्रीणा विभ्रमरागप्रेमाभिलापमदनरुज ।

सहवृद्धिज्ञयभाज प्ररयाता सपद सुहृद ॥ ३०३ ॥

वश्याओं का विभ्रम अनुराग-प्रीति, प्रेम, अभिलाषा-चाह, कामपीडा,  
ये सब सम्पत्ति के मित्र तुल्य हैं, सम्पत्ति के साथ ये बढ़ते हैं, और सम्पत्ति के घटने से घटते हैं ॥३०३॥

१ पञ्चाभि तप—यज्ञियैर्दाक्षिणि शुष्कैश्चतुर्विंशु चतुःकृपम् ।

वह्निसंस्थापन, प्रीतिमे तीर्त्वांशुस्तत्र पचम ॥ कादिकापुराण

२ काम की दस अवस्थायें—

अभिजापोऽथ चिन्ता स्यात्स्मृतिश्च गुणकीर्त्तनम् ।

उद्वेगोऽथ प्रज्ञाप स्यादुन्मादो व्याधिरेव च ।

जडतामरणे चैव दशमे जायते ध्रुवम् ॥ शृंगारतिलक १५

साहित्यदर्पण में (३।१६०) में भी काम की ये ही दस अवस्थायें कही हैं ।

३ विभ्रम भ्रूविज्ञास—अधुर पत्तवकलिकाप्रसूनफलभोगभाणिय क्रमत् ।

प्रेम मान प्रणय स्नेहो रागोऽनुराग हरयुक्त ॥

विभ्रम आदि—प्रेमाभिजापो रागश्च स्नेह प्रेम रतिस्त्वथा ।

शृंगारश्चेति सभोग सप्तावस्थ प्रकीर्त्तित ॥



ताभिरयदातजन्मा करोति संगं कथं यासाम् ।

क्षणदृष्टोऽपि प्रणयी, रूढप्रणयोऽपि जन्मनो पूर्वः ॥ ३०४ ॥

सत्कुल में उत्पन्न मनुष्य इन वेश्याओं के साथ सगति कैसे करे, जिनके लिए क्षण भर में देखने से उत्पन्न नया प्रेम तथा पुराना-गाढ़ा स्नेह भी एक ही समान होता है ॥३०४॥

प्रद्युम्नः प्रद्युम्नो विरूपकः रत्न विरूपकः सततम् ।

सुस्निग्धः सुस्निग्धो रूक्षो रूक्षस्तु गणिकानाम् ॥ ३०५ ॥

वेश्याओं के लिए बनी मनुष्य ही प्रद्युम्न—कामदेव होता है, जिसके पास बहुत से रुपये होते हैं, वही विशेष रूप से रूप वाला है, द्रव्य से जो स्निग्ध-भरा होता है, वही उनसे लिये स्नेही है, धन से रूक्ष-हान व्यक्ति उनके लिए रूक्ष-कठोर होता है ॥३०५॥

यासां जघनावरण परकौतुम्बद्वये न तु त्रपया ।

उज्ज्वलवेपा रचना कामिजनादृष्टये न तु स्थितये ॥ ३०६ ॥

वेश्याओं का-जघनों को ढाँपना लज्जा के लिए नहीं होता, अपितु दूसरों में आसक्ति उत्पन्न करने के लिये होता है । इनका उज्ज्वल वेश लोक-मर्षाटा के लिये न होकर क मिजनों के आकर्षण के लिये होता है ॥३०६॥

मांसरसाभ्यवहारः पुरुषाहतिपीडया न तु स्पृहया ।

आलेख्यादी व्यसनं बैदग्ध्यव्याप्तये नतु विनोदाय ॥ ३०७ ॥

इनका मांसरस का भोजन करना स्वाद के लिये न होकर, अनेक कामुक पुरुषों के सेवन अन्य शरीर पीडा की शान्ति के लिए होता है । इनका आलेख्य-चित्ररूप आदि कार्य व्यसन-वचि मनो विनोद के लिए न होकर केवल चतुरता दिखाने के लिये होता है ॥३०७॥

१. वित्तेन वेत्ति वेश्या स्मरसदृशं बुद्धिनं जराजीर्णम् ।

वित्त विनाऽपि वेत्ति स्मरसदृशं बुद्धिनं जराजीर्णम् ॥ क्षेमेन्द्र.

२. वेश्यायें मांसरस का सेवन करती हैं, यह उल्लेख मृत्पृकटिक में भी आया है, मायं. मण्डली का मांस-रस सेवन करती हैं--

रमय च राज्ञरहभ ततः खादिष्यसि मत्स्यमांसकम् ।

पुताम्भो मत्स्यमाताम्भो शाना मृतकं न सेवन्ते ॥ १,२६

यदिष्यसि खम्बदशा विताळ मावारकं सूत्रशतैर्दि पुक्तम् ।

मांसस्य खादितुं तथा तुष्टिञ्च कर्तुं सुहृ सुहृ सुहृ सुहृ सुहृ इति ॥ ८।२२

क्षेमेन्द्र ने भी लिखा है—मत्स्ययूपरसैर्दासी पृतञ्जीरपञ्चापहुभिः ।

मियं पराह्मुच्चमिव प्रस्थानयति यौवनम् ॥

देशोपदेश—१।२२

रागोऽधरे न चेतसि, सरलत्वं भुजलतासु न प्रकृतौ ।

कुचभारेषु समुन्नतिराचरणे नाभिनन्दिते सद्भिः ॥ ३०८ ॥

इनके अघर में ही राग-रक्तिमा-लाली रहती है, चित्त में राग-अनुराग नहीं रहता । भुजाओं में ही सरलता-सीधापन होता है, प्रकृति में-स्वभाव में सीधापन नहीं होता । स्तनों में ही समुन्नति मिलती है, सजनों से अभिनन्दित आचरण में उन्नति नहीं होती ॥३०८॥

जघनस्थलेषु गौरवमाकृष्टधनेषु नो कुलीनेषु ।

अलसत्वं गमनविधौ नो मानववंचनाभियोगेषु ॥ ३०९ ॥

वेश्याओं के जघनों में गुस्ता-भारीपन या श्रेष्ठता रहती है, जिनका धन ले लिया है, उनके लिए अथवा कुलीन पुरुषों के लिए प्रतिष्ठा नहीं रहती । इनकी चाल में ही अलसत्व मन्दगति रहती है, मनुष्यों के ठगने के आग्रह में मन्दगति-दीर्घसूत्रता नहीं रहती ॥३०९॥

वर्णविशेषापेक्षा प्रसाधने नो रतिप्रसंगेषु ।

ओष्ठे 'मदनासंगो नो पुरुषविशेषसंभोगे ॥ ३१० ॥

इनके लिये प्रसाधन में ही वर्ण-श्वेत-कृष्ण आदि का विचार है, रति क्रीड़ा में वर्ण—ब्राह्मण-क्षत्रिय आदि वर्ण का विचार नहीं होता । मदन-भोग का संग-उपयोग ओष्ठ के लिए ही है, पुरुष विशेष के संभोग में मदन-काम का संग नहीं रहता ॥३१०॥

या चालेऽपि सरागा, वृद्धेष्वपि विहितमन्मथावेगा ।

क्लीवेष्वपि कान्तदृशः, साकांक्षा दीर्घरोगेऽपि ॥ ३११ ॥

वेश्यायें बालक में भी अनुराग कर सकती हैं, वृद्ध में भी कामवेग की मींग कर सकती हैं, नपुंसक में भी प्रेमी या पति के समान वर्त्ताव कर सकती हैं, चिर-रोगी पुरुष में भी आकांक्षा-चाह कर सकती हैं ॥३११॥

स्वेदाम्युकणोर्पचिता अनार्द्रतानिजनिवासमनसश्च ।

आबिष्कृतवेपथवो यज्ञोपलसारकठिनाश्च ॥ ३१२ ॥

पसीने में स्नान किया जाने पर भी इनको अग्ने निवास और मन में किसी प्रकार का स्नेह या प्रीति नहीं होती । कँपकरी दीखने पर भी ये वेश्यायें हीरे के सार भाग के समान [ हीरे से भी अधिक ] कठोर होती हैं ॥३१२॥

जघनचपला अनार्याः, परभृतयः कृतकनेत्ररागाश्च ।

सर्वांगार्पणदक्षा असमर्पितहृदयदेशाश्च ॥ ३१३ ॥

ये ज्वरनचपला—व्याभिचारिणी होती है, अनार्य-दुष्ट स्वभाव की, दूसरों से पुष्ट होती है, इनकी आँवों में बनानटी प्रीति रहती है, सारे शरीर को अर्पित करने में चतुर, परन्तु हृदय को अभी अर्पित नहीं करती ॥३१३॥

न कुलसमुत्पन्ना अपि भुजंगदशानकृतवेदनाभिज्ञा ।

क्वन्दर्पदीपिका अपि रहिवा. स्नेहप्रसंगेन ॥ ३१४ ॥

सकुल में उत्पन्न न ( नकुल-न्वीले के वंश में उत्पन्न ) होने पर भी निर्वे ( भुजंग-सौंपों ) के काटने की वेदना को जाननेवाली, स्नेह-तेल के बिना भी कामदेव के दीपक होती है ॥३१४॥

उज्ज्वलतृपयोगा अपि रतिसमये नरत्रिगोपनिरपेक्षा ।

कृष्णौफाभिरता अपि हिरण्यकशिपुप्रियाः सततम् ॥ ३१५ ॥

तृप स्वभाव के पुरुष ( अथवा तृप धर्म ) के छोटने पर भी रति नाटा में पुरुष विशेष का विचार न करने वाली होती है । कृष्ण मगवान कृष्ण ( अथवा कृष्ण-वास ) में प्रेम रखने पर भी हिरण्यकशिपु से ( हिरण्य-न्वर्ण, कशिपु-अत्र और आच्छादन-मान-मान, रहन-सहन ) सदा प्रेम रखती है ॥३१५॥

मेरुमहीचरभुज इव किम्पुरुषसहस्रसेवितनितम्याः ।

नीतय इव भूमिभृतां सुपरिहृतानर्थमयोगाः ॥ ३१६ ॥

जिन प्रकार मेरु परत का कटि भाग हजारों किन्नरों से सेवित है—किन्नर यहाँ रहते हैं, उसी प्रकार इनका कटि भाग भी हजारों तुलित पुरुषों से सेवित होता है । जिन प्रकार राजाशा की नीति उनको अनर्थों से बचाती है, उसी प्रकार वैश्यायें भी अपने नाश या भयोलसि के अक्सर को बचाती है ॥३१६॥

बहुमित्ररविदारणलज्याभ्युदया. सरोरहिण्य इव ।

टाकिन्य इव च रक्तव्याकर्षणकौशलोपेता ॥ ३१७ ॥

१—इसमें जघनचरखा छन्द है, इसका छन्द—

प्राक्प्रतिपादितमर्षे प्रथमे चरमवले तु चरबायाः ।

स्रद्धमाथयेय मोक्षा विशुद्धीभिर्जघनचरखा ॥

२—यूर पुरुष का छन्द—

(क) उपकारपरो नित्ये शोचताः स्नेज्यस्तथा ।

दशगुणशरीरत्र धीमान् धीरो वृषो मठः ॥ स्मरदीपिका ।

(ख) कृशा मोक्षतमौखरो हृदभुजाः सुपौढवृक्षस्पज्ञा

कृशा भूमनिमोदरारथ कठिनाग्यागान्विता शोचता ।

शोगान्तः स्थिरक्षीर्णोचनभृजः स्वारण्युतोदरा

प्राञ्चोक्षा वृद्धमा नगगुणनितं कानाङ्कुरं विप्रती ॥ अर्नगरं ३।१०

जिस प्रकार से कमलिनी मित्र-सूर्य की बहुत-सी किरणों से विकसित होती है, उसी प्रकार इनका अभ्युदय भी इनके बहुत से मित्रों के नख-चतों के कारण होता है। डाकिनी की भाँति ये खून चूसने में अति कुशल होती हैं ॥३१७॥

प्रतिपुरुषं सन्निहिताः कृत्यपरा विविधविकरणोपचिताः।

बहुलार्थप्राहित्यः प्रकृतय इव दुर्ग्रहा गणिकाः ॥ ३१८ ॥

( अर्थचतुष्टयवाचिनीयमार्या )

वेश्यायें प्रकृति की भाँति कठिनाई से पकड़ में आती हैं। प्रकृति [ सत्व, रज और तम की साम्यावस्था-स्वभाव ] प्रत्येक मनुष्य में पृथक्-पृथक् है, साल्म मत में प्रकृति ही कार्य करने वाली कर्ता है, भिन्न भिन्न इन्द्रियों से युक्त, नाना प्रकार के अर्थ विषयों को प्रकृति ग्रहण करती है ॥३१८॥

वेश्यायें-गुरूप मात्र के प्रति निरपेक्ष होती हैं-समन पास जाती हैं, पुरुषों को मोहती हैं—अपनी ओर रींचती हैं, नाना प्रकार के रति-गुणों को जानने वाली अत्यधिक बन का समग्र करने वाला होता है।

सादरमाकृष्य चिरं कुमुमस्तवकं च नरविशेषं च।

रिक्तीमर्तुं निपुणा. क्षुद्रा. क्षुद्राश्च चुम्बन्ति ॥ ३१९ ॥

जिस प्रकार से क्षुद्रा-मधुमक्खियों फूल के गुच्छे का रस देर तक आदर के साथ लेकर उसे रिन—गाली बनाने में कुशल होता है, उसी प्रकार से क्षुद्रा—वेश्यायें भी पुरुष को आदर के साथ देर तक उसका भ्रम लेकर उसको बगाल बनाने में कुशल हाती हैं ॥३१९॥

परमार्थकठोरा अपि विषयगतं लोहक मनुष्यं च।

चुम्बन्मपायाणशिला रूपाजीराश्च कर्षन्ति ॥ ३२० ॥

परिणाम में कष्टदायक, विषयों—काम में आसक्त मनुष्य को रूप से जीविका प्राप्त करने वाली वेश्यायें चुम्बक की भाँति रींचती हैं। जिस प्रकार से अति-शय कठोर, पहुँच में आये लोहे को चुम्बक पत्थर रींचता है, उसी प्रकार वेश्यायें भी विषयों में दँभे मनुष्य को रींचती हैं ॥३२०॥

१. चुम्बक और नायिका-वेश्या में समानता है, चुम्बक लोहे को रींचता है, वेश्यायें पुरुष को रींचती हैं। चुम्बक चार प्रकार का है—आद्यपंक, चुम्बक, द्वायक और धामक, वेश्यायें भी चार प्रकार की हैं, उनके भी यही नाम हैं—

‘मस्तर इव लोऽग्नि, नद्याकर्षकचुम्बकद्रावद्वेष्येकोऽग्नि परं क्षितर ॥  
पुरुषान् स्वरूपमहिम्ना दूरादपि आकर्षितुं समर्था आकर्षिणी । आकृष्य  
नरान् तान् स्वसंज्ञान् करोति वा सा चुम्बिका । आणिकमायेव

पुरुपाक्रान्ताः सततं कृत्रिमशृंगाररागरमणीयाः ।

आहिन्यमानजयनाः करेणवो वार्योपाश्च ॥ ३२१ ॥

वेश्यायें हथिनियों की भाति होती हैं । जिस प्रकार पुरुषों से अधिष्ठित, निरन्तर बनावटी शृंगार की लाली से-सिन्दूर लगाने से मुन्दर; जयन भार से चोट करने पर हथिनियों चलती है, उसी प्रकार वेश्यायें भी पुरुषों से अधिष्ठित, कृत्रिम शृंगार की लाली से मुन्दर, जयन-कटिके सामने के भाग से आगत होने पर प्रसन्न होती हैं ॥ ३२१ ॥

उचितगुणोत्तिष्ठा अपि पुरतो विनिवेशिते सुवर्णलवे ।

भ्रगिति पतन्ति मुरेन प्रकटप्रमदा यथा च तुलाः ॥ ३२२ ॥

जिस प्रकार से तपनू मजबूत डोरिया से उपर को उठाई होने पर भी आगे के पलड़े पर थोड़ा सा सोना रखने पर तुरन्त नीचे गिर पड़ता है, उसी प्रकार वेश्यायें भी उचित योग्य सौन्दर्यादि गुणा से अपनी बनाई होने पर भी थोड़े से स्वर्ण के कारण तुरन्त नीचे गिर जाती हैं-दूसरे की बन जाती हैं ॥ ३२२ ॥

यहिरूपपादितशोभा अन्तमुन्द्धा स्वभावतः कठिनाः ।

वेश्याः समुद्दिग ( दूग ? ) का इव कणन्ति यन्त्रप्रयोगेण ॥ ३२३ ॥

वेश्यायें-ये मिल्की सिपियाँ की भाति गहर से ही देखने में मुन्दर होती है, अन्दर से लाली रहती हैं, स्वभाव से ही कठोर होती है, यत्र प्रयोग से [ सम्भोग के समय ] शब्द करती है, सिपिया कला मीराल के प्रयोग से शब्द करती हैं ॥ ३२३ ॥

यध्नन्ति येऽनुरागं देवहतास्तासु धारयन्तितासु ।

ते नि सरन्ति नियतं पाणिद्वयमग्रतः कृत्वा ॥ ३२४ ॥

स्पर्शमात्रेण वा तान् द्वावपिपुं शब्द द्वावर्था । भांदायवा समागमादानेन भ्रामयति सा भ्रामिका ॥

पुंश्र भी चार प्रकार के हैं—कामकलाकौशलेन यो नारीमाकर्षति स आकर्षकः ।  
 १. विकौशलेन परचुम्बति स चुम्बकः । धौपिधिविदोष-  
 योगेन कुत्तमर्दनेन वा यः कठिनकामिनीं द्वावयति स  
 द्वावकः । अन्यासक्तो योऽप्यनारीं भ्रामयति प्रतारयति  
 स भ्रामकः ॥—श्रीतनुसुखराम मनसुखराम त्रिपत्नी ।

१. हथिनी का लक्षण—स्यूजा विगलकुन्तला च बहुभुक् क्रूरात्रवावजिता  
 गौराद्री कुटिकागुञ्जीकधरणा इत्या नमरकधरा ।  
 विभ्रागेममदाम्बुगान्धरतित्रं तोयं भृशं मन्दगा  
 दुःसाप्या मुरतेर्भव गद्गदवा स्यूजौटिका हस्तिनी ॥  
 धनंशरंग १११४

भाग्य के मारे जो मनुष्य इन वेश्याआ में प्रेम करते हैं, वे अवश्य ही दोनों हाथों को आगे करके—भिन्ना के लिये हाथ पैलाकर घर से निकलते हैं ॥३२४॥

इदमुपदिशति वयस्ये सुन्दरसेने च मन्मथव्यधिते ।

प्रस्तावादुपगतु गीतित्रयमभ्यधायि केनापि ॥ ३२५ ॥

अपने मित्र द्वारा कामदेव से पीड़ित सुन्दरसेन को इस प्रकार का उपदेश देते हुए—प्रसगवश किसी ने ये तीन गीतियाँ गार्—॥ ३२५ ॥

तरुणीं रमणीयाकृतिमुपनीता स्मृतिभुवा वशीकृत्य ।

परिहरति यो जडात्मा प्रथमोऽसौनालिषोधिना भ्रान्तिम् ॥३२६॥

कामदेव के वश में हुई, सुन्दर आकृति वाली तरुणी के समीप आने पर भी जो उसका परित्याग करता है, वह अभागा नि सन्देह प्रथम श्रेणी का बेवकूफ है ॥ ३२६ ॥

इदमेव हि जन्मफल जीवितफलमेतदेव यत् पुसाम् ।

लडहनितम्बवतीजनसभोगसुरेन याति तारुण्यम् ॥ ३२७ ॥

पुरुषा के शरीर धारण का यही जीवित फल है कि सुन्दर नितम्बावाली स्त्री के सम्भोग से उनका यौवन व्यतीत होता है ॥ ३२७ ॥

सुमनोमार्गणदहनज्वालावलिदह्यमानसर्वांग्य ।

प्रवलप्रेमप्रवणा प्रमदा स्पृहयन्ति नाल्पपुण्येभ्य ॥ ३२८ ॥

कामदेव के आशा की आग्नि से जलते हुए सम्पूर्ण अर्गों वाला—काम से पीड़ित, अतिशय प्रेम करनेवाला स्त्रियाँ भाग्य हीना से प्रेम नहीं करती ॥३२८॥

एवमुपश्रुत्य वच समुवाच पुरन्दरात्मज सुहृदम् ।

मम हृदयादिव कृष्ट्वा गीतमिदं साधुनाऽनेन ॥ ३२९ ॥

इन वचनों को सुनकर सुन्दरसेन ने अपने मित्र को कहा—मेरे हृदय की बात चुराकर इसने कही है ॥ ३२९ ॥

जघन के आघात—‘अथ जघनाभिघातमुपेक्षमाणा गनधूरतिजवनगया गवन्तर-  
मारुदवती’—सुदाराक्षस ।

जिस प्रकार से हस्तिनी नायिका रति में दुःसाध्य होती है, उसी प्रकार वेश्या को भी हतोप नहीं होता ।

१ वाञ्छेति शीयते नारी यावद् वर्षाणि षोडश । तस्मात्परं च तरुणी यात्रवा  
प्रियता भवेत् ॥ तद्वृष्वभिस्त्रुडा स्याद्यावत्पञ्चाशता भवन् । वृद्धा तत्परतो  
जया सुरता/सवपञ्चिना ॥ नागरसर्वस्व

कविने ठीक ही कहा है—सौन्दर्यवच्छेद विज्ञानविज्ञा तादृग्यसपन्नमनोहरधी ।  
समागतैयं विज्ञानेऽभिज्ञापादुपेक्षते केन विषयानेन ॥

तदतनुसायकविकलां हारलतां हरिणशायतरलाश्रीम् ।

आश्वासयितुं यामो, गुणपालित किं विकल्पितैर्बहुभिः ॥ ३३० ॥

इस लिये, हे गुणपालित ! हरिण के छौने के समान सुन्दर आखों वाली, कामदेव के शशों से पीड़ित हारलता को सान्त्वना देने के लिये चलें, बहुत सोच विचार करने से क्या लाभ ? ॥ ३३० ॥

अथ तत्र काऽपि गणिका गणयन्ती परिचितं द्रव्यविवरणम् ।

प्रतिशान्तमेव मन्दिरमीर्ष्याव्याजेन निहरोध ॥ ३३१ ॥

वेश्याहाट में सुन्दर सेन ने जो देखा उसका वर्णन—

जिसका घन रौच लिया गया ऐसे, निर्धन परिचित व्यक्ति का कोई गणिका अनादर करती हुई, ईर्ष्या के उद्वेग से उसे घर में घुसने से रोक रही है ॥ ३३१ ॥

काचिद्वचनदत्त लुण्ठोक्तजीर्णवसनमत्रलोक्य ।

वेश्या त्रिपीडति स्म क्षपाक्षये व्यर्थकर्तव्या ॥ ३३२ ॥

प्रातः काल में कोई वेश्या किसी धूर्त द्वारा लपेटकर दिये पुराने पटे वस्त्र को देखकर चिन्ता में पड़ी सोच रही है—कि सब किया व्यर्थ गया ॥ ३३२ ॥

देवस्मृत्या पतित दृष्टिपथं भग्नमूल्यविटमेका ।

प्रलिता रूपा भुजिष्या जग्राह जवेन धावित्वा ॥ ३३३ ॥

पैसा न दिये हुए धूर्त को भाग्य से सामने आया देखकर; कोई वेश्या क्रोध से जनती हुई जोर से दौटकर पकड़ रही है ॥ ३३३ ॥

अन्त स्थितकामिगृहद्वारगतं लुप्रवित्तनरमन्या ।

समुवाच कुट्टनी नृज कल्लोलाकल्पदेहेति ॥ ३३४ ॥

श्वेत धुले वस्त्र पहने, लुप्तवित्त (निर्धन) मनुष्य के द्वार पर आने पर; कोई वेश्या उसे यह कहकर चन्मा दे रही है कि अतः तो जाओ, दूसरा आदमी अन्दर बैठा है ॥ ३३४ ॥

प्रकटितदराननखलतिरभिदधती राजपुररतियुद्धम् ।

अपरा पुरः सखीना वारवधुराततान सौभाग्यम् ॥ ३३५ ॥

कोई वेश्या दूसरी सखियों के सामने राजपुर के साथ रतियुद्ध में लगे दस्त और जखों के प्रदर्शन को दिखाकर अन्ते सौभाग्य की प्रशंसा कर रही है ॥ ३३५ ॥

१० इसी से कहा है—अक्रोध-भूल, पारिवर्षिक-हनाम, भाट-सुभाषित भाट की सद्गुण, परार्थ-दूत के लिये घन, धीरार्थ-शत्रु का भाग, इनको सुरन्त ही छे लेना चाहिये, पीड़े नहीं मिचते ।

अन्या कामिस्पर्धावर्धितभाटी समुत्सुका चण्डी ।

सौभाग्यगर्वदर्प समुवाह विलासिनीमध्ये ॥ ३३६ ॥

कामिजना की होड़ से बड़े मूल्य के कारण पैसा लेने में उतावली, कोई वश्या वेश्याओं के बीच में अपने सौभाग्य का घमण्ड कर रही है ॥ ३३६ ॥

एकगणिकानुबन्धक्रोवोद्यतशखकामिनो काऽपि ।

सम्भ्रमतो वावित्वा निवारयामास कुट्टनी कलहम् ॥ ३३७ ॥

एक ही वश्या में नम्बर लगा होने से (देर होती देखकर) क्रोध के कारण पागल बनकर, शख निकाल कर, परस्पर लड़ते हुए दो कामुकों को कोई कुट्टनी मयसे दाड़कर हटा रहा है ॥ ३३७ ॥

धनमाहृत्य बहुभ्यो भुज्यत एवेन केनचित्सार्धम् ।

इति धनवन्त कामिनमावर्जयति स्म काऽपि वारवधू ॥ ३३८ ॥

कोई वश्या बहुता से धन टोंकर पत्नी एक के साथ में [ जिससे मन लगा है उसके साथ में ] भांग कर रही है। कोई वश्या धनी कामी पुरुष भी गुशाम्त कर रही है—उस अनुकूल कर रही है ॥ ३३८ ॥

गायन्मात्रागाथा द्विपत्निकया सौष्टवेन विट एक ।

बध्नाम पुरो दास्या विदधद्विकृतीरनेकविधा ॥ ३३९ ॥

कोई विट सस्वर द्विपदिका, मात्रा गाथा (छन्द विशेष) गाता हुआ, नाना प्रकार की भावभंगियों बनाते हुए, दासी के सामने घूम रहा है ॥ ३३९ ॥

कश्चित्पण्यस्त्रीणा विभवोपचितान्यपुरुषयोननया ।

विदधाति स्माराधनमधनत्वमुपागत कामा ॥ ३४० ॥

कोई निर्धन बना मनुष्य कामी एवं धनी पुरुषों को वेश्याओं के साथ मिला कर मुक्त में रति प्राप्त कर रहा है ॥ ३४० ॥

त्वयि सत्त्वेन मया गृहमुज्झितमधुना परेव जाताऽसि ।

इति ढौकमलभमान कश्चिद् गणिकामुपानेभे ॥ ३४१ ॥

तेरे कारण से ही तो मैंने घर छोड़ा, अब तू पराई बन गई—इस प्रकार कोई पुरुष वेश्या को उपालम्भ दे रहा है ॥ ३४१ ॥

१ विट—भद्रितनिजबहुविभवा परविभवक्षपणदीक्षिता परघात् ।

धनिश वेश्यावेश स्तुतिमुखा मुखा विटारिचन्त्या ॥

कलाविद्यास धमेन्द्र कृत ।

मात्रा द्विपदी—शुद्धा खण्डा च मात्रा च सूर्योत्त धनुविधा ।

द्विपदी करयाण्येव कालेन परगायते ॥ भरत-नाट्यशास्त्र ।

स्वमवाप्तवदत्ता में द्विपदी का उल्लेख आया है ।



उपितामपरेण सम वृद्धविटाना पुर पराजित्य ।

त्याजयति स्म भुजग कश्चिद् गणिका द्विगुणभाटीम् ॥ ३४७ ॥

मिसी वेश्या ने पहले एक कामी से मूल्य लेकर पीछे से दूसरे के साथ समय मिलाया । इसी शिकायत पहले कामा ने वृद्ध विटों की पचायत के सामने की । उनसे निर्णयानुसार दण्ड रूप वेश्या से दुगुना मूल्य पहले कामी को मिला ॥३४८॥

दृष्ट्वा त्वया विशेषक वलयकलापी शशिप्रभाभुजयो ।

यादृ भगण भगण कीटक् कानु तर सोमया दत्त ॥ ३४३ ॥

मिसी की परस्पर बातचात—शशिप्रभा की माहुओ में वलयकलापी—आभूषण देकर एक मिट दूसरे मिट से पूछ रहा है कि ऐसा आभूषण कहाँ से और कय लाकर तुमने सोमा वेश्या को दिया है, सच कहो, गोलो ॥३४३॥

अथ चतुर्थो द्विप्रसञ्चीनाम्बरयुगलस्य दत्तस्य ।

तदपि परुपाभिधाना वद मदनक किं करोम्यत्र ॥ ३४४ ॥

आज चार दिन हो गये चीनाशुक (चीन देश की रेशमी) का जोड़ा दिये, परन्तु हे मदनक ! वह निम्नतर अभी तक भी सीधी नहीं होती—अनुकूल नहीं होती, बोल क्या कहें ॥३४४॥

स्नेहपरा मयि केली, कलहसक, मित्तु राक्षसी तस्या ।

माता नात्मीकृत्तु वर्षशतेनापि शम्यते पापा ॥ ३४५ ॥

हे कलहसक ! केली तो मुझे चाहती है, परन्तु उसका राक्षसी माँ एक सी साल में भी अपनी नहा की जा सक्ती—नहीं पमीजती ॥३४५॥

मुमन कुट्टमवास सज्जोत्तु किमिति तिष्ठसि विचिन्त ।

अथ तव दयित्तिनाया किञ्चलक नर्तनानसर ॥ ३४६ ॥

हे किञ्चलक ! फूल और नसर से मुनासित बख को तैयार करो, क्यों निश्चित बैठे हो, आज तेरी दयित्तिना [प्यार] के नाचने का असर है—प्रोग्राम है ॥३४६॥

यदि नाम पच त्रिचमास्वयि कुम्ते प्रेम धनलवं दृष्ट्वा ।

तदपि न रागवर्ता सा, कन्तर्पम मि वृथा गर्व ॥ ३४७ ॥

१. पञ्चपदलारो—नापकलापी कटक तथा स्वाल्पप्रचुरकम् ।

शजूर कासापितिक वाहुनावाविभूषणम् ॥

मत्तु नात्र्यगच्छ २११२८

२. शूरदृक्कटिक में भी छात्रा है—

कीनिर्विमानिगनी कापुरपाकी विवर्धने मदत ।

हे कन्दर्पक ! तुम्हारे थोड़े से धन को देकर यदि वह पाँच दिन से तुम्हारे साथ प्रेम करने लगी है, तो भी वह तुम पर रीभी नहीं, क्यों झूठा घमण्ड करते हो ? ॥३४७॥

जीवन्नेव विलासक परिहर दूरेण मूढ हरिसेनाम् ।

बद्धावेशास्तस्यां व्यापृतपुत्रो महाविषमः ॥ ३४८ ॥

हे विलासक ! अपना कुशल चाहते हो तो दूर से ही हरिसेना का देहली छोड़ दो । उससे प्रेम करने वाला व्यापृत का पुत्र बहुत ही बुरा है—मार डालेगा ॥३४८॥

केसरया क्षणदत्तं कृत्वांशुकमुपरि कामिजालस्य ।

स्तब्धग्रीवं भ्रमतश्चन्द्रोदयं पश्य माहात्म्यम् ॥ ३४९ ॥

जन्मदिवस या होली आदि किसी उत्सव में मिले बल्ल को ऊपर दुपट्टे के रूप में ओढ़कर केसरा नाम की वेश्या गर्दन को ऊँची करके ( घमण्ड के साथ) कामी जनों के सामने घूम रही है । चन्द्रोदय के समान उसका माहात्म्य देख (जिस प्रकार चन्द्रोदय के देखने का माहात्म्य है, उसी प्रकार इसके देखने का भी माहात्म्य है) ॥३४९॥

कौमारकं विहन्तुं रतिसमये मदनसेनायाः ।

इच्छामि किन्तु तस्या मात्राऽतीव प्रसारितं वदनम् ॥ ३५० ॥

मदनसेना के साथ प्रथम समागम करके उसका कौमार्य तोड़ना ( नधुनी उतारना ) चाहता हूँ । किन्तु उसकी माता बहुत मुँह बारही है—धन माँगती है ॥३५०॥

विभ्रम कियतस्तपस. फलमेतद्यदुपभुज्यते मदिरा ।

स्वकरेण पीतशेषा मदधूर्णितमदनसेनया दत्ता ॥ ३५१ ॥

मद्यपान से उन्मत्त बनी मदनसेना के; अपने हाथ से, पीने से बचा दी हुई मदिरा; जिन्हें पीने को मिलती है; उनका यह विभ्रम-मद्यपान बड़े भारी तप का फल है ॥३५१॥

१. वेश्या और क्षतावल्लव एक समान हैं—

वेश्याक्षताः सरागं पूर्वं तदनु प्रक्षीनतनुरागम् ।

पश्चादपगतसारां पश्यन्वमिव दर्शयन्ति निजचरितम् ॥

२. मद्यपान—रति के पूर्व और पश्चात् दोनों समय करने का उल्लेख है—

यथा—आचार्यैश्च रतिषु विजसन्मन्मथश्री विजाता

दीपस्पृहभ्रमकुशाः शीघ्रवश्चरसात् ॥ माघ. १।८

(ख) धरतनुवश्चसंगतिमुगन्धितरं सरकं ।

दुतमिव पद्मरागमणिमासवरूपधरम् ।

भवति रतिभ्रमेक्ष च मद्यः पिषोऽल्पमपि ;

क्षयमत क्षोत्रतः परिहरन् म शयीत परम् ॥ अर्थात्कद्वय ७।८८

कुवलयमालानिलयो लीलोदय किमिति सम्प्रति त्यक्तः ।

किं विद्याममन्मिन्भ्रातर्दाम्वा विना मूल्यम् ॥ ३५२ ॥

हे लीलोदय ! कुवलयमाला के घर जाना क्यों छोड़ दिया । हे मित्र !  
पैसे के बिना उस चेटी के यहाँ क्या करूँ ॥ ३५२ ॥

मुपितागोरविभूतेरिन्दीवरकम्य यामिनी याति ।

संवाहयतः सम्प्रति मंजोरक तिलकमंजरीचरणौ ॥ ३५३ ॥

हे मंजोरक ! इन्दीवरक की सम्पूर्ण सपन को खींचकर अब उसे अपना दास  
बनाकर, सारी रात उसके पैर दबवाते हुए तिलकमंजरी रात बिताती है ॥ ३५३ ॥

अथापि बालभावं निम्गिलं न जहाति बालिका तदपि ।

प्रीडिन्ना मकरन्दक सज्जता ललना अधः कुन्ते ॥ ३५४ ॥

आपस में चेष्टियों की बातचीत—

बालिका नाम की बेश्या तो आज भी बालिका बनी हुई है, फिर भी; हे  
मकरन्दक ! वह अपने प्रीट भाव में सब स्त्रियों को नीचा दिखाना है ॥ ३५४ ॥

कुञ्जे गत्वा वक्ष्यमि तं निर्दयचित्तनर्तनाचार्यम् ।

द्वारा मुकुमारतनुः किमियं सम्मर्दकारिता भवताम् ॥ ३५५ ॥

हे कुञ्जे ! उस कठोर मन वाले नर्तनाचार्य को जाकर कहो कि यह हाथ—  
श्रुति को मन शरीर का है, इसको तुमने क्यों मार, अथवा अधिक शिद्दा देकर  
क्यों दुःखी किया ॥ ३५५ ॥

(ग) 'आमेवने मपुरतिकञ्जम्'—मेघदूतः १।५

(घ) 'रतिकाले सुखं क्षीर्या दृढमाप्येकं शुनाम् ॥'

१. धेमेन्द्र ने कहा है—

ह्यौदस्य वरवास्ति न भोगर्षणं किं भुक्तिष्या भवने करोति ।

न यस्य हस्ते तरमूक्ष्यमस्ति स किं समातोहति नावमने ॥

समयमावृत्ता-२।८२

(स) 'यूनामकिञ्चनानां' द्वा वा-द्वा वारमुन्दरीशीष्याम् ।

द्वारामरणवोष्याः बीलेपस्यापि कोर्षपि सम्बन्धः ॥ (कीट्ये कुष्ठा)

२. प्रीटा-प्रगल्भा के भेद—रमतन्वा गाडदारण्या ममस्तरतकारिदा ।

भारोन्नशारश्रीटा प्रगरमायान्वतादिका ॥

सा० ६० ३।६०

(स) 'प्रीटा द्यपि दृक्दर्शं पदपयिष्यं विदुः'—

नि सारोऽभिनिवेश शुकशायकपाठने सुरतदेवि ।

तिष्ठति बहिरूपविष्ट प्रतीक्षमाणस्तव प्रेयान् ॥ ३५६ ॥

हे सुरत देवि ! इस तोते के उच्च का पढ़ाने में मनोनियोग करना व्यर्थ है ।  
तेरा प्रेमी तेरी प्रतीक्षा में बाहर बैठा है ॥ ३५६ ॥

वीणावादनरिन्ना पतिताऽऽस्ते वासभवनपर्यङ्के ।

उत्थापय ता तरित स्मरलीला मत्त आयात् ॥ ३५७ ॥

स्मरलीला वीणा बजाने से थक कर घर में पलंग पर पड़ी है, दासी ! उसको  
जल्दी से उठा, उसका प्रेमी मत्त ( नाम है ) आया है ॥ ३५७ ॥

किमिदं यथास्थितत्वं तव माधवि यन्मुहुर्वदन्त्या मे ।

परिधत्से नाभरणं श्रीविग्रहराजसूनुना दत्तम् ॥ ३५८ ॥

नायिका के प्रति माता का कहना—हे माधव ! तुझे क्या हो गया, मेरे  
बार बार कहने पर भी तू श्री विग्रहराज पुत्र क दिये आभूषणों को नहा पहन  
रही है ॥ ३५८ ॥

ईदृक्शून्यमनस्त्वं किं कुर्मो मातरिन्दुलेखाया ।

पानक्रीडासक्त्या पतिताऽपि न चेतिता कनकताडी ॥ ३५९ ॥

कामुक को सुनाते हुए, दासी का माता को कहना—“इन्दुलेखा की माँ !  
हम क्या करें—तू तो ऐसी लापरवाह है कि पानक्रीडा में—मद्यपान में लगी  
होने पर तूने गिरती हुई कनकताडी-सोने की तगड़ी का भी ख्याल नहीं  
किया” ॥ ३५९ ॥

नकुल पयो न पायित इति रोपवशादियं हि दुःशीला ।

नाभ्राति कामसेना पुन पुन प्रार्थ्यमाना ॥ ३६० ॥

चेरी का कामी को सुनाकर माता को करना—तूने नेवले को दूध नहीं  
पिलाया, इससे गुस्मा होकर बार-बार कहने पर भी ( रुशामद करने पर भी )  
कामसेना नहीं ग्या रही है ॥ ३६० ॥

श्रीरत्नमुत्तपरिपालितं उर्णायु किमनया विनेतय ।

मुकुला मुक्तमुलम्बितिरहनिशा मेघपापणे लम्बा ॥ ३६१ ॥

श्रीरत्न के पुत्र से पाला हुआ मर्दा क्या इसने व्यवश्य नीतना है, जिससे  
मुकुला सब प्रकार से मुग्धा की छोटकर रात में मँद से पालन में लगी  
है ॥ ३६१ ॥

आताम्रलामुपगतमुच्छून कर्तल च तत्र ललिते ।

मा पुनरतिचिरमेव प्रविधाम्यसि कन्दुक्रीडाम् ॥ ३६२ ॥

कामी के प्रति माता का बचन—

हे ललिते । गेंद खेलने से तेरा हाथ लाल हो गया और सूज भी गया ।  
इसलिए बहुत देर तक गेंद खेलना छोड़ दो<sup>१</sup> ॥३६२॥

अभिराम वनकभाटी प्रथममियं गृह्यते, समुत्पन्ने ।

स्नेहे तु कुसुमदेव्यास्त्वं प्रभवसि जीवितस्यापि ॥ ३६३ ॥

कामी के प्रति माता का कहना—प्रथम मिलन में सोने का शुल्क—  
(अधिक पैसा) लिया जाता है, पीछे स्नेह उत्पन्न हो जाने पर तुम कुसुम  
देवी के जीवनधन हो जाओगे ॥३६३॥

ग्रहणकर्मण्य तावद्यदि कौतुकमुपरि चन्द्रलेखायाः ।

निर्वर्तितकर्तव्यो दास्यसि त्रिचिद्यथाभिमतम् ॥ ३६४ ॥

चन्द्रलेखा के ऊपर यदि मन लगा है, तो पहले ग्रहणक (पुरस्कार या  
रत मूल्य) दे दो । समागम कर चुकने के पीछे (काम हो चुकने के पीछे)  
जो इच्छा हो वह फिर दे देना ॥३६४॥

न परमदाता मातः सूनुरसौ वासुदेवभट्टस्य ।

निर्लज्जः शठवृत्तिः पुनः पुनर्वार्यमाणोऽपि ॥ ३६५ ॥

क्षुण्णयति वसनानि सदा हठेन सकलानि सुरतसेनायाः ।

न ददात्येकामूर्णामूरणं परमत्ति कार्पासम् ॥ ३६६ ॥ ( युग्मम् )

वासुदेव भट्ट का यह लड़का बट्टा देने वाला नहीं है ( थोड़ा देता है ),  
बार-बार घर से निकलने पर भी नहा निरलता, उडा हट्टो और निर्लज्ज है ।  
सुरतसेना के सन बर्कों को अनर्दस्ती लीचता है, इसलिए हे माता ! इसे  
किसी प्रकार से निफालो । मेदा ऊतका एक रोया तो देता नहा, परन्तु रोज  
कपास खाता है ( निनीले खाता है<sup>२</sup> ) ॥३६५-६६॥

भगिनि न मुञ्चति वेश्म क्षणमपि पटराजपुत्रोऽमौ ।

भग्नान्यनरावसरो, नग्नेनापिष्ठितं तीर्थम् ॥ ३६७ ॥

१—कन्दुककीड़ा का वर्णन इराकुमारचरित के छठे उच्छ्वास में है ।

२—शठ—बाधक मधुरो परतु कर्मणा मोपपादयेत् ।

योपिता कश्चिदप्यर्थं स शठः परिकीर्त्तितः ॥

निर्लज्ज—वार्यमाणो हठतर यो नारीमुपसर्पति ।

सिद्धिः सापराधश्च स निर्लज्ज इति स्मृतः ॥

भरतनाट्य-शास्त्र—३११८, ३०१.

अप्रागल्भ्यं व्यसनं, धैर्यमकार्यं, विनेन उपवासः ।

हेपथमगुणो यस्मिंस्तसुरसं प्रभुतं ताभ्याम् ॥ ३८० ॥ (कुलङ्कम्)

चण्ड वेग काम ने जो योग्य था, अतुल्य प्रीति व निष् जो उचित था, सुवासयथा के कारण जो मुन्दर था, जीवन का जो फल था—परमानन्द जो था, अविनाश ही जिनमें शोभा है, अश्लेष आचरण ही जिनमें अनिश्चय प्रशस्तनीय है, निर्भयता ही ( दाठपन ही ) जहाँ मोंद्वर गिना जाता है, चञ्चलता ( एक स्थिति में स्थिर न रहना ) ही जहाँ पर गौरव माना जाता है, जहाँ पर पेशों का पकड़ना—ग्रीषणा ही अतुल्य है, ताडन-स्पर्शात् ही उपकार है, दर्ता से वापना—हर्ष आनन्द के लिए है, कुच, निम्न आदि पर नगा से विनेसन उन्नति का कारण है, शरीर का निरीक्षण—जोर से दखना ही जहाँ प्रयत्न है, अविशय चाह व साथ जुगुप्सु अथवा मुग्ध से बाहर आने जिज्ञासा का चुम्बन, निर्दयता के साथ अगा का दखना, नायिका के शरीर में प्रविष्ट होने की इच्छा ( उससे मिलकर एक हो जाना ), दृढ़ता से आलिङ्गन जिनमें रहता है, जिस

१ सौन्दर्यं प्रीतिसपरितरक्षणदेतोऽयं यौवनम् ।

एकैश्चमनुरागाप किमु यत्र चतुष्टयम् ॥

२. यदाप्रदृश्य का उल्लेख पचसायक एवं धनगरग में ही मिलता है—अन्यत्र नहीं देखने में आया । धनगरग में—

स्निग्धा घना बुद्धिनीलवर्णा केशा प्रशस्तास्तद्वर्षाभनानाम् ।

प्रेममधुदूष्यै विधिर्नैव मन्द प्राणा नरैरनुम्यनदानकाले ॥ ११३०

३. हास्यैष्वंघोभिर्घनमुष्टिघातैर्नखस्रुतैर्दन्तनिपीडनैरथ ।

विश्वासवाचा भयित्ते प्रसिद्धैर्बन्ध नयेत प्रियवाक् प्रगल्भाम् ॥

शृङ्गारदीपिका ॥ १२०

बाहुपीडनकचप्रदृष्ट्याभ्यामाश्लेन मन्ददन्तनिपाते ।

योधितस्वनुशयस्वरुणीतामुन्मीलविशद्विषमेपु ॥ माध १०।१२

कचप्रदमनुग्रहं, दशमखण्डनं मण्डनं, दशज्ञानमवज्ञनं मुखरसापेक्षं तपेणम् ।

नखावेनमत्तर्दनं दृढमपीडनं पीडनं, करोति रतिसंगरे मरुत्केतन कामिनाम् ॥

४. जिह्वाचुम्बन का भी उल्लेख नैषध में मिलता है—

‘प्रसृत न त्वया तावद्यन्मोहनविमोहित ।

अतृप्तोऽधरपानेषु रसनामपिब तव ॥’ २०।७८

आलिङ्गन में—क्षीरजलकाय्यालिङ्गन का उल्लेख है—जिस प्रकार से दूध और पानी मिलकर एक हो जाते हैं, उसी प्रकार से नायक नायिका के शरीर में एक हो जाना चाहता है—

‘भावास्तथा कामुका कामिनीवामिच्छन्त्यङ्गे वग्मसीव प्रवेष्टुम् ।’

सम्भोग को बहुत से अनङ्गों ने किया ( एक से करना असम्भव था ), बहुत से रागों ने जिसे परम उत्कर्ष पर पहुँचाया, प्रेमों ने जिसे निश्चल बनाया, शृङ्गारों ने जिसे विकसित किया, लज्जा आदि से अप्रागल्भ्य घृष्ट न होना ही जिसमें व्यसन-दूषण है, धैर्य-बीडा आदि का सहन करना ही जिसमें अकार्य-कुर्म होता है, विवेक-कर्तव्य अकर्तव्य विचार ही जिसमें उपघात कार्य का नाश करने वाला है, हेपण-लज्जा करना-शर्माना ही जिसमें दोष होता है, ऐसा सुख सम्भोग सुन्दरसेन और हारलता ने प्रारम्भ किया ॥३७५-८०॥

प्रारम्भ एव तावत्प्रज्वलितो धगिति मनसिजो यस्मिन् ।

तस्य विशेषावस्था वक्तुमशक्या. प्रवृद्धस्य ॥ ३८१ ॥

जिस सम्भोग में काम प्रारम्भ में ही धग् धग् शब्द के साथ ( आग का शब्द ) जल गया, उसके बढने पर उसकी अवस्थाओं का वर्णन करना असम्भव है ॥३८१॥

सहजरसेन जडीकृतमिति यूनोः कामशास्त्रनिर्णीति ।

नानाकरणग्रामे लालित्यमवाप पाण्डित्यम् ॥ ३८२ ॥

सहजरस-शृङ्गार रस से कुण्ठित होने पर हारलता और सुन्दरसेन दोनों का कामशास्त्र से अनुमोदित पाण्डित्य नाना प्रकार के रतिबन्धों में ( अनेक प्रकार के रतिबन्धों में ) मनोहर बन गया ॥३८२॥

अभिषेयमनारयेयं प्रविचार्य नृद्धादनीयमविपद्यम् ।

न वभूव तयोस्तस्मिन्नारब्धे सुरतपरिमर्दे ॥ ३८३ ॥

सम्भोग के प्रारम्भ होने पर उनके लिए अशुभनीय कुछ नहीं रहा, सोच विचार का प्रभ नहीं रहा, गौरनीय कुछ नहीं बना, मुनने या सहने अयोग्य कुछ नहीं था ॥३८३॥

अत्यभ्यस्ता याऽन्या सुरतवधौ विविधचाटुपरिपाटी ।

तामालूलविशीर्णा चकार सहजः स्मरावेगः ॥ ३८४ ॥

अनेक प्रकार से गुशापद करने का जो दम अन्यत्र बहुत प्रकार से सफल बना था ( अपना अनेक प्रकार से गुशापद करने की जो रूप रेखा मन में पहले से सोची थी ), उसको दराभासिक-अकृत्रिम कामवेग ने छिन्न भिन्न बना दिया, तोड़ दिया ॥३८४॥

सद्भावरागदीपितमदनाचार्योपदिष्टचेष्टानाम् ।

परिगणनं कर्तुं रतिवनाविष्टरमण्यो. शक्तः ॥ ३८५ ॥

सदभिप्राय और प्रेम से उत्साहित काम ही कथित चेष्टाओं का अध्यापक है ।  
रतिचक्र—सम्भोग में लगे स्त्री पुरुष की चेष्टाओं को कौन गिना सकता  
है? ॥३८५॥

बाला मृदुगात्रलता दृढपुरुषाक्रान्तविग्रहा न पराम् ।

न व्यथिता, मुदमाप, प्रभवति खलु चित्तजन्मन शक्तिः ॥३८६॥

कोमलांगी बाला भी दृढ पुरुष द्वारा शरीर के पीड़ित करने पर भी जो  
पीड़ा का अनुभव नहीं करती, अपितु उल्टा प्रसन्न होती है, यह कामदेव की  
शक्ति का ही प्रभाव है? ॥३८६॥

किं रमणीं रमणोऽविशदुत रमण सा न जानीम ।

स्वावयवावगमस्त्वप्रकाशमगमत्तयोस्तदा निपुणम् ॥ ३८७ ॥

उनके परस्पर सम्भोग से यह भी पता नहीं चला कि नायिका में नायक  
मिल गया अथवा नायक में नायिका मिल गई । उनमें अपने अपने अंगों का  
ज्ञान भी नहीं रहा, अंगों का ज्ञान बहुत बारीकी से देखने में समझ में आता  
था । इस प्रकार से उन दोनों में देहसायुज्यरूप अद्वैत हो गया? ॥३८७॥

१ आचार्य का लक्षण—उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद् द्विज ।

साद्गच्छ सरहस्य च तमाचार्यं प्रचक्षते ॥ मनु० २।१।४०

कामशास्त्र में कहा है—शास्त्रार्थ विषयस्तावद्यावन्मन्दिरसा नरा ।

रतिचक्रप्रवृत्तस्य नास्ति शास्त्रं न च क्रम ॥ २ २.

नास्त्यत्र गणना काचिन्न च शास्त्रपरिग्रहः ।

प्रवृत्ते रतिसंयोगे राग एवात्र कारणम् ॥

स्वप्नेष्वपि न दृश्यन्ते ते भावास्ते च विभ्रमाः ।

सुरतव्यवहारेषु ये स्युस्तत्क्षणकषिपता ॥

कामसूत्र २।७

२. (क) या सा चन्दनपङ्कमङ्गपतितं भारं गुरुं मन्यते,

सुप्ता कोमलपद्मपत्रशयने खेद पर गच्छति ।

सा सर्वाङ्गभरं प्रियस्य सहते केनाऽप्यहो हेतुना,

वित्र परय किमत्र चित्रमथवा कामस्य किं दुष्करम् ॥

(ख) इसी से किसी कवि ने कहा है—‘अधिन्यशक्तिमंगवाननङ्गः ।’

३. अमरक का पद्य इस सम्बन्ध में है—

आशिल्लथा रमसाद् विस्तीयत इवाक्रान्ताऽप्यनह्णेन या,

यस्याः कृत्रिमचण्डवस्तुकरणाकृतेषु खिन्नं मन ।

कोऽयं काऽहमिति प्रवृत्तमुरता जानाति या नान्तरं,

रन्तु सा रमणी स एव रमयः शेषौ तु जायापरी ॥



तस्या निर्मूलितदृशो नित्यन्दतनोर्वभूव सुरतान्ते ।

लिंगमनंगन्द्वाया जीविततत्तानुमानस्य ॥ ३५५ ॥

सम्भोग तृप्ति का वरुण—सम्भोग के पीछे उसकी आँखें बन्द हो गईं, शरीर में नित्यन्दता आ गई ( शरीर निश्चल—मृत की भाँति हो गया ), शरीर में व्याप्त काम जन्य कान्ति ही उनके जीवित होने का प्रमाण था, उसने ही जीवित होने को अनुमान होता था ॥३५५॥

श्रमजलविन्दूपचिता वृत्तस्मरणेन जातवैलक्ष्या ।

सा शुशुभे विपरीतपर्याकुलकेशभूषणा नितराम् ॥ ३५६ ॥

विपरीत रति के कारण पसंनि में स्नान की हुई, पुरुषादित विधि को स्मरण करके लज्जित, विविरे हुए बालों से वह अतिशय शोभित हुई ॥३५६॥

निर्ध्याजार्पितवपुषोर्निर्घृतिमयमेव गणयतोर्विश्वम् ।

क्षणादा विरराम तयोरर्क्षीणाःक्षयोरेव ॥ ३६० ॥

किसी छद्म या बखना के बिना परम्पर शरीर का अर्पण करते हुए, संसार को सुखमय—आनन्दरूप मानते हुए, उन दोनों की आमात्मा के अपूर्ण रहने पर ही ( अनुमानस्था में ही ) रति समाप्त हो गई ॥३६०॥

मोहनाविमर्दासिन्ता विजृम्भमाणा मरुलद्गतिमन्दम् ।

निद्राकपायितार्क्षी हारलता वासवेरमनो निरगान् ॥ ३९१ ॥

(स) सुरते निराकुञ्जाःसौ द्रवतामिव याति नायकस्याङ्गे ।

न च यत्र विवेक्षुमखं कोऽयं काऽहं किमेतदिति ॥ शब्द. १२।२२

१. नारी विमुह्यतुमुपेपु बद्धा रतान्ते, नृत्यं करोति बहुवह्नात्तरोदने च ।  
वैकल्पमेति मुकुञ्जीकृतचालेना शनोति नो किमपि सौदुमतिमपासम् ॥

भंनगरंग १।११

(स) 'अस्तथा वपुषि, मोक्षनं द्योः, मूर्धना च रतिमावज्जल्पम् ।'

रतिरहस्य १०।४४ ( रतिमात्र सुरततृप्ति );

२. जात्रभमं शोषय पतिं पुराग्री ह्वेपद्मात् एवाय रतेष्वृष्टा ।  
बन्द्यवेगाकुक्षिणा नित्रान्तं कुर्वीत नुष्टयै पुदपायितं सा ॥ भंनगरंग १०।३१
३. इसमें भवभूषिका श्लोक प्रसिद्ध है—

किमपि किमपि मन्दं मन्दमासक्तियोगाद्दिविरक्षितकपोलं ब्रह्मभारकमेव ।

ध्यानादिष्वपरिरामभ्यातृतेऽहैकशोऽप्योरविदितगल्पामा रात्रिरेव प्यरसोन् ॥

उत्तरानचरित १।२७

तस्या निमीलितशो निस्यन्दनोर्यभूव सुरतान्ते ।

लिंगमनंगच्छाया जीवितसत्तानुमानम् ॥ ३५५ ॥

सम्भोग वृत्ति का वर्णन—सम्भोग के पीछे उसकी आँवें बन्द हो गईं, शरीर में निस्यन्दता आ गई ( शरीर निद्राचलन—मृत की भाँति हो गया ), शरीर में व्यात काम बन्ध कान्ति ही उनके जीवित होने का प्रमाण था, उससे ही जीवित होने को अनुमान होता था ॥३५५॥

श्रमजलाविन्दूपचिता वृत्तस्मरणेन जातवैलक्ष्या ।

सा शुशुभे विपरीतपर्याकुलकेशभूषणा नितराम् ॥ ३५६ ॥

विपरीत रति के कारण पत्नी में स्नान की हुई, पुष्पाक्षित विधि को स्मरण करने लक्षित, निर्गरे हुए बालों से वह अतिशय शोभित हुई ॥३५६॥

निर्ध्याजापितवपुषोर्निर्गृतिमयमेव गणयतोर्विश्वम् ।

सुखदा विरराम तयोरर्जायाःसुखोरेव ॥ ३५७ ॥

किसी द्युत वा दक्षिणा के बिना परस्पर शरीर का श्रंगण करते हुए, सकार की सुखमय—आनन्दरूप मानते हुए, उन दोनों की आकांक्षा के अपूर्य रहने पर ही ( अतृप्तानस्था मे हा ) रात्रि समाप्त हो गई ॥३५७॥

मोहनविमर्दक्षिन्ता विजृम्भमाणा सखलदृगतिर्मन्दम् ।

निद्राकपायितार्जा हारलता चासोऽगमनी निरगान् ॥ ३५८ ॥

(स) सुरते निराकुलाऽपौ द्रवतामिव याति नापकस्याद्रे ।

न च यत्र दिवेक्षुमलं कोऽयं काष्णं किमेतदिति ॥ रूद्र. १२।२५

१. नाती विमुष्टमुमेपु अजा रतान्ते, नृत्यं करोति बहुवचनरोदने च ।  
वैकल्पमेति मुकुतीहृत्वास्नेत्रा शरनोति नो किमपि सोऽनुमतिप्रयासम् ॥

अन्यतरंग ३।११

(स) 'सन्तता वपुः, मोहनं दृगोः, मूर्च्छना च रतिभावलक्षयम् ।'

रतिरहस्य १०।१४ ( रतिभाव सुरतवृत्ति );

२. जलभसं क्षीप्य पति पुत्रयो स्वेच्छात् एवाय रतेष्वृता ।  
मन्दपेवगाकुञ्जिता निशान्तं कुर्वन् नुष्टयै पुदरापित सा ॥ अन्यतरंग १०।३१
३. इसमें भवभूतिका श्लोक समिद्ध है—

किमपि किमपि मन्दं मन्दनसाक्षियोगाद्विरक्षितवपुञ्ज अदन्तोरक्रमेय ।

कान्तिविद्यपरिरम्भदावृष्टैकैकज्ञोऽप्योरविदितगतयाना रात्रिरेव स्पृहंसाद् ॥

उत्तररामचरित १।२७

मुरत जन्य पीनन से थकी, जम्माइ लेती हुई, नींद के कारण लडखडाती चाल से, श्राव्यों में नींद भरी हारलता सम्भोग रह से धारे धारे जाहर निकल गई ॥३६१॥

परिचित्तपार्ष्वगताऽह, तेन सम पानभोजनं कृत्वा ।

नीता निशा कथाभिर्मोहनकार्यं तु यत्किञ्चित् ॥ ३६२ ॥

निचली बाराह श्राव्यों में वरयावीथी की चचा का उल्लेख—

कोई नारिका कह रही है—मैंने अपने परिचित के बगल में बैठकर, उसने साथ में खान पान करने, बातचीत में ही सारी रात बिता दी, मुरत कार्य तो थोड़ा सा ही नाम मात्र का हुआ ॥३६२॥

अविदग्ध श्रमकठिनो दुर्लभयोपिद्युष्वा जडो विप्र ।

अपमृत्युरूपवान्त कामिव्याजेन मे रात्रौ ॥ ३६३ ॥

दूसरी वरया कह रही है—अविदग्ध (अचतुर), परिश्रम के कारण कठोर शरीर, स्त्रियों जिस दुर्लभ हैं इसी से अति बेचैन बना, युवा, मूर्ख कामी ब्राह्मण मृत्यु रूप से रात्रि में मेरे पास आया ॥३६३॥

नेच्छाविरति, क्षणमपि, न च शक्तिर्वस्तुशून्यरतियत्नै ।

केवलमलमथाह कदर्थिता वृद्धपुरुषेण ॥ ३६४ ॥

तीसरी वरया कह रही है—वृद्ध पुरुष में मुरत की इच्छा एक क्षण के लिये भी कम नहीं होती थी, सम्भोग की शक्ति थी नही, सम्भोग शक्ति के प्राप्ति के लिये नाना प्रकार के प्रयत्न किये । आज तो इस बूढ़े ने सारी रात मुझे व्यर्थ में ही पीड़ित किया ॥३६४॥

मद्यवशादभियोक्तिर मृतकल्पे तल्पभागमग्नाया ।

अविरोधितनिद्राया सुखेन मे यामिनी याता ॥ ३६५ ॥

१ वृद्धरत वखन—यत्नोरथापनमाग्नौ सङ्गरच्चर्मांबरोपरचेत् ,

अश्यच्छेफसि दुःखान्गवक्षन्व्यर्थोद्यमाङ्गिगने ।

लज्जाधापिनि खिद्यमानयुवतौ वृद्धस्य कृच्छ्रे रते,

यस्यात्वं संप्रतिभाष्य, किन्तु हसित युक्त किमारादितुम् ॥

(ख) याज्ञा तन्वी मृदुरियमिति खड्यतामत्र शका

काचिद् दर्श भ्रमरभरतो मज्जरी भज्यमाना ।

तस्मादेपा रहसि भवता निर्दय पीडनीया

मन्दाक्रान्ता वितरति रस नेक्षुमध्य समस्तम् ॥

देश एवं स्वभाव का ज्ञान न होने के कारण किसी धूर्त एवं घमण्डी राजपुत्र से किये हुए व्यवहार की जो मजाक हमारी भाण्डों ने की; उससे हम बहुत दुःखी हैं ॥४००॥

प्रियमखि लोकसमच्चं नगरप्रभुणा हठेन नीताऽस्मि ।

एवं तु नो कदाचिद्विगुणार्थप्रार्थने कृतो न्यायः ॥ ४०१ ॥

हे प्रियसखि ! नगराध्यक्ष ने मेरी इच्छा के विरुद्ध जबरदस्ती मुझे लोगों के सामने लाकर ( पञ्चायत से न्याय की माँग करके ) न्याय नहीं किया, अच्छा नहीं किया । इस प्रकार करके उसने मेरा अपमान किया ॥४०१॥

आकर्षन्ती जघनं व्रजसि यथा विलिखिता नखैस्तिलशः ।

मन्ये तथोपभुक्ता केरली केनापि दाक्षिणात्येन ॥ ४०२ ॥

नखों द्वारा अच्छी प्रकार से घसोटी हुई अपनी जघनो को खींचती हुई ( कठिनाई से पैर उठा कर चलती हुई ) चल रही है, इससे मैं अनुमान करती हूँ कि इस केरली ( वेश्या ) का किसी दाक्षिणात्य ने उपभोग किया है ॥४०२॥

अधरे विन्दुः, कण्ठे मणिमाला, स्तनयुगे शशप्लुतकम् ।

तव सूचयन्ति केतकि कुसुमायुधशाम्भपरिडतं रमणम् ॥ ४०३ ॥

हे केतकि ! तेरे अधर में विन्दु दश, गले में मणिमाला, स्तनों पर शशप्लु-तक, कामशास्त्र के परिडत के साथ तेरे रमण को सूचित करता है ॥४०३॥

१- दाक्षिणात्य—मगध से दक्षिण में, उत्कल देश के निवासी ने उपभोग किया, यथा—विपरीतरताभिष्ठापिथी गतलज्जा नखदानतोपिथी ।

नितरामनुरागशास्त्रिणी मदनार्त्ता कथितेयमुल्कली ॥ धनंगरंग ७१९

२- विन्दु—अगले दाँतों से निचले छोटे पर किया क्षत, मणिमाला-दन्तावधि से निष्पादित वरानचिह्न पंक्ति, शशप्लुतक—नखविलेखन का एक भेद, यह नखविलेखन दीर्घ काष्ठ तक रहने वाला, परोक्ष में भी नापिका कामुक की स्त्रीका स्मरण करती है—

अधरे तिष्ठके च कामिना रदयुग्मेन विक्षण्डने कृते ।

इति विन्दुरुद्रीरितोऽखिलैर्दंशनेः स्यात् किञ्च विन्दुमात्रिका ॥

धनंगरंग ९१३४

रेखाकृता सर्वनरीरधस्तादंगुष्ठमाधाय तु चूचुके वा ।

मयूरपादं किञ्च तं वदन्ति शशप्लुतकं सर्वनरीः कुचाग्रे ॥

धनङ्गरङ्ग ७१९०

‘समैश्च सर्वैर्नखैः सुखमैस्तज्जैः किलोक्तं शशकप्लुताख्यम् ॥’

पञ्चनायक ७१२३

कहाँ तो पुरोडाश ( सोमस या हवि ) एव वेद मन्त्रों की ध्वनि से परित्रित तुम्हारा यह मुख और कहीं मंदिरा और आसव से वासित वेश्याओं के मुखों का पान<sup>१</sup>, कहीं कुशा-दर्भ के उल्लाडने में सहसा उत्पन्न होने वाली वेदना पीडा का चमत्कार और कहीं वेश्याओं के साथ प्रेम युद्ध करने में प्रीति के लिये किये उन्ने निर्णय नख प्रहार<sup>२</sup>, कहीं गार्हपत्य, आहवनीय और वज्रिणाग्नि तान अग्नियों के धूम से उहाये ग्रोमुत्रा से धुला तुम्हारा मुख और कहीं वेश्याओं से किये तिरस्कार के कारण शोक से व्याकुल ग्रोमुत्रों से धुला यह मुख, कहीं वषट्कार ध्वनि, विप्रोचित अध्यापन, अध्वयन, यजन, याजन, दान और प्रतिग्रह इन छ कर्मों से शोभित उच्चरोप<sup>३</sup>, और कहीं सामान्य वेश्या द्वारा रतिनाल में भणित ( अयन ध्वनि ) को मुनने की उत्सुक्ता, और कहीं आचार्य द्वारा पतली लता द्वारा ताडना किये जाने पर सक्षोभ वैचैनी से होने वाला कम्पन और कहीं युपित वारवेश्या के निष्ठुर पाद प्रहार का सहन करना, नहीं स्मृति एव शास्त्र म व्रताये व्रतों की करते हुए हरिण चर्म-अग्नि चर्म का प्राकरण<sup>४</sup> और कहीं बाजारू स्त्रों के धारण किये बल को धारण करने में अभिमान मानना, उचपन से ही समिगाओं के काटने का श्रम्यास तुमने किया, अब धूर्त्त वनिताओं के श्रोठों के काटने का कौशल कहीं से तुममें उत्पन्न हो गया ॥४१४-४२०॥

शुश्रूपणमेव गुरो परिशीलितममलचेतसा सततम् ।

कुटिलमतयो भुजिष्या कथं त्ययाऽराधिता निपुणम् ॥ ४२१ ॥

निर्मल मन से गुरुओं की सेवा करने का ही श्रम्यास तुमने उचपन से किया, अब कुटिल बुद्धि वाली वेश्याओं की प्रसन करने की कला कहीं से प्राप्त की ॥४२१॥

आज्ञायपाठ एव स्फुटतरपदसौष्ठव तव रघातम् ।

प्रकृषितवेश्यानुनये क्व शित्तितं वचनचानुर्यम् ॥ ४२२ ॥

१. मंदिरा में उन्मत्तता रहती है, आसव में उदीप्तता होती है, मंदिरा मत्त बनाती है, आसव उद्वेगीक है ।

२. उन्मत्त, चण्टेगा या मौदा रष्ट होकर या प्राति के लिये नायक के शरीर पर नलक्षव करती है ।

३. अध्वयन अध्यापन यजन याजन तथा ।

दानं प्रतिग्रहश्चापि षट्कर्माण्यप्रतन्मन ॥ मनु० १०।७२

४. बाजारूस्त्रवस्मृति में कहा है—

'दण्डानिनोपवीधानि मेस्त्रां वैव धारयेत् ।' १।१।२९.

वेद पाठ में पदों का स्पष्ट पाठ तुम्हारा प्रसिद्ध था, अब कुपित वेश्या को प्रसन्न करने में वचन चातुर्य कहाँ से सीखा ? ॥४२२॥

अथवा कि क्रियतेऽस्मिन्नवदातकुलेऽपि लब्धजन्मान ।

सदसस्तुता भवन्ति प्रागुपचितकर्मदोषेण ॥ ४२३ ॥

अथवा क्या करें, इस शुद्ध निर्मल कुल में जन्म लेकर भी अपने पूर्व जन्म संचित कर्मदोष से सज्जनों द्वारा निन्दित होते हैं ॥४२२॥

त्वयि विनिवेश्य कुटुम्ब परलोकहितार्जनैकविहितास्थ ।

स्थास्यामीति समीहितमनुदिवस, तद्विसवदितम् ॥ ४२४ ॥

बहुत दिनों से सोच रक्ता था, किन्तु तुम्हारे ऊपर कुटुम्ब का भार छोड़ कर परलोक हित की प्राप्ति के लिये यत्र कर्हंगा, ऐसा प्रतिदिन सोचता था, यह सब अब असफल हो गया, व्यर्थ हो गया ॥४२४॥

इत्यवगतलेखार्थे मुन्दरसेने प्रियेयसमूढे ।

आर्यामगायदन्य स्वावसरे गीतिपरिकलिताम् ॥ ४२५ ॥

इस लेख को पढ़कर मुन्दरसेन के वर्त्तमानव्यय के निश्चय न कर सकने पर किसी ने इस अवसर पर गीति से पूर्ण होनेवाली आर्या गाई ॥४२५॥

‘विषयतिमिरावृताक्षामवटे पततामदृष्टमार्गाणाम् ।

पुसा गुरुजनवचनद्रव्यशलाकाजन शरणम्’ ॥ ४२६ ॥

विषयों के अधिकार स धिरी ओंसों के गर्त में गिरे हुए व्यक्ति को अब कोई रास्ता न मिलता हो, तब उसने लिये गुरुजनों के वचन ही शलाकाजन का काम करते हैं ॥४२६॥

उद्वेजयति तदात्वे सुप्तसम्पत्तिं करोति परिणामे ।

कटुकौषधप्रयोगो गुरुनिगदितकार्यनिष्ठुर वचनम् ॥ ४२७ ॥

ये वचन तत्काल में तो कँपकँपी उत्पन्न करते हैं, परन्तु परिणाम में सुख सम्पत्ति को देते हैं । गुरु से कहा कठोर वचन भी कटु औषध की भाँति कार्यकर होता है ॥४२७॥

लब्ध्वा वचसोऽवसर मित्रमवादीत्पुरन्दरापत्यम् ।

पुनरपि न हि विद्यन्ते प्रियजनहितभाषणे सन्त ॥ ४२८ ॥

समय देखकर गुणपालित ने अपने मित्र मुन्दरसेन को कहा, प्रियजन के हितकारी बात कहने में सज्जन कभी भी दुःख अनुभव नहीं करते ॥४२८॥

१ ‘पुत्रमुपाय, सस्कृत्य, वेदमध्याय्य, वृत्ति विधाय, दारै सयोज्य गुणवति पुत्रे कुटुम्बमाविश्य, इतप्रस्थानजिह्वो वृत्तिवचनोपाननुक्रमेत् ।’ दशखण्डित-स्मृति,

२ प्रथम आर्या फिर गीति

अर्गाणितसहचरवचसो दुर्व्यसनमहाच्चिमन्वधुपुपस्ते ।

मन्मुञ्चयितस्य पितुर्यदि परमवलम्बनं वचनम् ॥ ४२६ ॥

मित्र के वचनों की भी अपेक्षा करने, दुर्व्यसन रूपी बड़े समुद्र में डूबते हुए तेरे लिये दुःखित पिता के क्रोध में कहे वचन भी उत्तम सहारा हैं ॥४२६॥

निजवंशदीपभूत कृतचरितालंकृतो महासत्त्व ।

सुन्दर सम्प्रति तातः सृष्टो दुष्पुत्रदोषेण ॥ ४२७ ॥

अपने वंश के लिए दीप बना, सजनों के आचरण से अलंकृत, महान प्रकृति, पिता भी आज कुपुत्र दोष से युक्त हो गया ॥४२७॥

पुत्राभावः श्रेयान्न कुसुतता पुत्रिणः कुलीनस्य ।

अन्तस्तापयति भूरां सञ्चरितकथाप्रसंगेन ॥ ४२८ ॥

कुलीन पिता के लिए यह अशुभ अन्धा है कि उसके लड़का ही न हो, अपेक्षा इसके कि उसका लड़का बुरा हो। क्योंकि बुरा लड़का अपने व्यवहार से सदा हृदय को जलाता रहता है ॥४२८॥

संव्यवहारत एव प्रायो लोके गुणः सुगमनि यतः ।

येन तु मुतेन जननी वन्ध्यात्वं श्लाघते स पापीयान् ॥ ४२९ ॥

क्यों कि लोक में गुणों के व्यवहार से ही [दिलने से] सुग माना जाता है। इसीसे पापी पुत्र होने की अपेक्षा माता का बन्ध्या होना अधिक उत्तम समझा जाता है ॥४२९॥

विफलं शास्त्रज्ञानं, गुरुशृङ्खलेवाऽपि नोपकाराय ।

विषयवशीकृतमनसो न्याय्यं पन्थानमुन्मृजत ॥ ४३० ॥

विषयों से बशीभूत मन वाले पुरुषों के न्याय मार्ग को छोंड देने पर; शास्त्र ज्ञान भी विफल हो जाता है और गुरु-शृङ्खला की सेवा शिक्षा भी उपकार नहीं कर सकती ॥४३०॥

जीवन्नेव मृतोऽसौ यम्य जनो वीक्ष्य वदन्मन्वोन्वयम् ।

कृतमुदभंगो दूरात्करोति निर्देगमंगुन्या ॥ ४३१ ॥

वद मनुष्य जाता हुआ भी मंग हुआ हो है, जिसके मुँह की देग्गर दूसरे परस्पर दूर से नाना प्रकार के मुँह बनाए (टेढा करके) अंगुली उठाने हैं ॥४३१॥

नोपनिहन्तुं विषयाः शक्याः सत्यं, तथापि निपुणधियः ।

अभिचेयता न गन्धन्त्यपवादप्रिगेपिताभिधानम्य ॥ ४३२ ॥

१. नापुत्रो विन्दते लोकात् कुपुत्राद् वन्ध्याता वरा ।

कुपुत्रो नरको वरमान् सुपुत्रः स्वर्गं पर दि ॥ हरिपश पुराण.

यह सत्य है, कि विषय वासनार्यें रोके नहा की जा सकूँगी, तथापि बुद्धिमान् मनुष्य निन्दा के डर से विषयों के अधीन नहीं बन जाते ॥४३५॥

गुरुपरिचर्या, जाया कुलोद्गता, स्निग्धवन्धुसम्पर्क ।

ब्राह्मे कर्मणि सत्तिलोऽद्वयसाधन सुधियाय ॥ ४३६ ॥

गुरुजनों की सेवा, सत्कुल में उत्पन्न पत्नी, स्नेही मित्र का सम्पर्क, ब्राह्म कर्म—ब्राह्मण ने करणीय कर्मों में आसक्ति लगाव, बुद्धिमानों के लिये ये कर्म इहलोक और परलोक दोनों को देने वाले हैं ॥४३६॥

सुलभा तस्य विभूतिस्तस्य गुणा यान्ति जगति विस्तारम् ।

वहु मनुते त सुजनस्तम्मै स्पृहयन्ति बान्धवा सततम् ॥ ४३७ ॥

इन कार्यों के करने वाले के लिये—सम्पत्ति सुलभ हो जाती है, उसने गुण सत्सार में फैलते हैं—सब उसका नाम याद करते हैं, सज्जन उसको बहुत आदर देते हैं, नाचव सम्बन्धी जन सदा उससे मित्रता की चाह करते हैं ॥४३७॥

नासाद्यति स एक सत्सेवितमार्गत परिस्वलनम् ।

मण्डयति सोऽन्ववाय, स निवास शर्मणामशेषाणाम् ॥ ४३८ ॥

सज्जनो से सेवित मार्ग से जो नहा गिरता, वह अकेला ही अपने सारे वश को ( आगे पिछले वश को ), शोभित करता है, सब प्रकार के शुभों का—सुखों का निवास स्थान है ॥४३८॥

स भवति विनयाधारो, युक्तयुक्ते विवेकिता तस्य ।

बृद्धोपदेशवाच श्रयणोदरपूरण सदा यस्य ॥ ४३९ ॥

( विशेषकम् )

जो व्यक्ति सदा बृद्ध पुरुषों के उपदेशों को सुनता है, वह विनय शील होता है, सदा अच्छे बुरे कार्य का विवेक करता है, उसका सद् असद् विवेक ज्ञान सदा बना रहता है ॥४३९॥

प्राक्तनकर्मविपाक जुद्रासु शरीरिणा यदासक्ति ।

आयतन तु सुखाना ससारभुवा कुलोद्गता दारा ॥ ४४० ॥

पेश्याआ के शरीर में जो आसक्ति होती है, यह पूर्वजन्म के कर्मों का ही फल है। सत्सार में उत्पन्न मनुष्यों के लिये सत्कुल में उत्पन्न स्त्रियाँ ही सुख का स्थान होती हैं ॥४४०॥

निर्विण्णे निर्विण्णा, मुदिते मुदिता, समाहुला कलिते ।

प्रतिस्निग्धसमा कान्ता, सकुन्द्रे धेवल भीता ॥ ४४१ ॥



पिपाहितं त्रिर्वां हां पति के उदास होने पर उदास, प्रसन्न होने पर प्रसन्न, व्याकुल-अचैन होने पर वेचैन-धरगई होती है, पति का प्रतिस्मिन्-द्रावा रूप होती है, परन्तु पति के उरित होने पर वेरल टरी होती है (उरित नहीं होती) ॥४४१॥

चात्रद्वान्द्रितसुरतव्यायामसहाऽभिन्द्वमभाया

चित्तानुवृत्तिमुशाला पुष्यवतामेव जायते जाया ॥ ४४२ ॥

पति की इच्छानुसार सम्भोग अथ को सहने वाली (उसमें पृष्ठ अनुभव न करने वाली), कभी प्रतिकूल न बोलने वाली, पति के चित्त में अनुसार रहने वाली, पत्नी पुण्यशालिनी को हां किन्ती है ३ ॥४४२॥

सद्भावप्रेमरसं यलयारालिगच्छंकिता निमृत्तम् ।

विदधानांगसमर्पणमुन्मालितदृशुमसायकाकृतम् ॥ ४४३ ॥

हाहा किमुद्धतत्यं, श्रोप्यति कश्चिद् गतप्रप, स्वस्म् ।

निरुष्टे परिवारजनो विस्मृत एव स्मरानुरस्य तत्र ॥ ४४४ ॥

इति ह्येतिर्मवलितैरायासनिवेदितार्थपदवाक्यैः ।

द्विगुणीकरोति कुलजा नायककर्माणि मोहनप्रसारे ॥ ४४५ ॥

(कृतकम्)

कर्मकण की धनि से शक्ति, निष्कल-शुभचाप निगम्य भाव वाले प्रेम्सर के साथ अने अंगों का समर्पण करती हुई, निरस्तित काम के अभिप्राय को व्यक्त करता हुई, हा हा-यह कैसी उद्वेगता डिटाई कर रहे हो, कोटं मुनेगा, निर्लब्धा मत करो, धीरे में करो, पास में सम्प्रयी है, इने भी कामावेश से तुमने गुना दिया, इस प्रकार से निरेर यूचन हुआये से, प्रयत्न पूर्ण मनोगत भाव को लजा के कारण मुन से न बहकर अन्य रूपों से प्रगट करता हुई; कुलजा नायिका, नायक के सम्भोग में प्रवृत्त होने पर, उसके कार्यों में और भी बढ़ावा ला देता है ३ ॥४४३-४४४-४४५॥

१. ह्येति ह्येति विषया स्याद् विषयास्ये सदासिने ।

स्यदेवामुत्तरा पुष्या रूपम् च विषयम् च ॥

२. चायमा हि जायते तस्यां तेन जायां विदुषां ।

मर्त्यां तु भार्गवा रसः कथं जायन्तमोदरे ॥ महाभा विराट् ॥ १११२ ॥

(क) धनुर्बर्जा विमलाद्री कुलर्जा उगलां मुठीबग्ननाम् ।

पद्मबर्जा भायां पुष्यः पुष्योदपाठभते ॥

३. जगति लोको जगति प्रदीप सत्त्वजनः परवति कौशुकेन ।

मुह्यमात्रं बुद्धवान् धैर्यं धुमुदितः किं द्विष्टेण मुदके ॥

इत्थमुदीरितवाच सुन्दमवोचत् पुरन्दरस्य मुत ।

समुपस्थितनीत्रसमावियोगभयकम्पितो वचनम् ॥ ४४६ ॥

गुणपालित ने इस प्रकार कहने पर सुन्दरसेन ने प्राणप्रिया क वियोग को पास आया जानकर भय से कम्पित वचन कहा ॥४४६॥

तातादेशेऽलक्ष्ये हारलताविरहपात्रके तीत्रे ।

विधिप्रशयतिनि मरणे नो विद्म कार्यपरिणामम् ॥ ४४७ ॥

पिता की आज्ञा अलक्षणीय होने पर, हारलता क विरह की तीव्र अग्नि में, दैव भाग्य क अधीन मृत्यु होने पर कार्य का परिणाम कुछ ज्ञात नहीं—क्या होगा कुछ कह नहीं सकते ॥४४७॥

अनपेक्षितधनलाभा स्नेहैकनिवद्धमानसा दयिताम् ।

देवाकृष्टो मुचति घटितो वा लोहवञ्जरुणिकाभि ॥ ४४८ ॥

अचानक विना किसी आशा के धन की प्राप्ति तथा प्रेम से निवद्ध मत्वाली प्रेयसी को दृढ़ वज्र कणिकाया से घटित-संयोजित भाग्य ( वज्र के समान कठिन हृदय वाला भाग्य ) या तो आकृष्ट करता है मिलाता है अथवा त्याग करता है—अलग कराता है ॥४४८॥

अथ कृतगमनविनिश्चितिरभिमतरामा चकार विदितार्थाम् ।

साऽपि तमनुवव्रान प्रस्तुतयात्र शुचाऽऽकुलिता ॥ ४४९ ॥

सुन्दरसेन ने अपने जाने का निश्चय हारलता को भी कह दिया । शोक से वैचैन हारलता भी उसका साथ यात्रा करने लगी ॥४४९॥

आसाद्य वटस्य तल वाष्पपयकणचित्तालिपद्मधाम् ।

विघ्नितचरणविहारो हारलतामभिदधाति स्म ॥ ४५० ॥

वृ के नीचे पहुँच कर, पलकों में आँसू भरे, चलना बन्द करके सुन्दरसेन ने हारलता को कहा ॥४५०॥

आ क्षीरवतो वृक्षादा सलिलाद्वा प्रिये प्रिय यान्तम् ।

अनुयायादिति वचन तेन त्रमितो निवर्तस्व ॥ ४५१ ॥

हे प्रिये ! प्रिय वृ साथ यात्रा म क्षीरवृक्ष तक या पानी तक जाना चाहिये, इसने आगे नहीं, इसलिये तुम यहाँ से लौट जाया ॥४५१॥

१ आमज्ञान शकुन्तल में भी इस सम्बन्ध में कहा है—

आ उदकान्तात् भिन्गवो जनोऽनुगतव्य, इति ध्रुयते ।

तदिदं सरस्तीरम् । अत्र सन्दिश्य प्रतिगन्तुमर्हसि । चतुर्थं भद्र

नदीतारे गवा गाण्डे क्षीरवृक्षे जम्बाशये ।

आरामेष्वथ कृपादौ दृष्ट बन्धु विसर्जयेत् ॥ स्मृति

किं कुर्मो देवहता', प्रभवति यस्मिन्कुरोडरि प्रसभम् ।

प्रेमप्रन्थिच्छेत्ता गुरुशासनसायको निरावरणः ॥ ४५२ ॥

हे कृशोदरी । देव के वशीभूत हम कर भी क्या सकते हैं, जब कि प्रेम की गॉठ को काटनेवाला पिता का आशा रूपी अनुल्लवनीय बाण बलवान् हो ॥ ४५२ ॥

न द्रविणलवप्रार्तिनैकाश्रयपरिचयो न चाटुगुणः ।

न स्वामिसमादेशो नाकारविलोभनं न चार्यातिः ॥ ४५३ ॥

हेतुस्तव प्रवृत्तेरस्मासु, तथापि देवयोगवशात् ।

ईदृक् कोऽप्यनुबन्धो यस्य विपाकः प्रतीकारः ॥ ४५४ ॥ (युग्मकम्)

एक कौटो का भी लाभ नहीं, कहीं ठिकाना नहीं, न मीठा बचन, पिता आदि किसी का आदेश भी नहीं, न देवने में रूप का ही कोई आकर्षण और न कोई प्रसिद्धि, इस पर भी तेरा जो हम से स्नेह हुआ यह देव का ही काम है, ऐसा कोई अनिर्वाचनीय अनुबन्ध ( दोषोद्यति ) है, जिसका यह अत्रयम्भावी परिणाम है ॥ ४५३-४५४ ॥

परुषं यदभिहिताऽस्ति प्रणयरुपा शंकितेन नर्मणि वा ।

सुदति न तस्मरणीयं दुर्भाषणकीर्तनोद्घाते ॥ ४५५ ॥

प्रणय कोप से, शंकित मन से या हास पछिास में मीने यदि कभी कोई कठोर बचन कहा हो, ई सुदति । दुर्भाषण कीर्तन के प्रसंग में उसका स्मरण न करना ॥ ४५५ ॥

तव हृदये हृदयमिदं विन्यस्तं, न्यासपालनं वष्टम् ।

यत्नात्तथा विधेयं स्थानभ्रंशो यथा न स्यात् ॥ ४५६ ॥

तेरे हृदय में यह हृदय रत्न दिया, धरोहर की रक्षा करना बहुत कठिन है, ऐसा यत्न करना जिससे यह स्थान भ्रंश न होने पावे ॥ ४५६ ॥

अथ विरतवचोदयितं याप्पभराश्लिष्टवर्णपदयोगम् ।

इति कथमपि हारलता संमूर्च्छितवर्णभारतीमूचे ॥ ४५७ ॥

श्रीतिवृक्ष—'न्यमोघोदुम्बराख्यपतीपञ्चशपादपाः । पञ्चैते क्षोरिणो वृक्षाः'

१. उत्तररामचरित में—अथवा स्नेहरच निमित्तसव्यपेक्ष इति विप्रतिपिद्धमेव-  
ष्यतिपन्नति पदार्थानन्तरः कोऽपि हेतुनं खलु यदिरुपाधीन् प्रोक्तयः सश्रयन्ते ।  
विकसित पततास्योदये पुण्डरीकं द्रवति च क्षिररमातुद्गाने चन्द्रकान्तः ॥
२. मुखमर्षो भवेद्दानुं मुखं प्रायाः मुखं तनः ।  
मुखमन्यद्भवेत्सर्वं दुःखं न्यासस्य रक्षयम् ॥ स्वप्नवामयदत्ता १११०

भारी मन से मुन्दरसेन के इस प्रकार कह चुकने पर श्रौतुर्वा के भार से मिलित वर्ण एव पदों वाले अस्पष्ट शब्दों में हारलता ने बड़ी कठिनाई से कहा ॥४५७॥

अविशुद्धकुलोत्पन्ना देहार्पणजीविका शठाचरणा ।

क्वाह रूपाजीवा, क्व भवन्त श्लाघनीयजन्मगुणा ॥ ४५८ ॥

अपवित्र कुल में उत्पत्ति शरीर समर्पण ही जीविका का साधन, धूर्तता का व्यवहार करने वाली वहाँ में वेश्या, और वहाँ उत्तम वश में उत्पन्न आप ? ॥४५८॥

यत्त्व विषयविलोकनकुतूहलादागतोऽसि, विश्रान्त ।

इयतो दिघसानस्मिस्तन्मम परजन्मसुकृतफलम् ॥ ४५९ ॥

विषयों के देखने के कुतूहल से आकर जो आप इतने दिना तक रहें, वह मेरे पूर्व जन्म के अच्छे कर्मों का ही फल है ॥४५९॥

गुरुसेवा बन्धुजन स्वदेशयसति कलत्रमनुकूलम् ।

अनुपगृह्यपरिचित आस्था प्रविधाय क परित्यजति ॥ ४६० ॥

पूज्य जनों की सेवा, मित्र-बन्धु, अपने देश में निवास, अनुकूल भार्या, इन सबको मामूली कारण से परिचित बने व्यक्ति में श्रद्धा करके, कौन पुरुष जिना विशेष कारण के छोड़ता है ॥४६०॥

यौवनचापलमेतद्यन्माहशि भवति कौतुक भवताम् ।

। यत्तु सुखमनवगीत तस्य स्थान निजा दारा ॥ ४६१ ॥

। मुझ जैसी में आपकी जो चाह इच्छा हुई वह केवल आपका युवावस्था का चित्त-चाञ्चल्य ही है ।<sup>१</sup> पुरुषों के लिए अनिच्छ सुख का स्थान तो अपनी विवाहित भार्या ही है ॥४६१॥

ते मधुरा परिहासास्ता वक्रगिर स वामतासमय ।

नो हृदये कर्तव्या रहसि क्षमार्थिन्ता भवता ॥ ४६२ ॥

वे मधुर-मीठे परिहास, व वक्रोक्तिया यद्य, वह विपरीत आचरण, इनका

१ यथा मृच्छकटिक में—

‘गणिका मम मित्रमिति । अथवा यौवनमत्रापराध्यति, न चरित्रम् ।’

( ६ वा श्लोक ),

एकान्त में मन में विचार नहीं करना, वे सब आपके कुशल उल्याण की इच्छा से ही ( प्रसन्न करने के लिये ही ) किये थे' ॥४६२॥

लाघवतो यन्महतः प्रणयाद्वा साधु यत्त्वाचरितम् ।

प्रतिकूलं तत्र मया नाथांजलिरेप विरचितो मूर्ध्नि ॥ ४६३ ॥

जुब्रता के कारण अथवा अतिशय लोह वश के कारण से आपके प्रति यदि कोई अनुचित वर्ताव मुझसे हुआ हो, उसने लिये है नाथ ! मैं सिर झुकाकर क्षमा चाहती हूँ ॥४६३॥

दुःसंचारा मार्गा वूरे वसतिर्विसंप्लुतं हृदयम् ।

गुणपालित तव मुद्गदा भवितव्यमतोऽप्रमत्तेन ॥ ४६४ ॥

नीचे-ऊँचे या चीर-सगाँठि के कारण मार्ग चलने अयोग्य है, निवास स्थान-अपना देश दूर है, हृदय सदा शंकाशील है, हे गुणपालित ! तुमको सग मिन की रक्षा में, सावधान रहना चाहिये<sup>१</sup> ॥४६४॥

हृदयद्वय एक्यं याते यूनोर्वियोगजं क्लेशम् ।

अनुभवतोरपरेण प्रसंगतः पठ्यते पथ्या ॥ ४६५ ॥

हारलता और मुन्दरसेन दोनों के हृदय के एक हो जाने पर वियोग जन्य क्लेश का अनुभन करते हुए किसी अन्य व्यक्ति ने प्रसंगश यह पथ्या श्राया पनी<sup>२</sup> ॥४६५॥

१. परिहास—परय मर्त्तश्चित्तं चूतं बुसुमैमंभुगान्धिमिः ।

हेमपत्रारूपो वा कौटिल्यो यत्र कूजति ॥ बुद्धचरित ४।१४.

(र) वनछेड़ी समारवत्यदलं भू पतितं प्रति ।

दैहि महासुदस्येति मद्गिता योदित्तांसि यत् ॥ नैयथ २०।१६.

(ग) निधिविचेरस्थानरयोपरि चिह्नार्थमिव क्त्वा निहिता ।

खोभयति तव तनुदरि जघनतटादुपरि रोमाञ्छी ॥ श्रायंनसशक्ती (१३८)

विपरीत आचरण—

सुम्बनेषु परिविंताचरं हस्तरोधि रशनाधिवहने ।

विज्जितेष्दुमपि तस्य सर्वतो मन्मथेन्धनमभूद्वधभूरतम् ॥ श्रुवंश १९।२७.

२. स्नेही के प्रति मन सदा शंकाशील रहता है—'स्वगृहोद्यानगनेऽपि स्निग्धे पार्श्वे विशदृषते स्नेहान्'—नागानन्द ५।१; 'मिम परयति भयान्पदेऽपि'—किरात १।७०, 'अतिल्लेहः पापशक्ती'—शाकुन्तल ४.

३. पथ्या—श्राया का एक भेद है; यथा—

श्रीजे गणप्रयं पादे द्वितीये तद्यनुष्टम् ।

“अन्योन्यमुद्वेष्टचेष्टितसद्भावस्नेहपाशवद्धानाम् ।

विच्छेदकरो मृत्युर्धीराणां वा परिच्छेदः” ॥ ४६६ ॥

परस्पर मुद्वेष्ट चेष्टावाले, निष्कण्ठ स्नेहपाश से बँधे प्रेमियों का अत्यन्त वियोग मृत्यु का कारण होता है। अथवा धीर (मुल दुःख में समान चित्त, पण्डित) मनुष्यों के लिये परिच्छेद विभेक का कारण होता है ॥४६६॥

अथ तच्छ्रवणानन्तरमास्व मुखं दयितिके व्रजामीति ।

अभिधाय याति मन्दं सुन्दरसेने विवर्तितप्रीचम् ॥ ४६७ ॥

यह सुनने के पीछे, ‘मुख से रहो’ रूपी आशीर्वाद देकर प्रिये ! मैं जा रहा हूँ, इस प्रकार कह कर ग्रीवा को मोड़कर सुन्दरसेन के घीमे से जाने पर, (हारलता भूमि पर गिर पड़ी) ॥४६७॥

वटशाखालम्बिभुजां श्वसितोष्णसमीरशुष्यदधरदलाम् ।

पर्यस्तां विभ्राणां तन्मार्गविलोकनानिमेपट्टशम् ॥ ४६८ ॥

लोलायमानवेणीतिर्यक्कृतकण्ठभूपणविशेषाम् ।

गलदश्रुवारिपूर्णां पतितां संशुष्कनिःसहांगलताम् ॥ ४६९ ॥

बट की शाखा को पकड़े निश्वास की उष्णवायु से श्रोत्र के सूखने पर, रंग बदली हुई हारलता सुन्दरसेन के जाने के मार्ग में अनिमेप दृष्टि से देखती रही। वालों के अस्त व्यस्त होने के कारण गले का आभूषण भी अव्यवस्थित हो गया था, श्रोत्रों से लगातार आँसू बह रहे थे, सूजी निःसहाय लता की भाँति वह भूमि पर गिर पड़ी ॥४६८-४६९॥

रन्धानामिव हृदयं स्फुटदितरकरेण कुच्युयुगाश्रयिणा ।

परिशेषिता विलासैरत्सृष्टां जीवलोककर्तव्यैः ॥ ४७० ॥

गुरुभ्रुवेंऽपि तथा, किन्तु छोड़्य वृत्तीयके ।

विपमे जगत्सो नात्र; पथ्याऽऽर्यां संप्रकीर्त्तिता ॥

(ख) पथ्या-द्वितवहा आर्या पदी ।

१. स्नेह का छक्षण—दर्शने स्पर्शने याऽपि श्रवणे भावणेऽपि वा ।

\* यत्र द्रवयन्तरङ्गं स स्नेह इति कथ्यते ॥

धीर का छक्षण—

‘विकारहेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः’—कुमार ११५०.

सौन्दरानन्द में—

‘ज्ञानाच्च रीषाच्च विना विमोक्तं न शनयते स्नेहमयस्तु पाशः’—०११५.

अंगीकृतां विपत्त्या, वशीकृतां मर्मवट्टनैर्विपमैः ।

हारलतामपरिस्फुटमन्तः - परिष्कृत्यमाण - भारत्या ॥ ४७१ ॥

मा मा धावत क्षणमेकं यावदेव निष्करुणः ।

वनगुन्मैर्न तिरोहित इत्यभिदधती जहुः प्राणाः ॥ ४७२ ॥

(कुलकम्)

स्तनों पर हाथ रल कर पटते हुए, हृदय को रोक्ते हुए; सब प्रकार के विलासों को छोड़, संसार के करणीय फलों का भी परित्याग करके; दुःख से दुःखी, मर्म स्थल की पीडा से अतिशय रूप में पीडित, आसन्न मृत्यु के कारण सूजी बाणी द्वारा अस्पष्ट गोलती, हे प्राण ! अभी मत निम्नो, एक क्षण के लिये रुक जाओ, जब तक यह कठोर जगल की लता समूहों में छिपकर श्रांत से ओझल नहीं होता, इस प्रकार बहती हुई हारलता ने प्राण छोड़ दिये ॥४७०-४७२॥

अथ पश्चात्समुपेतं पप्रच्छ पुरन्दरात्मजः पथिकम् ।

दृष्ट्वा शोक्व्यथिता निवर्तमाना वरांगना भवता ॥ ४७३ ॥

इसके पीछे, पीछे से आते हुए पथिक से मुन्दरसेन ने पूछा—‘आपने शोक से पीडित वापिस जाती हुई किसी वेश्या को देखा’ ॥४७३॥

स उवाच वटतरोरध उर्व्यां पतिता त्रिनिश्चलावयवा ।

तिष्ठति यनिता, नान्द्या नयनायसरं गताऽस्माकम् ॥ ४७४ ॥

उसने कहा कि—वटवृक्ष के नीचे, भूमि पर पड़ी, निश्चेष्ट अययों वाली एक स्त्री थी, और कोई स्त्री हमारी निगाह में नहीं आई ॥४७४॥

इति तद्वचनाश्रमहतो विह्वलमूर्तिः पपात भूपृष्ठे ।

उत्थापितश्च मुहृदा सोऽभिदधे तेन शोकविकलेन ॥ ४७५ ॥

पत्थर के समान इस कठोर वचन को सुनकर विह्वल होकर मुन्दरसेन भूमि पर गिर पड़ा । मित्र ने उसे उठाया और शोक से बेचैन मुन्दरसेन ने कहा ॥४७५॥

भवतु कृतार्थस्तातन्वमपि सुमित्रास्तत्र साम्प्रतं प्रीतः ।

समन्तालमेव मुक्ता पापेन मयाऽमुभिश्च हारलता ॥ ४७६ ॥

(उपालम्भ देते हुए), मित्र भी कृतार्थ हो गये, तुम अच्छे मित्र भी अब प्रसन्न हो जाओ । मुझ पापों के कारण हारलता ने मेरे चलने के साथ ही प्राण छोड़ दिये ॥४७६॥

### १. विद्यास—

‘विद्यसन्निधौ वगैः क्रियायां वक्षते च स्मृतिशय रिनेवोत्थासि विद्यासः ।’

हाहा हाव हतोऽसि, ध्वस्ता लीला, विलास किं कुरुषे ।

उच्छिन्ना विच्छित्तिर्भ्रम विभ्रम दश दिशो निराधारः ॥ ४७७ ॥

बड़े दुःख की बात है, पूर्ण चन्द्र की कान्ति को भी तिरस्कृत करने वाली हारलता के यम के पास जाने पर-मरने पर-हाव मर गये, लीला नष्ट हो गई, विलास व्यर्थ हो गये, विच्छित्ति जाती रही, विभ्रम भी नष्ट हो गया, दशों दिशायें शून्य हो गईं ॥४७७॥

किलकिञ्चित् गच्छ वनं, मोट्टायितमशरणत्वमुपयातम् ।

कुट्टमित प्रव्रज्यां गृहाण, विश्वोक विश भुवो विवरम् ॥ ४७८ ॥

किलकिञ्चित् तुम जगल का रास्ता पकड़ो, मोट्टायित तुम्हारा भी अब कहीं स्थान नहीं रहा, कुट्टमित ने संन्यास ले लिया, विश्वोक पृथ्वी के गर्त में पाताल में घुस गया ( ये सब भाव नष्ट हो गये ) ॥४७८॥

१. साहित्य दर्पण में स्त्रियों के अट्टाईस सात्विक अलंकार कहे हैं । इनमें भाव, हाव और हेछा ये तीन अंगज हैं । इनका सम्बन्ध शरीर से हैं, शोभा, कान्ति, दोषि, माधुर्य, प्रगल्भता, औदार्य और धैर्य ये सान अयत्नज— [ अर्थात् कृति से साध्य नहीं ] हैं । छीजा, विज्ञास, विच्छित्ति, विश्वोक, किलकिञ्चित्, विभ्रम, क्षिप्त, मद, विह्वल, तपन, मौग्य, विश्लेष, कुगृह्य, हसित, चकित और केलि ये अट्टारह स्वभावसिद्ध हैं, किन्तु कृति-साध्य हैं । इनमें—

हाव—भूनेत्रादि विकारैस्तु संभोगच्छामकाशकः ।

भाव पवारूपसंलक्ष्यः विकारो हाव उच्यते ॥ सा०द०-३१९४.

छीजा—अनीवैपैरलंकारैः प्रेमभिरुचनैरपि ।

श्रीतिप्रयोजितैर्छीजा प्रियभ्यानुकृति विदुः ॥ सा०द० ३१९८.

विज्ञास—यथा स्थानासनादीनां मुखनेत्रादिकर्मणाम् ।

विश्लेषस्तु विज्ञासः स्यादिएमंदशानादिना ॥ सा०द० ३१९९.

विच्छित्ति—स्तोकाप्याश्वपरचना विच्छित्तिः कान्तिपोषकृत् ॥ सा.द. ३१९००.

विभ्रम—स्वरया हर्षरागादेदंथितागमनादिषु ।

अस्थाने विभ्रमादीनां विन्यासो विभ्रमो मतः ॥ सा.द. ३१९०४.

२. किलकिञ्चित्—

स्मित-शुष्क-रदित-हसित-प्रास क्रोध धमादीनाम् ।

सौकर्यं किलकिञ्चित्तमभीष्टतममंगादिनाद् हर्षात् ॥ सा.द. ३१९०१.

मोट्टायित—सद्भावभाविते चित्ते वदन्नमस्य कथादिषु ।

मोट्टायितमिति प्राहुः कर्णकण्डूयनादिकम् ॥ सा.द. ३१९०२.



ललितमनार्थाभूतं, विद्वनस्य गतिर्न विद्यते क्वापि ।

शशधरविम्बद्युतिमुपि यातायामन्तरन्यान्तः ॥ ४७६ ॥

पूर्ण चन्द्रमा की धुति की रुपने वाले मुख वाली के यम के पास चने बाने पर ललित अनाथ हो गया, विद्वत को कोई रस्ता नहीं मिला ॥ ४७६ ॥

विनिवृत्त्य यामि द्रुयुं मद्विरहात्पत्तवल्लभप्राणाम् ।

भवतु वराक्यान्तत्याः सप्रार्चिर्दानमात्रमुपकारः ॥ ४७७ ॥

मेरे विनोद मे अपने प्रिय प्राणों को छोड़ने वाली हृदयता की बचाने के लिये लौट कर वापस जाता हूँ । क्रमिदान का मेरा पुराना उक्त गरीब को मिल जाये ॥ ४७७ ॥

गन्धाऽथ तमुद्देशं यन्मिन्ता पंचमायमापन्ता ।

प्रिललाप मुक्तकरुणं विलुठन् भुवि सहचरेण धृतमूर्तिः ॥ ४७८ ॥

जिन स्थान पर हारलता मर्ग थी, उन स्थान पर पहुँच कर जिन से अत्यल्पमित शरार (पकड़ा हुआ), भूमि पर लोट कर खूब जोर ज़े रोया ॥ ४७८ ॥

“एने वयं निवृत्ता मुंच न्यं, देहि कोपने वाचम् ।

उत्तिष्ठ, किमिति तिवृत्ति भूमितले रेणुत्वपितरारीर ॥ ४७९ ॥

हम लौट आये, कोप को छोड़, गुस्से ! उगाय तो दे, खड़ी हो, वर्मान पर क्यों बैठी है, शरीर पर धूल क्यों लगा रखी है ॥ ४७९ ॥

विनिर्मान्य दृशौ कम्मादप्रतिपत्त्या स्थिताऽसि शुभवदने ।

त्वदवारितगमनत्रिधेरपराधितया न मेऽन्ति संयोगः ॥ ४८० ॥

हे शुभवदने ! आँसों को दन्त करके दिमलिये मूढ़ जी मैंति निरचल पडी है, तेरे मना करने पर भी जो मैं चला गया; इसी अन्तर से मेरा दुःखारे साथ संयोग नहीं हो रहा ॥ ४८० ॥

नादाधिपतिपुरस्त्रीरभिभयितुं त्वयि दिवं प्रयातायाम् ।

सत्यपि शरेषु पद्मम् निराश्रयः साम्प्रतं मदनः ॥ ४८१ ॥

नादाधिपतिपुरस्त्रीरभिभयितुं त्वयि दिवं प्रयातायाम् । सत्यपि शरेषु पद्मम् निराश्रयः साम्प्रतं मदनः ॥ ४८१ ॥

इन्द्रपुरी की स्त्रियों को तिरस्कृत करने के लिये तेरे स्वर्ग में जाने पर, कामदेव अपने पाँच बाण रखने पर भी शत्रु शस्त्र प्रिना हो गया' ॥४८४॥

वञ्चकवृत्ता वेश्या इत्यपवादो जनेषु यो रूढ ।

अपनीतोऽसौ निपुण त्वया प्रिये जीवमोक्षेण ॥ ४८५ ॥

मनुष्यों में जो यह अपवाद प्रसिद्ध है कि वेश्यायें ठग होती हैं, इस अपवाद को हे प्रिये । तूने प्राण देकर पूरणरूप से झूठा प्रमाणित कर दिया<sup>२</sup> ॥४८५॥

यथ्यं सद्भवत एकस्त्रिपुरान्तकनन्दनो महासेन ।

हृदय स्पृष्ट न मनागपि यामलोचनाप्रेम्णा ॥ ४८६ ॥

शिव का पुत्र सद्भवतधारी पडानन शत्रुला ही इस विषय में प्रशसनीय है, जिसके हृदय पर स्त्रियों के प्रेम का जरा भी प्रभाव नहा हुआ ॥४८६॥

मन्येऽभीप्रवियोग निमेषमपि दुसह समवधार्य ।

हरिणा वक्षसि लक्ष्मीर्विधृता गौरी हरेण देहार्थे ॥ ४८७ ॥

मैं ऐसा मानता हूँ कि प्रिय का क्षण मात्र भी वियोग दुसह है, इसीलिये ऐसा सोच कर विष्णु ने लक्ष्मी को छाती पर और शिव ने गौरी को शरीर के अर्धभाग में धारण किया है ॥४८७॥

अयि लोकपाल, मा भुवि ललामभूता, तथा विना शून्यम् ।

विश्वमिति कि न चिन्तितमात्मस्थान प्रिया नयता ॥ ४८८ ॥

१ पाँच बाण—

(क) अरवि-इमशोक च चूत च नवमल्लिका ।

नीलोत्पल च पञ्चैते पञ्चबाणस्य सायका ॥

(ख) उन्मादनस्तापनश्च शापयः स्तम्भनस्तथा ।

सम्मोहनश्च कामस्य पञ्च बाणा प्रकीर्तिता ॥

(ग) ब्राह्मण क्षाभरश्चैव वशीकरण इत्यपि ।

अकपणश्च कामस्य षण्ण सम्मोहनोऽपर ॥

२ कहा भी है—'कपटानुरागाकौसीदिक' खलु वरयाजन ॥ कामे द्र

वाग्भि प्रीतिकरैर्विलोकनपते सतर्जने सम्मिते,

काधैरौषधमप्रतत्रमखिभि कृत्वा वश नायकम् ।

हत्वा तस्य समस्तवस्तुनिचय त्यक्त्वा तमन्य शठ,

सेवते धनिन ह्येव सतत वाराङ्गनाना रति ॥

हानि नहीं । ( तुम पुरुषों के मनोरञ्जन में पेश्याओं के ऐसा होने पर भी कोई हानि नहीं ) ॥४६८॥

रमणद्वयानुवर्तनचतुरचतुःपट्टिकर्मदृशालानाम् ।

न सृष्टाति तत्त्वचर्चा पण्यव्यूना विदग्धचेतासि ॥ ४६९ ॥

कानुक नायक के हृदय के अनुसार नरतन में चतुर, कामशास्त्र का चीसठ कलाशा में कुशल, बेज्याओं से रक्षित चित्त में तत्त्व ज्ञान का विचार नही होता ॥४६९॥

बलितप्लुतचित्रगतिस्थितिप्रोवैभोदनानुवृत्त्या च ।

रागस्पर्शन विना विशति मन सादिना तुरग ॥ ५०० ॥

बुद्धसगर व मन में थोडा अन्या बलित, प्लुत, चित्रगति, स्थिति ज्ञान से तथा बुद्धसगर की इच्छा के अनुसार चलने व मारण हा पेंट जाता है, भन्ने ही उसमें राग [रग] और स्पर्श [कमनता] न हा, ( बुद्धसगर थोडा की उसके इन गुणा से पसन्द करा है, उसे थोडा से राग नही हाता—कल गुणों से ही स्नेह है, इसा प्रकार वेर्या से भी स्नेह उसके गुणों से ही होना है ) ॥५००॥

गन्धाऽपि कुत प्रेम्णः परमृतहारीतगृहकूपोतानाम् ।

सञ्चलयन्त्यसमेपुं विन्तविशेषस्तथापि ते यूनाम् ॥ ५०१ ॥

कोयल, हारीत, धर के पाले कवूतों में प्रेम की गंध भी नहा, तथापि ये अपनी विशेष आवाज से सुनाया में वान भी जागृत करते है ॥५०१॥

आहितमुक्ताहार्यं सम्यक्संस्मृतप्रयोगनिष्पत्त्या ।

भावप्रिहोनोऽपि नटः सामाजिकचित्तरञ्जन कुरुते ॥ ५०२ ॥

परिले स्वीकार किया और फिर छोड दिया ऐसे आहार्य अभिनय की करने वाला, अनुयाग हीन नट भी भवी प्रकार सम्पूर्ण अभिनय की सफलता से साना विक्र बनों के मन को प्रसन्न करता है ॥५०२॥

१. चौमड कछा—कामसूत्र क धवपव भूत गान-वादित्र आदि ६४ कछापों धववा पाञ्चोड की ६४, कछाओं में चतुर [ कामसूत्र २।९ ]

२. घाङ्कठ, वाचिक और आशय तीन प्रकार क अभिनयों में एक आहार्य है, 'आशयभित्तयो नाम ज्ञेयो नवप्यनो विधि'—मत्त २।१२ । भाव—रति आदि स्यापि भाव—घाठ, निर्वेद आदि ६२विचारि भाव—३, स्वयम आदि सात्त्विक भाव घाठ, इस प्रकार कुल ४९ भाव हैं, इनमे रक्षित जाने पर भी नट-दर्शकों का मन प्रयत्न करता है ।

येऽपि धनक्षयदोष पश्यन्ति जडा विलासिनीश्लेषे ।

प्रष्टव्यास्ते भवता किमकृतकशिपुव्यया दारा ॥ ५०३ ॥

जो मूढ वश्याआँ के सम्भाग में धन क्षय का दोष देरते हैं, उनसे पूछना चाहिए कि क्या स्त्री में अन्न वस्त्र का व्यय नहीं होता? ॥५०३॥

न च लाभ एक एव प्रवर्तने कारण मनुष्येषु ।

रागादयोऽपि सन्ति वैशिकशास्त्रप्रणेतृभि कथिता ॥ ५०४ ॥

मनुष्यों के प्रवृत्ति का कारण केवल लाभ ही नहीं होता, राग अनुराग, प्रीति आसक्ति आदि भी कारण होते हैं, ऐसा वैशिक शास्त्र कामशास्त्र बनाने वालों ने कहा है? ॥५०४॥

का चा विभूतिराप्ता सुन्दरसेनात्तया तपस्विन्या ।

यद्विरहकुलिशाभिन्ता मुमोच सा जीवित क्षणार्धेन ॥ ५०५ ॥

उस बेचारी हारलता ने सुन्दरसेन से कौन सा बड़ा धन पा लिया, जिसने विरह म उसने आधे क्षण में अपने प्राण छोड़ दिये ॥५०५॥

उत्तमतरुणप्रकृति पुलकादिकसूचितान्यतरशक्ति ।

स्फुटसन्निहितविभावो निवार्यते केन शृङ्गार ॥ ५०६ ॥

उत्तम यौवन, रोमाञ्च आदि कारणा से प्रगट असामान्य शक्ति, सुव्यक्त, समीपवर्ति विभाव रहने पर शृङ्गार को कौन छोड़ सकता है? कोई भी नहीं छोड़ सकता ॥५०६॥

१ इष्ट वाऽनिष्ट वा सुखदुःख या न वेत्ति या माहात् ,

परवशम स भवेद्विह लडसञ्जक पुरुष ॥

२ वैशिक—वेरधोपचरणाद् यापि वैशिक स उदाहृत , (ख)—विशेषयेत्कदा सर्वा यस्मात्सस्मात्तु वैशिक —भरत २१।२-३

३ शृङ्गार—रम्य देश कक्षा-काष्ठ-वेश भोगादिसेवनै ।

प्रमोदाशमा रति सैव यूनोरन्यो-यसक्तयो ।

प्रहृष्यमाण शृङ्गारा मधुरागविचेष्टितै ॥ दशरूपक ४।४८

विभाव--विशेष रूप से जो रस उत्पन्न करते हैं, उन भावों को विभाव कहते हैं । ये विभाव उद्दीपन और आलम्बन भेद से दो प्रकार के हैं, जिसका आलम्बन आश्रय लेकर रस उत्पन्न होता है, वह आलम्बन है, यथा नायिका और नायक, जो रस को उद्दीप करता है वह उद्दीपन विभाव है, यथा—छोविज्ञास, चन्द्रोदय, पलत कणु आदि ।

अन्तःकरणविकार गुणपरिजनसंकटेषुपि कुतटानाम् ।

जानन्ति तत्रभिमुक्ता भ्रूभगापांगमधुररुष्टेन ॥ ५०७ ॥

वेश्याओं के अन्तःकरण के विकृत भाव को, गुद-सन्धी, अन्य आदि के पास में होने पर भी, उनके परिचित मनुष्य भ्रूचालन, अभाग दृष्टिकगद, तथा मधुर प्रेक्षण से जान लेते हैं ॥५०७॥

अन्या विहाय पतिगृहमनिचिन्तितकुलरत्नकजनगर्हा ।

रागोपरक्तद्दया यान्ति दिगन्त मनुष्यमासाद्य ॥ ५०८ ॥

अनुपग वाली कामिनिर्गो-कुलनिष्ठा एव लोभनिष्ठा वा परमाह न करके, मन के अनुकूल पुरुष के मिलने पर पति गृह को छोड़कर भी उसर साथ दूर देश में भी चला जाती हैं ॥५०८॥

अपमान पतिनिहिती गुणपरिकरतीव्रता गृहे दौर्ज्यम् ।

शीलक्षतये यासा तामामतिरागतोऽन्यनरसक्ति ॥ ५०९ ॥

पति से हिना अपमान, गुणनों से भिना तिरस्कार, घर में टुटनी जायन, जिनका होता है, उनके लिए अति अनुपग हा। दूसरे मनुष्य में आलाक उत्पन करके शालनाश का कारण होता है ॥५०९॥

या अप्यचलितवृत्ता भर्तु परिचरणात्परा प्रमदा ।

ता अपि रागविमुक्तास्तिष्ठन्त्याचित्यमात्रेण ॥ ५१० ॥

जो शुद्ध चरित्र वाली स्त्रियों, भी पति सेना में सदा तपर रहता है, वे केवल उचित कर्त्तव्य मात्र दृष्टि से ही परलता है, पतिसेवा करना है, इसासे धरता है, स्नेह से नहीं धरता ॥५१०॥

१- हयं प्रमाद जनित-कोशमपमनमथा ।

सम्प्रप्रेषकटाक्षा च गृणारे दृष्टिरिष्यते ॥ मात-दा।४४-

आपिदन्तीव हयं वा सविक्रमाऽतिनिर्मळा ।

सम्प्रप्रेषकटाक्षा सा कान्ता मन्मथवर्धिना ॥

२- देव प्रमन्ति विषम, सहने दु ख, प्रमन्ति दु खिता ।

तथापि महिषानां प्रेम दपिते, न स्वजनरों ॥

३) पुराणीयां प्रेमप्रद्विषमविषार खलु मन ॥

श्रीमुरीमिश्रानन्द नाटक-४।२-१०

(ग), रूप कुछ धीवनमाभिवाय नउभ्रुवत्तख विषारयन्ति ।

दृष्टिनिष्ठेषुपि रसान्विरिहा कर्षदेव परितपयन्ति ॥

तस्मादस्त्वभिगमनं विविधनिमित्तं निवार्यते केन ।

निजपरपण्यस्त्रीणां रागावीनं तु हृदयनिर्वहणम् ॥ ५११ ॥

इसलिए जैसा है वैसा ही ठीक है, इसमें बहुत सोच विचार करना उचित नहीं । रागप्राप्त्य, पतिनिरक्ति आदि अनेक कारणों से अभिगमन (व्यभिचार) होता है, यह किसी से नहीं गेका जा सकता । विवाहित अपनी स्त्री, परकीया स्त्री और वेश्या सत्रका हृदय राग प्रेम से ही जीता जा सकता है ॥५११॥

एत्रत्रिधन्ष्टान्तेन्पपत्तियुतेस्तथेत्शैर्वाक्यै ।

अन्वैरपि चादुपदैरावर्जितमानसं गम्यम् ॥ ५१२ ॥

इस प्रकार नाना प्रकार के दृष्टान्त, युक्तियुक्त तथा तर्क वितर्क वाले वचनों से, श्लाघा परक—गुणामयी वचनों से प्रियवत्तम प्राणनाथ आदि नायक के मन का वश में करने प्रसन्न करके, कामुक को अभिगमन योग्य बनाना चाहिये ॥५१२॥

विहितस्वापविबोधं किञ्चित्प्रकटीकृतकलमग्लान्या ।

उत्पादितजम्भिकया परिरभ्य घनं निशापगमे ॥ ५१३ ॥

विघटितविनिमुद्रशो विलोक्य ककुभ सुदीर्घनिश्वासम् ।

वक्तव्यमिति भवत्या रजनि खले किं प्रभाताऽसि ॥ ५१४ ॥

रात्रि के बीतने पर, नींद में जाग कर, कुछ थकान और ग्लानि को दिखाते हुए जम्माई लेकर, दृढ आलिंगन करने, निन्द्यारी ओंखों को खोल कर—दिशाओं को देखते हुए, लम्बा निश्वास लेकर, कहना चाहिये, कि क्या सबेरा हो गया ॥५१३—१४॥

अवला विपहेतु कथं दृढशक्तिमनुष्यरतिरसप्रसरम् ।

मदनजनितोऽनुरागो न विदध्याद्यदि बलाधानम् ॥ ५१५ ॥

यदि कामजनित अनुराग बल का संचार न करे, तो किस प्रकार से अवला दृढशक्ति, बलवान मनुष्य के रतिवैग का सहन कर सकती है, कामजय अनुराग के बल से ही वह सहन करती है ॥५१५॥

धन्या चक्राह्वयं प्रियतमसघटनसमयसंप्राप्त्या ।

शशिना विद्युज्यमाना कुमुदिनी किं क्षीणपुण्यासि ॥ ५१६ ॥

१ आस्येन्द्रो परिषेधवद् रतिपते चापिदकोदण्डवत्  
घम्मिह्नाम्बुमुच क्षण्यतिवदासजौ क्षिपन्तीं भुजौ ।  
विश्लेष्यद्बललक्ष्यनभिविगच्छन्नीव्युन्तमन्मध्यमं,  
किञ्चि किञ्चिदुदञ्चदञ्चमहो कुम्भस्तनी जृम्भते ॥  
(ख) प्रभातशेषा रजनी धभूव—

चन्द्रा धय है, प्रियतम से मिलने का समय आने पर—दिन होने पर, भाग्यशाला हो गई। चन्द्रमा से प्रियतम हान वाला कुमुदिनी—दिन निकलने के कारण समुचित हान लगा—(कुमुदिनी पत्रि म खिलती है, तिन में कन् होती है), कि प्रत्ययक है, क्या कुमुदिनी क्षणपुर्या है—जो तिन में नष्ट हो रही है, चन्द्रा क्या भाग्यशाला है, जो तिन में प्रियतम से मिल रहा है ॥५१६॥

त्रिभुजितमुरभिमनोहरसस्थान सरसकुसुममप्राप्तम् ।

न करोति तथा पीडामास्यात्त्रिच्युत यथा भृङ्ग्या ॥ ५१७ ॥

त्रिभुजित, सुगन्धित, देखने में सुन्दर रस से भरा पुष्प भृङ्गी को न मिलने पर उतना दुःखदायक नहीं होता, तितना कि त्रिभुजित, देखने में सुन्दर, रस से भरे पुष्प का स्वाद लेने पर वह गिर कर पीना करता है ॥५१७॥

विज्ञापयाम्यतस्त्वा रचिताजलिमौलिना विधाय नतिम् ।

परिचारकननमध्ये गणनीयाऽह प्रसादेन ॥ ५१८ ॥ (युग्मम्)

हाथों को जोड़कर, शिर को सुनकर, मैं प्राप्तने प्रायना करती हूँ, मुझे भी अपने सेजनों में गिनने का कृपा कर ॥५१८॥

अथ दापितरागागैरपहस्तितलाभप्रिभ्रमोपचितं ।

मृदुभिश्चितानुगतैरुपचारैः पातितस्य विश्वासे ॥ ५१९ ॥

राग-स्नेह व उपकारक भावा को उचितन करते हुए तथा धन प्राप्ति आदि लाभ का भ्रान्ति का दूर कर, हृद्य को दय करने वाले कमल उपचारा से, कामुक को विश्वास में लाना चाहिए ॥५१९॥

अथलोकितोऽसि लम्पट किमपि धत्स्व कर्णसन्निधौ निमृत्तम् ।

शरसेनाधान्या अद्य मया जालमार्गेण ॥ ५२० ॥

हे लम्पट ! तुम्हारे कानों में चुनचाप बात करते हुए मुझ आज्ञा, गजाक्ष मार्ग से शङ्कर सेना दाह ने देख लिया है ॥५२०॥

१ नहि वन्द्याऽप्रजुते दुःख यथा हि मृत्पुत्रिणी—दृति न्यायन

२ नायक में धनुषराग को बद्धान क लिए इयां उचित करनी चाहिये—

स्नेहा विना भय न श्यान्मनसा नश्यता विना ।

तस्मान्मानप्रकारा-य ह्या प्राःतविवधना ॥

शङ्करातिलक २।५३.

सैमद्र न भी बिखा है—

स्वय प्रदत्तेऽप नश्यन्ते च शङ्केत उद्वक्तिविवादपीडम् ।

मिन्दत् प्रकाम जननी रिहदा गच्छस्वय धेरन च कामुकस्य ॥

समयानुक्ता ८।३१.

मालत्या सह किञ्चिदभिदधासि सखी ममेनि न विरोध ।

यत्तु चिरात्स्नग्धट्टशा पश्यसि ता तत्र मे शका ॥ ५२१ ॥

तुम मेरी सखि मालती के साथ भले ही बात करो, इसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं । परन्तु स्नेहभरी दृष्टि स जो देर तक उसको देखते हो, इससे मुझे शका है ॥५२१॥

त्वामागता न वीक्षितुमनुवध्य न याचित प्रयत्नेन ।

आहूय यद् किमर्थं ताम्बूल ग्राहिता कमलदेवी ॥ ५२२ ॥

तुम्हारे दर्शन के लिए कमलदेवी नहीं आई और न उसने इठ करके तुमसे पान माँगा । निर किसलिए उसको बुलाकर तुमने पान दिया, इसका उत्तर दो ॥५२२॥

कचुकमपकर्पन्त्या प्रकटीभवदसकसुकुचपार्श्वम् ।

साम्निवेशे दृष्ट भवता किं कुन्दमालाया ॥ ५२३ ॥

आँचल को रगचकर कधे, कक्ष आर पार्श्व को गिराते हुए, कुन्दमाला को आपने किस लिए आग्रह के साथ देखा ॥५२३॥

परिहासेन गृहीता यद्यशुकपल्लवे त्वया रामा ।

आच्छिद्यपद्मान्ता किं मामवलोक्य पृष्ठत सहसा ॥ ५२४ ॥

तुमने हँसी हसी में जिस स्त्री का आँचल पकड़ा था, वह पीछे से मुझे आती देखकर क्यों सहसा आँचल छुड़ाकर भाग गई ? ॥५२४॥

विज्ञानेन रयाता कुमुमलता त्वं तु वर्णयस्यनिशाम् ।

नृत्यती मृगदेवी विस्फारितलोचन पश्यन् ॥ ५२५ ॥

नाचती हुई मृगदेवी को आँखें पाड पाडकर देखते हुए अपने विशान (वशीकरण आदि कर्म पाण्डित्य) से प्रसिद्ध कुमुमलता की क्यों रातदिन तुम स्तुति करते हो । अथवा मृगदेवी को विस्मय से देखते हुए तुम मेरे सामने कुमुमलता की जा प्रशंसा करते हो वह तो केवल बहाना मात्र है, वास्तव में तुम मृगदेवी पर रोके हो ॥५२५॥

कारणमत्र न वेद्म्यहमृजुपन्थान प्रसिद्धमुत्सृज्य ।

वज्रेण यदेपि सदा माधवसेनागृहाम्रेण ॥ ५२६ ॥

मैं नहीं समझती क्या तुम सीधे चालू रास्ते को छोडकर सग टेढ़े मार्ग से माधवसेना के घर व आगे से निकलते हो ॥५२६॥

इति सेष्योपन्यासेरन्यैश्चासर्मवेधिलघुकोपे ।

प्रणयप्रभवैर्विहिते क्षामोदरि रुढरागवे ॥ ५२७ ॥



श्रुतिविषयेऽन्तरिततनुर्जनितस्थितिरायताञ्चि सह मात्रा ।

परुपगिरा त्वं कुर्या इत्थं मिथ्यावचःकलहम् ॥ ५२८ ॥

( अन्तः कुलकम् )

हे कृशोदरि ! इसी प्रकार के ईर्ष्या से भरे, दिल में चोट न पहुँचानेवाले, थोड़ा सा गुस्सा लाने वाले, स्नेह से भरे, अन्य वचनों से अनुराग उत्पन्न करके; हे विशाल नेत्रों वाली ! अपने शरीर को छिपाकर, नायक मुन सके तथा तेरी उपस्थिति जान सके, इस स्थिति में तुम्हें माता के साथ कठोर वाणी में पूछा वाक्बलह इस प्रकार से करना चाहिए ॥ ५२७-५२८ ॥

अमलेशोपनतघनः प्रेमप्रद्वो निरर्गलत्यागः

भट्टानन्दस्य मुतो निधिभूतोऽभव्यया त्वया त्यक्तः ॥ ५२९ ॥

अर्थ दृष्टि से वेश्याओं के लिये गमनीय फानुक—रिना कष्ट के जिसे घन प्राप्ति हुई हो; प्रेम से नम्र [ प्रेम में पागल ]; बेरोक टोक का—अप्रतिग्रह रूप में त्याग करने वाला, तुले हाथों से रख करके वाला; अवरिमित द्रव्यमान्; भट्टानन्द का पुत्र तुम्हें भाग्यहीन ने छोड़ दिया ॥ ५२९ ॥

व्यसनोपहृतविवेको दानैकरतिः स्वदारविद्वेषी ।

मामविगण्य मूढे निर्भर्त्सित एव केरावस्वामी ॥ ५३० ॥

व्यसनी ( पान-स्त्री-भृगया आदि ) से नष्ट विवेक ( वक्तव्याकर्तव्य बुद्धि ) अतिशय धनदाता; अपनी पत्नी से द्वेष करने वाले केराव स्वामी को, हे मूढे ! तुने मेरी परवाह न करके तिरस्कृत किया ॥ ५३० ॥

अगणितराजापायो विन्दिन्ननायः स्वभावतस्त्यागी ।

त्रिमुपेक्षितोऽनुरक्तो वामधिया शौलिककाप्यज्ञः ॥ ५३१ ॥

राजदण्ड आदि की भी परवाह न करने वाले—निर्मय, अविच्छिन्न ग्राम-दानी वाले, स्वभाव से त्यागी एवं अनुरक्त शौलिककाप्यज्ञ ( कर बमूल करने वालों के अव्यव) की; उल्टी मनाली तुने क्या सोचकर उपेक्षा की ॥ ५३१ ॥

१—वास्यायन में केशवार्णस्वामी मन्त्रा—स्वतन्त्रः पूर्वं धर्यासि वचंमानो वित्त-  
वाभररोक्षृतिधिहरणपानट्पूरादिगवित्तः, संवर्षयान् संवत्सायः,  
मुमगमानी, रक्षाघनकः, पण्डितः, पुंशब्दार्थी, समानार्थी, स्वभावतस्त्यागी,  
रात्रि महामात्रे वा मिदो, ईशप्रमाणो, वित्तावमानो, गुह्यां ग्रामनायकः,  
सजातानो खप्यभूतः, सवित्त एकपुत्रो, क्षिणी, प्रणष्टकामः, शूरो  
वैपश्चेति—अधि० ६ अ० ११२०.

पितुरेक एव पुत्रश्चतुर्थवयसो गदाभिभूतस्य ।

द्रविणवत प्रभुरातो निराकृतो भूरिकामया सोऽपि ॥ ५३० ॥

वृद्ध एव रोगों से खोखले गने धनी पिता का अकेला एक ही लडका, उसको भी तूने अधिक धन की लालसा से निकाल दिया ॥ ५३० ॥

स्वकरेण परित्यक्ता त्वया त्रिभूतिं करोमि किं पापा ।

सर्वभरेणोपनत वसुदेवमनादरेण पश्यन्त्या ॥ ५३१ ॥

हे पापन् । मैं क्या करूँ, अन्न वस्त्र अलंकार उन आत्माएँ सब से भरपूर वसुदेव को अनादर की दृष्टि से देखते हुए तूने अपने ही हाथों से घर आई लक्ष्मी को धक्का दे दिया ॥ ५३१ ॥

पुरुषान्तरसघर्षात्प्रोत्सादितचित्तवृत्तिरनपेक्षम् ।

वसु विस्तृति यो रभसात्तस्य न वार्ता त्वया पृष्ठा ॥ ५३४ ॥

अन्य कामुक पुरुष का स्पृहा हाँड में अतिशय उत्साह उत्पाने वाले तथा किसी की परमाह न करने वाले, एव जो तुरन्त धन देता है, ऐसे व्यक्ति की भी तूने बात नहा पूछी ॥ ५३४ ॥

चित्रादिकलाकुशल स्मरशास्त्रविचक्षणो वृषप्रकृति ।

उपकुर्वन्नपि सर्वो विद्वेषिगणेषु त्वया क्षिप्त ॥ ५३५ ॥

चित्र आदि आलेखन में कुशल, कामशास्त्र में निपुण, वृष जातीय नायक, सब प्रकार से उपकार करने वाले को भी तूने शत्रु बना लिया<sup>१</sup> ॥ ५३५ ॥

चन्द्रवतीमाभरण दत्त मधुसूदनस्य पुत्रेण ।

पश्यन्ती विभ्राणामपि रागिणि किं न ह्यताऽसि ॥ ५३६ ॥

एक कामुक की दी वस्तु को दूसरों को बताने के लिये कहती है—हे धन की लोभिनी । मधुसूदन के पुत्र से दिये आभूषण को पहने चन्द्रवती को देख कर तू क्यों लज्जित होती है ॥ ५३६ ॥

ग्रामोत्पत्तिरश्लेषा प्रविशन्ती सिंहराजविनियोगात् ।

मन्मथसेनावास लक्षयति ते रूपसौभाग्यम् ॥ ५३७ ॥

ग्रामस्वामी सिंहराज के कारण ही ग्राम की सम्पूर्ण सम्पत्ति घर में आने से, मन्मथ सेना का आवास यह तेरा रूप ही तेरे सौभाग्य को कम कर रहा है—तेरे रूप के कारण ही तेरा सौभाग्य है, तुम्हें सिंहराज को सम्पत्ति करने से ही यह सारा घर धन जाय से भरा है ॥ ५३७ ॥

१ उपकारपरो नि य जीवश श्लेषमलस्तथा ।  
दृशगुणशरीरश्च धीमान् धीरा वृषा मत ॥  
धपति वीय इति च वृष कामुक ।

श्राम्तामपरो लाभो भट्टाधिपनन्दिसेनतनयेन ।

शिवदेव्या उपचारः क्रियते यस्तेन पर्याप्तम् ॥ ५३८ ॥

महाधिप नन्दसेन के पुत्र से भले ही दूसरा कोई भी लाभ न हो, उसने शिवदेवी की जो सेवा की वही बहुत है ॥ ५३८ ॥

पर्येदं धवलगृहं पाशुपताचार्यभावशुद्धेन ।

कारितमनंगदेव्या विभूषणं पत्तनन्य सकलस्य ॥ ५३९ ॥

पाशुपताचार्य भाग शुद्ध अनंग देवी से बनवाये, इस सीधे धवल गृह की देर, यह सारे नगर का आभूषण है। ( भाव-परिष्ठितार्थ सूचनमानन्द उपाधि है ) ॥ ५३९ ॥

आषणिकार्थस्य युतां राजा लभते चतुर्थमपि भगाम् ।

हृत्पतिरामसेनप्रसादतो नर्मदा यमुपमुंक्ते ॥ ५४० ॥

बाजार में बिक्री के लिये आई वस्तुओं के मूल्य का चौथाई भाग राजा कैसे प्राप्त कर सकता है, जब कि बाजार के मालिक रामसेन के अनुग्रह से नर्मदा उसका उपभोग करती है। ( सब भाग रामसेन स्वयं ही रख लेता है और फिर नर्मदा के लिये रक्ष करता है ) ॥ ५४० ॥

पुंस्त्वास्यापनकामो न स्त्री न पुमान्किल प्रभुस्वामी ।

अनुबन्धन्नुपहसितस्त्वया जडे स्वार्थमनपेक्ष्य ॥ ५४१ ॥

प्रभुस्वामी न पुरुष और न स्त्री है, नपुंसक होने से वेश्याओं में अपना पुस्त्र दिवाने की इच्छा से प्रयत्न करता है, ऐसा कहकर; हे मूर्ख ! तुने स्वार्थ का परदाह न करके उसकी मज़ाक की ॥ ५४१ ॥

वाजीकरणैकमतिर्नरनाथानुग्रहेण विख्यातः ।

प्रत्याख्यातः स तथा रविदेवः शिबरत्नमासांक्षन् ॥ ५४२ ॥

वाजीकरण श्रोत्रियों के प्रयोग में लगा, राजा का मित्रराज; रविदेव तेरी दासता चाहता हुआ भी तुने लीज दिया ॥ ५४२ ॥

किं कन्दर्पकुटुम्बे जानोऽसापुत यशस्विणयोगम् ।

जानाति कमपि सिद्धं येनाष्टप्राप्ति सर्वभावेन ॥ ५४३ ॥

क्या यह कामदेव के कुटुम्ब में उत्पन्न हुआ है अथवा क्या कोई सिद्ध पद्योग्य योग यह जानना है, जिसमें कि सम्पूर्ण रूप से उसकी और प्राप्त हुई है ॥ ५४३ ॥

१. वाजीकरण—येन शरीरु सान्धर्वं वाशिष्ठमभते नरः ।

येन वाग्धधिक बीरं वाजीकरणमेव तत् ॥ पारु. वि. घ. ९.

बाल्ये तात्रदयोग्या पश्चादपि वृद्धभावपरिभूता ।

तारुण्ये रागहृता यदि गणिका भ्रमतु तद्विज्ञाम् ॥ ५४४ ॥

बाल्यावस्था में अपक्ववयस्कता के कारण हम सभोग के अयोग्य हैं, वृद्धावस्था में अति वृद्ध होने से अतिपक्ववयस्का होने से सभोग के अयोग्य रहती हैं । यौवनावस्था में यदि गणिका अनुराग स्नेह के कारण एक ही के परवश हो जायें तो वह सारी जिदगी भिक्षापात्र लेकर ही घूमा करे ॥ ५४४ ॥

उपनय भाण्डकमेतद्यदजित मामकेन देहेन ।

विदधामि तीर्थयात्रामास्त्र सुख प्रेयसा साधम् ॥ ५४५ ॥

( अन्त कुलकम् )

मेरे अपने शरीर को बेचकर कमाये हुए धन का भरा पत्र ला, मैं तीर्थ यात्रा करूँ ( जिससे पाप धुल जायें ), तू अपने प्रीतिपात्र कामुक के साथ आनन्द से रह ॥ ५४५ ॥

आर्यजननिन्दिताना पापैकरसप्रधाननारीणाम् ।

एतावानेव गुणो यदभीप्समागमो निरावरण ॥ ५४६ ॥

सज्जनों से निन्दित, पाप में ही लगी स्त्रिया का एक यही गुण है, कि उनका इच्छित पुरुष के साथ समागम बिना किसी प्रतिबन्ध के होता है ॥ ५४६ ॥

नो धनलाभो लाभो लाभ खलु बल्लभेन सयोग ।

अक्षिगतादर्थाप्तिर्न भवति मनस प्रसादाय ॥ ५४७ ॥

धन का लाभ कोई लाभ नहीं प्रिय के साथ मिलाने यही मन्वा लाभ है । स्नेह रहित द्वेष्य पुरुष से मिला बहुत धन भी मनका प्रसन्न नहीं करता, ( प्रीतिपात्र से मिला थाड़ा धन भी आत्मा को प्रसन्न करता है । द्वेष्ये त्व द्धिगत — इत्यमर ) ॥ ५४७ ॥

गाढानुरागभिन्न तारुण्यरसामृतेन ससिक्तम् ।

न भवति सहृदयहृदय विभयार्त्तनसम्भवा चिन्ता ॥ ५४८ ॥

हृद स्नेह से विकसित, अमृता रूपी तारुण्य रस यौवन रस से सिञ्चित, सहृदय तरुणजनना के हृदय में धन कमाने आदि का चिन्ता नहीं होती, धन कमाने की चिन्ता से परेशान नहीं होत ॥ ५४८ ॥

लाभ स एव परम पर्याप्त तेन वृत्ताऽस्मि ।

विनिवेशय यदुत्सगे निक्षिपति मुखे मुग्धेन ताम्बूलम् ॥ ५४९ ॥

गोदी में बिठाकर वह अपने मुख से मेरे मुख में जो पान देता है, यही मेरे लिये सजसे मया लाभ है मुझ इतना हा चाहिये, मैं इसके पूर्ण सजुष्ट हूँ ॥५४८॥

सुरतश्रमवारिकस्थान् परिमाष्टि निनाशुकेन गात्रेषु ।

यदुरसि निघाय त्रिहसस्तस्य न मूल्य वसुधरा सकला ॥ ५४९ ॥

छाती पर लगाकर हँसते हुए अपने वस्त्र के प्रान्त द्वारा सम्भोगजन्य श्रम के स्वेद बिन्दुओं को मेरे शरीर से जा पोंछता है, उसका मूल्य सारी पृथ्वी भी नहीं है, अनमोल है ॥ ५४९ ॥

शिथिलितनिन्दाररतिर्मयि सत्तमना अनन्यकर्तव्य ।

यत्सौ चित्तनलरूपन्तिरस्कृत तेन गाणिक्यम् ॥ ५५० ॥

मेरे में मन लगने पर अपनी रजा को भी भूला कर मुझ प्रसन्न करने में हा मया लगा, अपने रूप से नल का भी जानने वाले, इस पुरुष के कारण मैंने वश्यापन भी भूला लिया ॥ ५५० ॥

बहुमुमुक्षुमरसाद्याद कुत्राणा मधुरी त्रिधिनियोगात् ।

इहप्रसन्नप्रशेष लभते यलुचन भवति कृतकृत्या ॥ ५५१ ॥

बहुत से फूलों के रस का आस्वाद न करता हुई भ्रमरा भाग्य के कारण ऐसे फूल निशय का पाता है, जिससे कि वह धन्य-कृतकृत्य हो जाता है ॥५५१॥

अयि सरले तावदिमा उपदेशगिरो वसन्ति कर्णान्त ।

यायन्नान्तर्भूत तच्चेतसि मामक चेत ॥ ५५२ ॥

हे सरले ! ये सब उपदेश तथा तर्क काना के अन्दर रहते हैं, जगतक नेत्र चित्त उसके चित्त के अन्दर विलीन नहीं होता, उसने चित्त से मिलकर मेरा चित्त एक नहीं बनता ॥ ५५२ ॥

श्रीरम्तु दुर्गतिर्वा, वेरमनि चासौ भवत्स्वरण्ये वा ।

स्यलोने नरपे वा, कि बहुना, तेन मे सार्थम् ॥ ५५४ ॥

प्रेमा के साथ रहने पर मुझे लक्ष्मी मिले या मेरी दुर्गति हो, घर में निवास मिले या जगल में पत्थर मिल, स्वर्ग मिल या नरक मिले, इसकी मुझ काद चिन्ता नहीं ॥ ५५४ ॥

१. वृषाहसामा द्वि पतिप्रसाद्—विप्रमाकृदेवचरित १०।३८

प्रभुपति मुक्तमपे सुपतीता चैव सगमे विरमे ।

विश्वरात्रसभायां सायल या न खादेभ पय ॥

२. अमितवद्रेच्छिहान्वा कृच्छपति यान्ता प्रमेय धर्मांगन ।

उपामपपितु नमिता कुमुमाखधनुवतव मधु ॥ धार्यासहस्यो-१९

इदमास्तेऽलकरणं दुर्जननि गृहाण त्रिं ममैतेन ।

तेनैव भूपिताऽहं गुणनिधिना भट्टपुत्रेण ॥ ५५५ ॥

हे कुमाता ! ये रक्ते हैं आभूषण ! सम्भाल, मुझको इनसे क्या प्रयोजन !  
मैं तो उसी गुणवान भट्टपुत्र से शाश्वत हूँ, वही मरा आभूषण है ॥५५५॥

उचितस्थाननियुक्तान्यपनीय विभूषणानि सावेगम् ।

एवमभिधाय यास्यसि मानु पुरत समुत्सृज्य ॥ ५५६ ॥

इस प्रकार कहकर, योग्यस्थानों पर धारण किये आभूषणों को गुस्ते से उतार  
कर, माता के सामने पेंककर निरल पड़ेगा—दूर हो जायेगी ॥ ५५६ ॥

इति रागान्ध श्रुत्वा चेतसि धुग्ते कदाचिदेवमिदम् ।

स्नेहाधिष्ठितमनसामविधेयं नास्ति नारीणाम् ॥ ५५७ ॥

प्रम में पागल हुआ—ऐसा मुनकर कदाचित् मन म यह सोचने लगे कि  
स्नेहवती स्त्रियों के लिये कुछ भी अस्वीकार्य नहीं है ॥ ५५७ ॥

जननीं जन्मस्थानं वान्धयलोकं वसूनि जीव च ।

पुरपविशेषासक्ता सीमन्तिन्यसृष्ट्याय मन्यन्ते ॥ ५५८ ॥

पुरुष विशेष में आसक्त स्त्रियों माता, जन्मभूमि, सम्बन्धी जनों को, प्राणों  
को और शरीर को तृण की भाँति तुच्छ गिनती हैं ॥५५८॥

रणेशिरसि हते वशे वशोपमयन्त्रनिर्गतप्रावृणा ।

प्राणान्मुमोच गणिका न मन्त्रविधिना हता नाम ॥ ५५९ ॥

बुद्ध में शिर पर वज्र लगने के कारण प्रमी की मृत्यु होने पर हता नामक  
वश्या ने गोपण से पके वज्र के समान कठोर पथर से प्राणों का त्याग कर  
लिया था, किसी मन्त्र विधि से—वशीकरण मन्त्र से वश में होकर प्राण नहीं

छोड़े थे केवल स्नेह वश ही प्राण छोड़े थे ॥ ५५९ ॥

कालवशोनायासीत् पचत्व दाक्षिणात्यमणिकठ ।

प्रेमोपगता वेश्या तेनैव समजगाम भस्मत्वम् ॥ ५६० ॥

दक्षिण देश के मणिकठ के कालवश से मर जाने पर उसके प्रम में पागल  
बनी वेश्या भी उसके साथ ही जल गई ॥ ५६० ॥

भास्करवर्मणि याते सुरवसतिं वारिताऽपि भूपतिना ।

तद्दुःखमसहमाना प्रविवेश विलासिनी दहनम् ॥ ५६१ ॥

भास्करवर्मा के स्वर्ग चले जाने पर उसके दुःख का सहन न करके, राजा  
के मना करने पर भी विलासिनी अग्नि में जल गई ॥ ५६१ ॥

१ विक्रमाक देवचरित में—

मरणमपि तृण समर्थयन्ते मनसिजपौहयवासितास्तद्वय - ६।१३

ज्वालाकरालहुतभुजि नग्नाचार्यः पपात नरसिंहः ।

तस्मिन्नेव शरीरं निजमजुहोच्छ्रोकपीडिता दासी ॥ ५६२ ॥

नग्राचार्य नरसिंह अग्नि की तीव्र ज्वालाओं में गिर पड़ा था, उसी अग्नि में शोक से पीडित दासी ने अपने शरीर को भी डाल दिया ॥ ५६२ ॥

प्रीतिभराक्रान्तमतिस्त्रिदशालयजीविनां त्रमोपगताम् ।

अंगोचकार मुक्त्वा कदम्बका भट्टविष्णुमानृत्योः ॥ ५६३ ॥

कई पोटियां से वशपरम्परा में प्राप्त स्वर्ग के समान ऐश्वर्य्य को छोड़कर केवल प्रेम के कारण ही, कदम्बका ने भट्ट विष्णु का साथ मृत्युपर्यन्त निभाया, स्वीकार किया, निर्धन जीवन मिताया ॥ ५६३ ॥

देशान्तरादुपेता प्रसादमात्रेण वीक्षिता धनिता ।

तत्याज न पादयुग समरे निहतम्य वामदेवस्य ॥ ५६४ ॥

वामदेव के प्यार भरो दृष्टि के देखने मान से ही अनुत्पन्न नर्ती रानी दूर देश से उसने साथ चली आई । युद्ध में वामदेव के मरने पर भी उसने पैरों को पसंडकर बैठ गई ॥ ५६४ ॥

भट्टकदम्बकतनये याते वसति परेतनाथस्य ।

चक्रे देहत्यागं रणदेवी धारयोपिता मुरया ॥ ५६५ ॥

भट्ट कदम्ब के पुत्र के मर जाने पर, वेश्याओं में श्रेष्ठ रणदेवी ने अपना शरीर भी छोड़ दिया ॥ ५६५ ॥

अस्यामेव नगर्यां त्रिणामदात् कालसंचितमशेषम् ।

भ्रैन्त्याऽऽकृष्टा गणिका मिश्रात्मजनीलकण्ठाय ॥ ५६६ ॥

इसी बायाणसी में बहुत समय से इकट्ठे किये सम्पूर्ण धन को प्रेम से लौची वेश्या ने मिश्र के पुत्र नीलकण्ठ को दे दिया था ॥ ५६६ ॥

इयमापि मयि विहितास्था मातृवचकल्पिता गता क्वापि ।

त्यक्त्वाऽऽभरणं सर्वं प्रविजृम्भितमन्युसवेगा ॥ ५६७ ॥

माता के वचनों से दुःखी, सम्पूर्ण आभूषणों का त्याग करके, मोघ में पागल होकर मेरे में विश्वास रखकर वहीं चली गई ॥ ५६७ ॥

उत्सृष्टालंकरणं परिशोपितमातृमुत्तपरिवाराम् ।

सतपयांमि सम्प्रति सर्वस्येनापि हरिणाक्षीम् ॥ ५६८ ॥

सब आभूषणों का परित्याग करके, माता, दासी आदि सम्बन्धी जनों को छोड़कर निरुली हुई इस चण्डल औरिणी वाली की अपने सर्वस्व को बाजी लगाकर भी रक्षा (सुख) करेगा ॥ ५६८ ॥

गेहेन किं प्रयोजनमन्यैरपि बन्धुदारपरिवारैः ।

ससारग्रहकारणमेका खलु मालती मम हि ॥ ५६६ ॥

मुझे घर से क्या मतलब, दूसरे बन्धु स्त्री-सम्बन्धी जनों से भी कुछ काम नहीं । मेरे लिये तो ससार में रहने का अनेका कारण मालती ही है, उसीके कारण जीता हूँ ॥ ५६६ ॥

अमृतकरावयवैरिव घटिता या दृढतर परिष्वक्ता ।

चेतो नयति समत्व ब्रह्मण आनन्दरूपस्य ॥ ५७० ॥

मालती के अवयव चन्द्रमा की किरणों से बने हुए हैं, जिनका गाढ़ आलिंगन मनको ब्रह्मानन्द प्राप्ति का आनन्द देता है ॥ ५७० ॥

आविर्भवदात्मभवक्षोभक्षतधीरताघन रभसात् ।

विगलितकुचयुगलाघृतिरालिंगति मालती धन्यम् ॥ ५७१ ॥

काम की व्याकुलता से बेचैनी बनी-कामातुर स्तना की चोली को हटाकर मालती किसी भाग्यवान् का ही दृढ आलिंगन करती है ॥ ५७१ ॥

निर्दयतरौष्ठरण्डनसव्यथहुकारमूर्च्छित मुरते ।

अहहेति वचस्तस्या अपुण्यभाजो न शृण्वन्ति ॥ ५७२ ॥

सम्भोग के समय आवेश में किये निर्दय ओष्ठदश से उत्पन्न पीडा के साथ किये हुए मालती के हुँकार को अशुभ कर्म करने वाले नहीं सुन सकते ॥ ५७२ ॥

स्मृतिजन्मजनितविकृतिव्रततिच्छन्न करोति ससारम् ।

आबद्धमुरतसगरविमर्दसक्षोभिता दयिता ॥ ५७३ ॥

प्रवर्तित रतियुद्ध में अगा के निष्पीडन से बेचैन बनी प्रियतमा, काम से उत्पन्न नाना प्रकार की क्षोभ रूपी लताओं से ससार को ढाँप लेती है । मुरत काल जनित क्षोभ से रमणीय बनी प्रिया को देखने से कामुक को सारा संसार शृङ्गारमय ही दीखता है ॥ ५७३ ॥

१ कवि ने कहा भी है—

किं कौमुदी शशिकला सकला विचूर्ण्य सयोज्य चामृतरसेन पुन प्रयत्नात् ।  
कामस्य धोरहरहुवृत्तिदग्धमूर्त्ते संजीवनौषधिरिव विहिता विधात्रा ॥

(ख) पचदशी में—कुमारादिवदेवाय ब्रह्मानन्दैकतपर ।

स्त्रीपरिष्वक्तवद्वेद न बाह्य नापि चान्तरम् ॥ १११४४

(ग) एषथा प्रियया स्त्रिया सपरिष्वक्तो न बाह्य किंचन वेद मज्जरम्—

बृहद् ४।३।११

(घ) प्रज्ञानघन एवानन्दमय—माण्डू २

विज्ञानमानन्दमहा बृहद् उप ३।१।२८,



मादतराश्लिष्टवपुर्भजते कान्ता प्रमोदसम्मोहम् ।

शिथिलीकृता तु किञ्चिद्विधविकारं समुच्छसिति ॥ १७४ ॥

मादतर—अतिशय बल पूर्वक श्रालिंगित कान्ता आनन्द से बेहोश हो जाती है, श्रालिंगन के थोड़ा ढाला करने पर नाना प्रकार के विकारों को [ सचारी आदि भावों ( ग्लानि-श्लोष आदि ) को ] प्रगट करती है ॥१७४॥

सन्त्यन्या अपि सत्य पुरुषोचितकर्मपरिहता प्रमदा ।

सृष्टाऽनया तु नियतं विपरीतरतत्रियागोष्ठौ ॥ १७५ ॥

यह सत्य है कि पुरुषोचित कर्म में—विपरीत रति में परिहता—दूसरी स्त्रियों भी हैं, परन्तु विपरीत सम्भोग सम्बन्धी चर्चा का प्रारम्भ तो इसी मालती ने किया है; इसकी समझे गयी मालती परिहता ही है ॥१७५॥

तन्त्रीयाद्यविशेषान् प्रोद्दामानजन्मनस्तस्या ।

कुहरितरेचितकम्पितसम्पादननैपुणं करोति जडान् ॥ १७६ ॥

रतिकाल में प्रचण्ड कामदेव वाली मालती ने गले से निरली कीरिल ध्वनि, श्वास, कम्पन, आदि की निपुणता, वीणा बजाने वालों को भी नीचा दिखाती है, उनको भी मूर्ख बनाती है ॥१७६॥

ललितांगहारजृम्भितवलितस्मितवेषनानि मालत्याः ।

पश्चञ्जहाति कामो रतिमोहनचेष्टितेषु यदुमानम् ॥ १७७ ॥

मालती के श्रगौंजा सुन्दर चालन—हिलना चलाना, जम्भाई लेना, वलित—मुड़ना-नुटना, स्मित—सुसकराना, वेषन—दर्प रास क्रोध आदि से होने वाले कर्मा को देखकर कामदेव, अपनी पत्नी रति की चित्त हरने वाली चेष्टाओं को भी भूल जाता है, उनमें भी अधिक भ्रडा नहीं करता ॥१७७॥

न भ्राम्यं परिहसितं, नाविभ्रमतरलिताङ्घ्रिविह्वेपः ।

सुरतानुयोगविधौ दोहददानं न पुष्पनाणस्य ॥ १७८ ॥

मालती के हँसने में गँधारपन नहीं, उसका चंचल कटाक्ष विलास रहित नहीं। मालती की सम्भोग में कामकी प्रवृत्ति दोहद दान के बिना नहीं होती ॥१७८॥

१. पुरुषोचित—नायकरवानुमत्या वा स्वमतीपिक्याऽयवा ।

पुंस्त्वं स्त्री रमते रागान् पुरुषोचितमुच्यते ॥

२. ललित—सुदनाखवाऽग्रानो विन्यासो ललितं भवेत्, वलित—छास्यविशेष ।

३. दोहद—विशेष वृत्तों में पुष्प आदि संवृद्धि के लिये जो दान दिया जाता है,

यह दोहद दान है—यह दोहद दान दस वृत्तों के लिये प्रसिद्ध है, यथा—

खोषो स्वर्गाश्रियगुर्विदसति, यदुच्चः सोधुगणहूपमेकात्,

पादायातादयोऽस्तिवक्रवुरयदी योशयाङ्गिनाभ्याम् ।

नार्थपरो नयनरसो, न पराशयवेदने विचक्षणता ।

नासौष्टव प्रसंगे, न चान्यगुणकीर्तनेषु भारत्या ॥ ५७६ ॥

मालती की स्नेह भरी दृष्टि घन की लोभी नहीं, उसमें दूसरे के अभिप्राय को जानने की कुशलता नहीं, प्रसंग—समयोचित कार्य में असाष्टव नहीं, दूसरे के गुणों की प्रशंसा करने में उसकी वाणी में आभ्यपन नहीं ॥५७६॥

नापरपुरुषश्लाघा, न त्याग कालदेशवेपथ्य ।

वैदग्ध्यजन्मभूमेर्गुरुजघनभरेण मन्दयाताया ॥ ५८० ॥

( विशेषकम् )

मालती नायक का छोड़कर दूसरे पुरुष की प्रशंसा नहीं करती, कालोचित एवं देशोचित वेष का कभी त्याग नहीं करती, काल और देश के अनुसार आभूषण वेष आदि धारण करती है । विदग्धता चातुर्य का तो वह उत्पात्त स्थान ही है । भारा जघनों के भार से वह सग मन्द गति से चलता है, गजगाभिनी है<sup>१</sup> ॥५८०॥

चक्राह्वपरिष्वजन हससमाश्लेषनकुलपरिरम्भम् ।

पारावतावगूहनमाचरति सुमध्यमा यथावसरम् ॥ ५८१ ॥

नाना प्रकार के आलिंगन—शोभन मध्यम भाग ( नाभि प्रदेश से निचला उदर भाग ) वाली मालती समय को देखकर चक्रवाक के समान हस के समान, नेवले की भाँति एवं कबूतर के समान आलिंगन करती है<sup>२</sup> ॥५८१॥

तद्व्रथचनहास्यव्यवहृतिहतमानसस्य जायन्ते ।

अनुकूलसुन्दरा अपि भरणीया केवल दारा ॥ ५८२ ॥

मन्दारो नमंवाप्यात्, पट्टु मृदुहस । घग्गको धक्त्रवाणात् ,

चूतो गीतान्ममेदर्विकसति च पुरो नतंनान् कर्षिकारः ॥

१ भारी जघन—

किं धिन्नमत्र जघन परमुद्गहत्या मन्दीभवन्ति यदि ते गतयो वराणि ।

यद्वीक्ष्येऽपि गतपैर्यगुणा सुवानो, गन्तुं मनागपि पुनर्नहि शक्नुवन्ति ॥

२ चक्रवाक पक्षियों की भाँति—शरीर का परस्पर रगड़ना, हंसाखिगन—हंसों की भाँति छछग होना और फिर मिछना इस प्रकार बार-बार करना, नकुला खिगन—नकुल की भाँति जोर से पथ देर तक गाढ़ में बिठाना, यथा—योगवाशिष्ठ ( ६।१०६।१३-१४ ) में—

गच्छद्ग घनस्नेह मुद्यद्वाप रपुराण्टहम् ।

आङ्गिङ्गि चिर काम्नां नकुलो नकुलीमिव ॥

पारावत की भाँति आङ्गिगन—सामने से परस्पर मुख मिछाना ।

मालती की बक्रीकृतियों से, हास्य से, बचनों से, मुस्कुराते हुए निकले बचनों से प्रतारित ठगे-मन वाले पुरुष के लिये अनुकूल एवं सुन्दर स्त्रियों केवल पीप-णीय ही रहती हैं, उनको खाना कपड़ा ही मिलता रहता है (प्रेम नहीं) ॥५८२॥

सूचयति पृथक्करणं भ्रातृणां, वक्ति विपमशीलत्वम् ।

विवृणोति गृहविसंस्थामभिनन्दति पितृकुलाय गुणवत्ताम् ॥५८३॥

घर की पत्नी भाईयों से अलग होने को सिखा देती है, भाईयों के बुरे व्यवहार की शिकायत करती है, स्त्रियों के बीच में घर की दुर्व्यवस्था को कहती है, अपने पितृ कुल के बढप्पन का बखान करती है ॥५८३॥

अन्यसुतपत्न्यातं कथयति मातुस्तिरस्करोति पतिम् ।

पार्श्वनिमग्नां जायामानर्याति विमुच्यकार्मुकं मदनः ॥ ५८४ ॥

( युग्मम् )

ज्येष्ठ या देवर के पुत्र को अधिक स्नेह करनी की बात की शिकायत करती है, प्रसंग या अप्रसंग पर पति का तिरस्कार करता है, कामदेव अपने धनुष के बिना ही पार्श्व में लेटी पत्नी को अनुकूल कर देता है ( स्त्री को प्रेरित करने के लिये कामदेव को अपने धनुष की आवश्यकता नहीं होती ) ॥५८४॥

एवं कृतेऽपि सुन्दरी यदि तिष्ठति नायकः प्रकृत्यैव ।

इत्थं पथि परिमोपस्त्वत्सख्या नैपुणेन वक्तव्यः ॥ ५८५ ॥

हे सुन्दरि ! इतना मत्र करने पर भी यदि नायक अपने स्वाभाविक स्वभाव में बना रहे, तब, रास्ते में अपनी सखी के साथ, नायक को ठगने के लिये होशियारी से इस प्रकार बातचीत करनी चाहिये ॥५८५॥

गृहकार्यव्यप्रतया चित्तग्रहणाय वा कुलस्त्रीणाम् ।

नायाते भवन्ति, सखी प्रावृद्ध्यनकलुषिते दिशां चक्रे ॥ ५८६ ॥

घर के काम में व्यस्त होने से, अथवा कुलीन पत्नी के चित्त के प्रसन्न करने में सने-रहने पर, आप के न आने से हे सखि ! मेरे लिये तो सब श्रौर अन्वेष हो गया ॥५८६॥

प्रमीयकशायनगता स्फारीभवदात्मसम्भवविकारा ।

त्वद्वर्त्मनिहितनेत्रा गीतामन्येन गीतिकामशृणोत् ॥ ५८७ ॥

प्रासाद-महल में बिस्तर पर पड़ी मुझमें कामजन्य विकार के उत्पन्न होने से; आपके ही रास्ते में आँखें गड़ाये भूने; दूसरे से कहाँ यह गीतिका सुनी ॥५८७॥

यदि जीवितेन कृत्यं संभावय विरहिणि प्रियं तूर्णम् ।

घनरसितम्य हि पुरतः कदलीदलकोमलः कुलिशपातः ॥ ५८८ ॥

हे विरहिणि ! यदि तुमको जीने की चाह है, तो जल्दी से उसका अभिसरण करो उसके पास जाया । बादला की गड गडाइट के आगे, यज्ञ का गिरना भी बेले के पत्त के समान कोमल होता है<sup>१</sup> ॥५८८॥

आकर्ष्य मामवादीद्धन्यास्ता युवतय सखि कठोरा ।

या विपहन्ते दीर्घप्रियतमविरहानलासारम् ॥ ५८९ ॥

इसको मुनकर उसने मुझसे कहा, हे सखि ! जो कठोर हृदयवाली तरुणियाँ प्रियतम की विरहाग्नि के प्रसार को देर तक सहन करती हैं, व धय हैं, ( मैं तो आभागी हूँ )<sup>२</sup> ॥५८९॥

मम तु दिनान्तरितेऽपि प्रेयसि लब्ध्वा सहायसामग्रीम् ।

विद्धाति मकरवेतन लकलिकाविधुरित हृदयम् ॥ ५९० ॥

मरे लिये तो प्रियतम का एक टिन का भी व्यवधान पढ़ने पर कामदेव अपनी कामोद्दीपक सामग्री को लेकर मरे हृदय को उत्कृष्टित करने लगता है ॥५९०॥

उत्कण्ठयति नितान्त समीरणो वकुलकुसुमसन्नाह ।

प्रन्धावयन्ति धैर्यान्मधुरध्वनिभि कलापभृत ॥ ५९१ ॥

कामोद्दीपकसामग्री—मौलसरी व फूलों की गंध से मरी वायु अतिशय वेचैन करती है, मोरा की मीठी वाणी मेरे धैर्य को नष्ट कर देती है ॥५९१॥

सतडिन्मिलद्बलाकामसितान्धुधरावली समुद्यन्तीम् ।

उत्सहते सा वीक्षितुमविरलमालिगितो यया कान्त ॥ ५९२ ॥

जिन स्त्रिया ने अपने प्रियतम का निरन्तर गाढ आलिंगन किया हुआ होता है, वे स्त्रियाँ उठती हुई विद्युत वाली काले बादला की घनघोर घटा की ओर जाती हुई बलाकाओं को देखने के लिये उत्साहित होती हैं<sup>३</sup> ॥५९२॥

१ मघाजोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्ति चेत,

कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसस्थे ॥ मघदूत

विरहमविरह वा नानुरन्धन्ति मेघा सुखनमसुखिन वा सर्वमुत्कण्ठयन्ति ।  
शास्त्रामायण २-२८

२ अतसीपुष्पसकाश ख वीक्ष्य जलदागम ।

ये त्वद्योगेऽप जीवान् न तेषा विद्यते भयम् ॥

३ मेघदूत में—गर्भाधानक्षणपरिचया नूनमावद्धमाला

सेविष्यन्ते नयनसुभगा खे भवन्त बलाका ॥

मृच्छकटिक में—गर्जति सतडिद्बलाकशबलैर्मघैः सशक्य सन —॥५-१८॥

गजकदम्बकमचकमुच्चकैर्नमसि वीक्ष्य न्वाम्बुदमम्बरे ।

अभिससार न बल्लभमगता न चकमेचकमकरस रह ॥ माघ ९ ३६

स्वेच्छागमनलघुत्वं बहुलापार्यं निशासु पन्थानम् ।

न विचारयन्ति महिला अभीष्टजनसगताबुक्ता ॥ ५६३ ॥

बिना बुलाये अपने आप जाने में इल्कापन, रात्रि में मार्ग के विघ्नों को (साँप बिच्छू आदि के भय को) भी इच्छित पुरुष से मिलने के लिये वेचैन स्त्रियों नहीं सोचती ॥५६३॥

क्रियता भूपणशोभा त्वरयति मे मानसं मनोजन्मा ।

रञ्जयति मनो नितरा कलधीतनिवेशितं रत्नम् ॥ ५६४ ॥

आभूषणों से मेरे शरीर को अनङ्कित करो, कामदेव मेरे मन को वेचैन कर रहा है। सोने में लगा हुआ रत्न मन को नखस सौचता है (‘रत्न समागच्छतु काञ्चनेन’) ॥५६४॥

घनजलद्रावृतम्भुभि प्रदोषसमये प्रदोषगमनाय ।

विदधानया कुत्रुद्धि रागान्घे त्रिमिदमारुन्धम् ॥ ५६५ ॥

प्रेम में पागल बनी तूने, शिशाग्रों के जादलों से तिरा होने पर, रात्रि के समय, किसलन-कॉट आदि दोष युक्त रास्ते से जाने में कुत्रुद्धि से निवार करके यह क्या किया ॥५६५॥

वचनप्रपञ्चसार जायाश्रितमन्यदेशसम्बन्धम् ।

पुरुषमभिगन्तुनामा नवेयमभिसारिका दृष्टा ॥ ५६६ ॥

मिथ्या प्रिय बोलने वाले, पत्नी आश्रित, दूर रहने वाले (दूरपत्नी), पुरुष के लिये अभिसरणी करने वाली यह नई है अभिसारिका देखा ॥५६६॥

जलधीततिलरचना गलदम्भोलुलितशेखान्ताम् ।

तिम्यत्तनुलीनावृतिचण्डानिलसलिलपातरण्टस्ताम् ॥ ५६७ ॥

माथे पर लगाया तिलर पानी से धुल गया, गिरत हुए पाना से शिर क मुन्द्र जल उलफ गये, केश रचना निगड गडं, गीला होन से वस्त्र शरीर के साथ चिर गया, प्रचण्ड वायु एत पानी का बाह्यार से शरीर म सेनाच उत्पन्न हो गया ॥५६७॥

अधिर्भाषितसमविपमा प्रस्यलङ्घि सहायररलप्राम् ।

पुरतोऽध्वन प्रमाण मुहुमुहु साध्वसेन पृन्धन्ताम् ॥ ५६८ ॥

१. न पश्यति मर्शान्मसो ह्यर्था दोष न पश्यति ।

न पश्यति च जन्मान्ध कामान्धो नैव पश्यति ॥

२. अभिसारिका—

उरामनमयमहात्वरवेपमाना, रोमावकण्टाङ्गनाप्रघर्षा यदुन्नी ।

विशद्विनीयति या विपसनाय सा नायिका विगदिता त्वभिसारिकेति ॥

वषा के कारण ऊँची नीची जगह का भेद मिट जाने से बार-बार पैर फिसलने में सहायक का हाथ पकड़े हुए बार-बार बेचैनी से रास्ते की दूरी पूछती हुई कितना और चाकी है पूछती हुई जाती है ॥५६८॥

अन्यस्त्रीषु च पत्यौ व्यग्र कृच्छ्रेण कथमपि प्राप्ताम् ।

तत्कालयोग्यपरिजननिवेदितामिति विकल्पसदृशविधौ ॥ ५६९ ॥

किसी प्रकार कठिनाई से घर में पहुँचकर वह देखती है कि पति अपनी स्त्री में व्यग्र है, अपने अपने की सूचना अन्तःपुर में किस प्रकार से दी जाये, इस चिन्ता में यह परेशान है ॥५६९॥

किं प्रेम्णोऽय महिमा क्रिमुतानन्त्य धनप्रलोभस्य ।

किंवाऽन्यत प्रवृत्ता प्रवेपिता वातवर्षेण ॥ ६०० ॥

क्या यह प्रेम से खँचकर आई है, क्या बहुत अधिक धन की लालच में आई है, अथवा वायु और वषा से ताड़ित होकर यहाँ आ गई है ॥६००॥

“सन्निहितकलत्राणामनुचितमि” ति बाह्यलांकसवदनात् ।

अन्यस्मिन्नुदवसिते विसर्जितामिष्टमालतीकेन ॥ ६०१ ॥

नायक के एक स्त्री के पास में होने पर दूसरी स्त्री का नायक के पास जाना अनुचित है, ऐसी सामान्य जना की बात चीत मुनकर, मालती इच्छित कामुक के घर से निकल गई ॥६०१॥

लोकेन हास्यमाना विभ्राणा वाससी नलक्षिन्ने ।

रूपमदमुत्सृजन्ती वैलक्ष्याद्विहसितेन नतवदनाम् ॥ ६०२ ॥

वापिस जाती हुई मालती पर लोग विहँसने लगे, जल से भीगे बखों को धारण किये, रूप का मद् उतर जाने से, सफलता न मिलने के कारण लोगों के हँसने से लज्जित होकर मुख को नीचा किये मालती घर से निकली ॥६०२॥

पश्चात्तापगृहीता कष्टकदर्भाप्रभिन्नपादतलाम् ।

अममद्वच स्मरन्ती द्रव्यन्त्यभिसारिका सुकर्माण ॥ ६०३ ॥

पीछे मानसिक दुःख से दुःखी, काटे और दाम से क्षत निहत पैरों वाली, हमारी वहाँ बातों को यद करती हुई, ऐसी तुम्हें अभिसारिका को शुभकामा पुर्यात्मा मनुष्य ही देखेंगे ॥६०३॥

इति परपत्नीभिर्दधाना मातरमवधीर्य युष्मद्भ्याशम् ।

चौरहृतरा व्रन्ती विद्रावितरक्षिण सर्पा मुमुक्षु ॥ ६०४ ॥

( महाकुलकम् )

इस प्रकार स्त्रोत्र वचन बोलती हुई माता की भावना का न मानकर आपके पास आती हुई मखी मालती के आभूषण का लेकर-नाच चार-रङ्ग दूर भाग गये ॥६०४॥

एषा प्रपंचरचना यदि भवति वृथा पुरस्तस्य ।

वणिगिदमुपेत्य वक्ष्यति सहायसंचोदितो भवतीम् ॥ ६०५ ॥

यदि यह कपट रचना भी निराल निराल जाये, तब नायिका के सहायक चेरी आदि से सिपाया वणिग्-नायक सामने हो नायिका की कहेगा ॥६०५॥

“पूर्वं दत्तस्योपरिमुक्ताहारम्य केदरास्त्रिरान् ।

परिचारिक्या नीता अन्यानापि मृगयते वयस्यकृते ॥ ६०६ ॥

पहले गिस्वी रानी मुक्तामाला के ऊपर तीस केदार तुम्हारी दासी ला चुकी है, अब वह तुम्हारे धिय के लिये उस पर और भी मर्ग रही है ॥६०६॥

यत्तु घनसारकुङ्कुमचन्दनधूपादि मुक्तकं दत्तम् ।

वत्संपुटके लिखितं शृणु पिण्डलिकां करोमि ते पुरतः ॥ ६०७ ॥

तेरे लिये कपूर, नेसर, चन्दन, धूप आदि जो गुले हाथ से आज तक देता रहा हूँ, वह सब नदी में लिगा हुआ है, आज तेरे सामने उन सबको जोड़ता हूँ, सुनते ॥६०७॥

एतावन्तं कालं नावसरेऽभ्यर्थिता मया त्वमसि ।

रिक्तं भाण्टस्थानं सांप्रतमिति याचनं त्रिचते” ॥ ६०८ ॥

इतने समय तक मैंने आकस्मिक कार्य होने पर भी तुम से नहीं माँगा, अब तुम्हारा रत्ना सब घन समाप्त हो गया, इसलिये माँग रहा हूँ ॥६०८॥

एवं यादिनि तस्मिन्किञ्चिज्ज्ञानतेजस्यं दृष्ट्वा ।

प्रियपूर्वं प्रश्रितया वाचा वाच्यं सर्वलक्ष्यम् ॥ ६०९ ॥

वणिग् के इस प्रकार से रहने पर, तुम्हें लज्जा से आँख नीचा करने, देखते हुए, पहले से समान मरुत एव दीन वाणी से लज्जा के साथ रहना चाहिये ॥६०९॥

“हारस्तथैव तिष्ठतु मध्यस्वस्थापितेन मूल्यात् ।

शेषं ततो यदन्यत्तद्विप्रसै पूरयिष्यामि” ॥ ६१० ॥

मध्यस्थ व्यक्ति द्वारा तै लिये मूल्य से हार तुम ही रग ली। बाकी जो रहेगा उसको भी थोड़ा दिनों में दे दूंगा ॥६१०॥

इयमपि कपटप्रयत्ना पूर्वसमा चेतदेदमभिधेयम् ।

आरांफन्तेऽनिष्टं काररदृशना हि चोपितः प्रायः ॥ ६११ ॥

यदि यह भी कपट रचना पहले की भाँति व्यर्थ निराल जाये, तब कहना चाहिये, कि तुम्हें किमी अनिष्ट का भय है, क्योंकि प्रायः त्रिषो डरपोक होती है ॥६११॥

१. वचनं कृतसकलस्य नायकमक्ष दशमं कृतम्, येनाय नायकस्याः किमपि वष्टाद्विप्रमपि विद्वेनुनास्य इति प्रपञ्चति ॥ उपमगता टीका ।

अपदुशरीरे स्वामिनि विज्ञप्ता भगवती मया गत्वा ।

भवतु निरामयदेहो जीवितनाथस्तव प्रसादेन ॥ ६१२ ॥

मैंने स्वामिनी भगवता श्रम्यादेवी से प्रार्थना की है कि रोगग्रस्त मेरा प्रियतम आपके अनुग्रह से रोगमुक्त हो जाये ॥६१२॥

सपन्नवाञ्छितार्था वल्युपहारेण पूजयिष्यामि ।

सामप्रोविरहेण तु न वितीर्णं तत्र मे शका" ॥ ६१३ ॥

( विशेषकम् )

मनोरथ सिद्ध होने पर आपका बलि उपहार से पूजा करूँगी । परन्तु सामग्री न जुटने से वह पूजा अभीनहीं हुई, इसी का भय है कि वहाँ देवता कुछ अम गल न करें ॥६१३॥

अस्मिन् व्यर्थीभूते रिक्तीकृतशून्यवेश्मनो दाहम् ।

उत्पाद्य मन्दगामिनि 'सर्वविनाश प्रकाशमुन्नेय ॥ ६१४ ॥

यदि यह चाल भा व्यर्थ जाये, तो घर को खाली करके आग लगा दे । और धीमे धीमे शोक में चलते हुए सब कुछ नष्ट हो जाने का प्रचार करना चाहिये ॥६१४॥

स्निग्धत्वमल बुद्ध्या सहभोजनशयनवसनलिगेन ।

एभिरुपायद्वारै कान्तो रिक्तत्वया कार्य ॥ ६१५ ॥

एक साथ में भोजन, शयन, वस्त्र आदि से अतिशय उत्पन्न स्नेह जानकर (वश में हुआ जान कर) बताये हुए इन उपायों से तुम्हें प्रियजन को भीतरमँगा बना देना चाहिये ॥६१५॥

वार्धुपिपकदर्शनया भोगध्वसात् सहायवचनैर्वा ।

अवधारितेऽपि निपुण वरगात्रि विलुप्तसारत्वे ॥ ६१६ ॥

परुपवचोनिर्धारणमायत्यामाहितोपघातीति ।

यत्रादमी विवेया गम्यस्य विमोक्षणोपाया ॥ ६१७ ॥

( युग्मम् )

हे शोभनगात्रि । सम्पूर्ण धन निचाड लेने का दिश्रास होने पर भी वृद्धायस्या की पीड़ा से, ग्यान यान-वस्त्र आदि की कठिनाई से, अथवा चेन्गी आदि सहायकों के कहने से भी यदि वह घर का न छोड़े तब-यह समझकर कि फटोर बचन कहना पाल्य से हानिनाशक हाता है, इसलिये उससे छूटने के लिये कामुर्ग को निकालन व नित्ये व उपाय बरतन चाहिये ॥६१६-६१७॥



पृथगासननिर्देशः, प्रत्युत्थानादिकेऽपि शीथिल्यम् ।

सामूयसोपहासा आलापाः मर्मवेधि परिहसितम् ॥ ६१८ ॥

अग्ने से अलग आसन पर विठाने-दूर रखे, उसके प्रति आदर दिवाने में शिथिलता बरते, निन्दा एवं उपहास करते हुए बातचीत करे, उसके दिल को दुःखाने वाला हास्य करे ॥६१८॥

तद्व्यतिपत्तशलाघा, तदधिकगुणरामकीर्तनावृत्तिः ।

वदति प्रियमाभीक्ष्यं बहुप्रलापित्वद्रूपणाख्यानम् ॥ ६१९ ॥

उसके प्रतिपत्ती शत्रु की प्रशंसा करे, कानुक से अधिक गुणों एवं स्नेह का बार-बार वर्णन करे, अनेक बार मोठो बात करने पर वाचालता का दोष निकाले ॥६१९॥

वचनान्तरोपघातस्तद्व्यस्तुतसंकथासमाज्ञेपः ।

तद्व्यवहारजुगुप्सा, सव्यपदेशस्तदन्तिकृत्यागः ॥ ६२० ॥

यदि कामुक कोई बात प्रारम्भ करे तो दूसरे प्रसंग की बात लाकर उसकी बात में नित्र पैदा करे । उसके व्यवहार में घृणा दिवाये, कोई बहाना करके उसके पास से हटक जाये ॥६२०॥

### १. विरभ नायिका के लक्षण—

परपम्पमिमुखं नैव संयोगेज्जीव सीदति ।

असौम्यनेत्रवेदना, स्पृष्टाऽङ्गं निधुनोति च ॥१॥

करोत्युष्ण कपामंगं, पृष्टा वदति तिष्ठाम् ।

नान्पसखा करोतीर्ज्या, लम्मानानं च नेत्र्युति ॥२॥

अस्थाने कुपते रोप, वदनं नाहिं सुम्बिता ।

यराङ्गं द्वादयेत्सपदो, रते वलेदुमुपैति न ॥३॥

रोते पराङ्मुखी पूर्वं पश्चादुत्तिष्ठते ध्रुवम् ।

वृत्तं न मन्यते द्विद्विन् दुष्कृतं च प्रयुज्यति ॥४॥

विश्रंपवचनं सति दोषान् वन्ति मस्योपुतः ।

व्यसने मुहमाप्नोति प्रवामे तु प्रहृष्यति ॥५॥

अभिप्रायनुने दीति विश्रै ह्येत्पमुदेत्सपदम् ।

विरभा लक्षरीरमिदंभ्या योरिद् विचक्षणैः ॥६॥

पराङ्मुखी वा क्षपनं करोति तनेति पीडां मुते स्पृष्टीहम् ।

निन्दारयं कुप्यति गर्वदुग्ध विरभभासा वनिता मया सा ॥७॥

व्याजेन कालहरणं, स्वापावसरे विवर्तनं शयने ।

निद्राभिभवल्यापनमुद्वेगं सम्मुखीकरणे ॥ ६२१ ॥

किसी बहाने से सम्भोग या उसके पास जाने के समय को निकाल दे, माथ में सोने पर मुख फेर कर सोये । यदि वह हठ से अपना मुख सामने करे तो नींद का बहाना करे, नींद की वेचैनी बताये—नींद आ रही है ऐसा कहे ॥६२१॥

गुह्यस्पर्शनिरोधः, स्वभावसंस्थापनाऽनुयोगेषु ।

चुम्बति वदनविकम्पनमालिगति कठिनगात्रसंकोचः ॥ ६२२ ॥

गुह्य भाग के स्पर्श करने में बाधा करे, राजी गुशी पूछने में कहे कि तुम कौन होते हो पूछने वाले, तुम्हारा क्या मतलब मेरी तन्दरुस्ती से, चुम्बन लेने में मुख को हिलाये—बुम्बन नहीं लेने दे, आलिंगन करने लगे तो शरीर को कठिन बना ले और सकुचित कर ले ॥६२२॥

असहिष्णुत्व प्रहरणकररुहदशनक्षतिप्रसंगेषु ।

दीर्घरतौ निर्वेदः, स्वपिहीति रताभियोजके भूयः ॥ ६२३ ॥

नायक द्वारा ताडन, नलाघात, दश आदि करने के समय में असहिष्णुता दिखाये, लम्बे सम्भोग में ग्लानि या उदासीनता बरते, पुनः सम्भोग प्रारंभ करने में सो जाओ, ऐसा कहना—सोने के लिये कहना ॥६२३॥

तदशक्तावनुबन्धो, वैदग्ध्यविकासने तथा हासः ।

रात्र्यवसानस्पृहया पुन पुनर्यामिकप्रश्नः ॥ ६२४ ॥

नायक के सम्भोग में अशक्त होने पर उससे सम्भोग के लिये आग्रह करना या उसमें दोष बताना, कामुक के चतुरता दिखाने में हँसी करना, रात जल्दी समाप्त हो जाये, इसकी चाह करना, बार-बार पहरेदार से पूछना कि अब क्या समय, कितनी रात बार्का है ॥६२४॥

निःसरणं वासगृहादुपसि समुत्थाय तल्पतन्त्वरया ।

सरभसमुदीरयन्त्या निशा प्रभाता प्रभातेति ॥ ६२५ ॥

प्रातःकाल होने पर निस्तर से जल्दी में उठ कर सबेर हो गया, सबेर हो गया, जोर से कहते हुए घर से निरल जाना ॥६२५॥

उभयेन्द्रया प्रवृत्तं निरुपाधि प्रेम भवति रमणम् ।

अन्योन्यसमासक्तौ संस्थानमिवाभिजातमणिहेम्नोः ॥ ६२६ ॥

दिना किमी कपट के नैमर्गिक स्वाभाविक, दोनों की इच्छा से प्रवृत्त प्रेम रमणीय होता है, जो प्रेम नायक और नायिका दोनों में भली प्रकार रहता है, वही प्रेम उत्तम बुलोट्पन्न मणि और स्वर्ण के सयोग की भाँति निरङ्कुर होता (निर्दोष) है ॥६२६॥

यत्त्वेकाश्रयरागः परिभयदौर्बल्यदैन्यनाशानाम् ।

स निदानमसन्दिग्धं सीतां प्रति दशमुत्तस्येव ॥ ६२७ ॥

जो प्रेम एक के आश्रित रहता है; वह बिना सन्देह के परिभय-तिरस्कार, निर्मलता, दोनता और नाश का कारण बनता है, जैसे कि रावण का प्रेम सीता के प्रति एकतरफा था ॥६२७॥

यानि हरन्ति मनांसि स्मितजल्पितवीक्षितानि रक्तानाम् ।

तान्येव विरक्तानां प्रतिभान्ति विवर्तितानीव ॥ ६२८ ॥

अनुरक्त पुरुषों में मुस्कराना, बातचीत, देखना आदि जो भाव मन को हरते हैं, वे ही मुस्कराना, बातचीत आदि भाव निरक्त मनुष्यों में प्रतिकूल-बदले हुए दीखते हैं ॥६२८॥

विदध्नातु किमपि, कथमपि निगृह्यमाणा मुहूर्तमासिष्ये ।

इति यत्र मनः स्त्रीणां रमन्त एव तत्र पशुतुल्याः ॥ ६२९ ॥

किसी प्रकार पकड़ी हुई मुझसे कुछ भी करे, ज्ञान भर के लिये सब सह लूँगी। इस प्रकार का खियों का जहाँ मन होता है, वहाँ पर भी पशुतुल्य मनुष्य रमण करते ही हैं ॥६२९॥

यत्र न मदनविकाराः सद्भावसमर्पणं न गात्राणाम् ।

तस्मिन्मुद्रितभावे पशुकर्मणि पशव एव रज्यन्ते ॥ ६३० ॥

जहाँ पर सम्भोग में रति इच्छा सूचक विकार-श्लोष्ठ स्वरुण आदि नहीं, प्रीति पूर्वक श्रमों का समर्पण नहीं, इस प्रकार के अविकसित काम विकार वाले पशुकर्म-सम्भोग में पशु ही रस लेते हैं ॥६३०॥

अवधोरणयोपहतः प्रतिदिवसं हीयमानसद्भावः ।

अभिमानवान् मनुष्यो योपितमूढामपि त्यजति ॥ ६३१ ॥

निरन्तर तिरस्कार मिलने से, आत्मसम्मान के नष्ट होने पर, स्वाभिमानी मनुष्य श्रमनी विवाहित पत्नी को भी छोड़ देता है ॥६३१॥

### १. मदनविकार—

धोष्टाप्रं स्फुरतीक्ष्णो विचक्षणः कृपोदरे मस्यवद्,

धम्मिपक्षः कुमुमाश्रिता विगजितः प्राप्नोति ब-ध पुनः ।

प्रक्षुभी मज्जतः स्तनी प्रदृष्ट्यां शोणीवटं दरपते,

भीरां च स्तजति सिधत्तारि मुह्य कामेद्रित घोषिकाम् ॥

इतिरहस्य ४।१६०

सात्त्वनिकोच सख्या पाणिनल पाणिना समाहृत्य ।

यन्तरमुपहमति स्त्री ददातु तस्मै मही रन्ध्रम् ॥ ६३२ ॥

श्रीख मटका कर अपनी सखी के हाथ पर ताली देते हुए जिस मनुष्य पर स्त्री हँसती हो, उस पुरुष के लिये तो भूमि में समा जाना ही अच्छा है ॥६३२॥

पुरुषान्तरगुणकीर्तनमन्योद्देशेन चात्मनो निन्दाम् ।

शृण्वन्नपि य स्वस्थ स्वस्थोऽसौ कालपाशबद्धोऽपि ॥ ६३३ ॥

जो मनुष्य दूसरे पुरुष के गुणों की स्तुति तथा दूसरे के बहाने अपनी निन्दा सुनकर भी निश्चिन्त होकर जीता है, वह यम के पाशों से बंधा होने पर निर्भय है —उत्ते मृत्यु का भी भय नही ॥६३३॥

अवगम्याभिप्राय स्वामिन्या परिजनोऽपि य पुरुषम् ।

अवसहति तिरस्कार्यं तस्य न मूल्यं वराटिका पच ॥ ६३४ ॥

अपनी मालकिन का अभिप्राय जानकर भय नौकर चाकर भी जिस पुरुष पर तिरस्कार भरी दृष्टि से हँसते हैं, ऐसे पुरुष का मूल्य पाँच कौड़ी भी नहीं ॥६३४॥

तत्त्वातत्त्वसमुत्थव्यवहृत्योर्योऽन्तर न जानाति ।

स्थान भवति स पशुपतिरपसशयमर्धचन्द्रलाभस्य ॥ ६३५ ॥

जो मनुष्य तत्त्व-वास्तविक, अतत्त्व अज्ञानविक कपटमय, व्यवहार या क्रियाओं एवं वचनों का भेद नहीं समझ सकता, वह पशुपति मूढ गलहत्या देकर निकालने योग्य है । (पशुपति महादेव के सिर पर अर्ध चन्द्रमा है, उसी प्रकार यह भी पशुपति अर्धचन्द्र देकर निकालने योग्य है) ॥६३५॥

क्रमगलितगौरवाशो रिक्ततया लाघव परापतित ।

अप्राप्तपरिच्छेद प्लवतेऽसौ युवतिसरिति कुमनुष्य ॥ ६३६ ॥

क्रमशः गौरव-अभिमान के कम हो जाने से, खाली होने से हल्कापन आ जाने पर सहारा न मिलने पर कुत्सित मनुष्य युवती रूपी नदी में तैरता है ॥६३६॥

यत्नेन कपटघटिता शृंगारोद्दीपनार्थमनुभावान् ।

रतिशिल्पजीविकाभिर्मूढास्तत्त्वेन गृह्णन्ति ॥ ६३७ ॥

सभोग फला में ही जिनकी जीविका है, ऐसी वेश्यायें, शृंगार-काम को उद्दीप्त करने के लिये, कोशिश के साथ झूठे बनावटी रिक्त शिल्प, भ्रूतिपेप क्लृप्त आदि अनुभाषा को करती हैं, मूर्ख आदमी इनका वास्तविक समझते हैं ॥६३७॥

या धनहार्या नार्यो निर्भर्यादाः स्वकार्यतात्पर्याः ।

सह ताभिरपीहन्ते घत मन्दाः संगतभजयम् ॥ ६३८ ॥

जो स्त्रिया केवल धन से बर मे की जा सकती है, उल्लिखित आचार-  
नियमशाली, अपने मतलब के ही सिद्ध करने में लगी है, ऐसी वेश्याओं के  
साथ मूढ मनुष्य ही कभी न टूटने वाली संगति चाहते हैं ॥६३८॥

अपरोक्षघनो गम्यः श्रीमानपि नान्यथेति निर्दिष्टम् ।

कन्दर्पशास्त्रकारैः, कुत कथा लुप्रविभवस्य ॥ ६३९ ॥

कामशास्त्र के बनाने वालों ने प्रथम दाता तुगन्त वन देने वाला पुरुष  
वेश्याओं के लिये सेवनीय रहा है, परन्तु ऐश्वर्यवान् भी तुगन्त न देने वाला  
असेवनीय कहा है। जिसका धन नष्ट हो चुका है, उससे तो कोई बात ही  
नहीं ॥६३९॥

व्यासमुनिनाऽपि गीतो द्वावेव नराधमौ लोके ।

योऽनाद्यः कामयते दुष्यति यश्चाप्रभुत्पयुक्तोऽपि ॥ ६४० ॥

व्यासमुनि ने भी लोक में दो ही मनुष्य समझे अरुण कहे हैं, पहला वह, जो  
निर्धन होकर सम्भोग की कामना करता है और दूसरा असमर्थ होने पर भी जो  
क्रोध करता है ॥६४०॥

क्षीणद्रव्ये देहिनि दारा अपि नादरेण वर्तन्ते ।

स्मितादानैररसाः शरीरपणवृत्तयो दास्यः ॥ ६४१ ॥

धन नष्ट हो जाने पर निराहित स्त्री भी पुरुष के प्रति आदर के साथ नहीं  
व्यवहती। आदान—सेना दा। जिसका श्रमला मुख्य धर्म है, शरीर बेचना ही  
जिनका धंधा है, उन वेश्याओं की निर क्या बात ॥६४१॥

अविदितहेयादेयास्तिर्यञ्चोऽपि त्यजन्ति पीतरसम् ।

कुसुमं, निमु कार्यविदो वेश्या नरमात्तसर्वत्वम् ॥ ६४२ ॥

हेय—त्याज्य और उपादेय—आत्म बुद्धि से रहित भ्रमरी भी रस लिये फूल को  
छोड़ देती है, निर हेय और उपादान बुद्धि वाली वेश्याएँ सम्पूर्ण धन नीच  
कर मनुष्य को क्यों न छोड़े दें ॥६४२॥

उपाद्यति सदानो रागं रागात्मको यथा नियतम् ।

निदानोऽपि सदा नो निःसन्नेह तथैव मनुजन्मा ॥ ६४३ ॥

१. वदति हि धनहार्यं पण्यभूत शरीरम्—सुप्रबुद्धिक. १।१७.

२. क्षीणो पुरुषो छोड़े मुक्तिनी न कदापन ।

यथापनः कामयते यथा दुष्यन्पनीरवत् य महाभात उद्योग ३३।११.

जिस प्रकार से अनुरक्त मनुष्य का दान (उदारता से धन का व्यय) निश्चित रूप में प्रीति को उत्पन्न करता है, उसी प्रकार से उदारता से धन का खर्च न करना निःसन्देह प्रीति को उत्पन्न नहीं करता ॥६४३॥

यदतीतं तदतीतं, भाविनि लाभे च नास्ति बहुमानः ।

तत्कालहस्तनिपतितमनियतपुंसां मुदे वित्तम् ॥ ६४४ ॥

जिन पुरुषों की (वेश्याओं की) धन प्राप्त अनिश्चित है, ऐसी स्त्रियों (वेश्याओं) में जो धन दिया गया, वह तो दिया जा चुका, भविष्य में दूसरा मिलेगा इसका कोई विश्वास नहीं। तत्क्षण जो धन पहले हाथ में आता है, वही धन वेश्याओं की प्रसन्नता के लिये होता है ॥६४४॥

पीडितमधु मधुजालं तुच्छीभूतं च मन्मथप्रस्तम् ।

मुंचन्ति मदनशेषं क्षुद्रोश्च प्रकटरामाश्च ॥ ६४५ ॥

मधु निचोड़े शहद के छूते को, काम से पीड़ित व्यक्ति तुच्छ-खाली हो जाने पर केवल मदन के (छूते में केवल मोग तथा मनुष्य में केवल काम) शेष रहने पर शहद की मक्खियाँ और वेश्याएँ छोड़ देती हैं ॥६४५॥

एकः क्रीणात्यद्य, प्रातर्भविता तथा परः क्रेता ।

अन्यवशे स्रगमेकं, न विक्रयः शाश्वतोऽस्ति वेश्यानाम् ॥ ६४६ ॥

आज रात के लिये वेश्या को एक आदमी खरीदता है, प्रातः काल होने पर दूसरा खरीददार आयेगा। वेश्या थोड़ी देर के लिये ही एक के अधीन होती है, वेश्याओं की स्थायी खरीददारी या विक्री नहीं होती ॥६४६॥

संदर्शितपरमार्थं भ्रूल्लेपकटाक्षदृष्टहसितादि ।

शृण्वन्ति ये सकर्णास्तत्कृतमन्यत्र संक्रान्तम् ॥ ६४७ ॥

जो चतुर व्यक्ति वेश्याओं के दिखाये भ्रूल्लेप-कटाक्ष-दृष्टि आदि को सबे अर्थों में वास्तविक समझते हैं, वे बुद्धिहीन मनुष्य अन्त में विनष्ट हो जाते हैं ॥६४७॥

यदि नाम निराकरणे न समर्था द्विन्नकार्यवन्धेऽपि ।

काचिन्महानुभावा शोद्धव्यं तदपि चेतनावद्भिः ॥ ६४८ ॥

तेनार्थेनोपकृतं तथाऽपि तस्य स्वदेहदानेन ।

तच्छातीतं सन्प्रति, निरर्थकः शुष्कशृंगारः ॥ ६४९ ॥

१. वेश्यानामनेकैः सदृशमणिकीडोर्चिता ।

निर्पात्येको विशरथ्यः परो द्वारि मतोक्षते ॥

यदि कोई अति उत्तारचेता मनुष्य यह समझे कि वेश्या को देहदान तथा पुरुष व अर्थ दान रूपी कार्य व पूरा हो जाने पर भी नायक को घर से नहीं निगालना चाहिये तो भी बुद्धिमान मनुष्य का साचना चाहिये कि नायक ने बन देकर वेश्या का उपकार किया, वेश्या ने भी अपना शरार देकर उसका भला किया, यह तो अत्र रात लुका, इसलिये अत्र उसका यह शृगार-सभोगेच्छादि रूप शृगार या हास्य कृपाक्ष भूत्सि अत्रि शृगार निरर्थक है या भूटा है ॥६४८-६४९॥

अवधीरणा रसायनमपमानो भवति यस्य परितुष्टये ।

योग्योऽसौ पुनरपर सरतरनिर्भर्त्सनीकिल्लगुडानाम् ॥ ६५० ॥

जिस मनुष्य के लिये तिरस्कार रसायन का काम करे, अमान से जा प्रसन्न हो, ऐसा गधा पुरुष नदार सतर्जन वाक्यद्वारा व ही योग्य है ॥६५०॥

दीपत्रालाललने व्रतत एतु निर्भृति तथोस्त्रियान् भेद ।

प्रथमा स्नेहेन विना, तथा परा स्नेहयोगेन ॥ ६५१ ॥

दाय की जगह और लज्जनाय दाना ही निर्भृति निराशायास्था सो पहुँचते हैं, परन्तु इन दोनों में इतना भेद है, कि रूप लहनेल व विना निभृति (समाप्ति) का प्राप्त होता है, और विना स्नेह के प्रेम व गाम से निभृति आनन्द का अनुभव करता है ॥६५१॥

धर्म कामाद्भिननगुणवान्नि स्वस्य मदनरोगव्रत ।

अर्थोऽर्थवतोऽभिगमात्, काम समरतनरोपभोगेन ॥ ६५२ ॥

कामातुर, निधन व्यक्ति का नि स्वार्थ रूप में सतर्पण करने से ( इच्छा पूरा करने से ), वेश्या को धर्म पुरुषार्थ पूरा होता है, धनवान् व धन लने स अर्थ पुरुषार्थ होता है, समान गत वाले पुरुष व उपयोग से काम पुरुषार्थ होता है इस प्रकार वेश्या के तीन पुरुषार्थ पूर्ण होते हैं ॥६५२॥

१. रसायन - सब इन्द्रियों की पुष्ट करन वाला द्रव्य—

यत्रराध्या धविध्यास धयस स्तम्भक तथा ।

चतुष्प वृ ह्य इष्य भेयत सद् रसायनम् ॥

२. समरत - समप्रतापताभतदमाभतयो स्त्रीपुमयो रत समरतम् ।

समरत में सुख अनुभव होता है—तभी काम स्तुति और धान-दादप हाता है—

यथा पुष्पजिग कसल्यदन मन्मपगृह,

प्रमद्याम मन्द विद्यति यद्दि रताविरडिपम् ।

ततस्तस्य मात रिषतविवरपुष्प च शनके,

यवद्वय सात्र मदनमदन तत्र बुद्धे ॥ शृगार दीविका ३।१८

यस्तु न धर्मप्राप्त्यै नार्थाय न कामसाधनोपायः ।

स पुमान्सच्चरितधनैः पर्यनुयुक्तः किमाचष्टे ॥ ६५३ ॥

(संदानितम्)

इसके विपरीत वेश्या के उपभोग से पुरुष का कोई भी पुरुषार्थ सिद्ध नहीं होता, क्योंकि वेश्या सेवन में प्रायश्चित्त बताया है, इस लिये पुरुष को धर्म नहीं होता, वेश्या सेवन से धन की हानि है, इसलिये अर्थ भी नहा मिलता, वेश्या सेवन में सच्चा काम भी पुरुष को नहीं मिलता, इस प्रकार वेश्या सेवन में कोई भी पुरुषार्थ पुरुष का पूरा नहीं होता । सदाचार बन वाले पुरुषा से पूछा जाने पर वेश्या सेवन करने वाला पुरुष क्या कहेगा—कुछ भी नहा ॥६५३॥

कामोद्वेगगृहीतं धूर्तैरपहस्यमानशृंगारम् ।

दारिद्र्यदहतं यौवनमबुधानां केवलं विपदे ॥ ६५४ ॥

काम के कारण व्याकुल बचैन बन, धूर्त विट जिस शृंगार रतिरस पर हैंसते हों, दरिद्रता से मारे युवा मुखों का वेश्यागमन श्रापति के लिये हो होता है ॥६५४॥

व्यपगतकोपरागिणि याति लयं पानमात्रलाभहृता ।

क्षुद्रा मधुकरिकाञ्जे न तु गणिकाचिन्तितस्वार्था ॥ ६५५ ॥

क्षुद्र-तुच्छ बुद्धिहीन भ्रमरी मधुपान के लोभ से हा विकसित कमल के रग से लिचकर सायकाल उसी में बन्द हो जाती है, परन्तु अपने मतलब का ध्यान रखने वाली गणिका कोप-सजाना खाली हुए निर्धन मनुष्य में राग के कारण आसक्ति नहीं करती, उसे छोड़ देती है ॥६५५॥

कण्डूतेरप्रतीकारावृत्तर्जिगादिमदंतात् ।

न द्रवन्ति न तृप्यन्ति योषितो नोचमेदने ॥

उच्येऽपि मृदुगुह्यान्तः संपीडा मग्यथे हृदि ।

न द्रवन्ति न तृप्यन्ति मनःतत्रोद्वि मन्मथः ॥ शृंगारदीपिका ३।६ ०

१. पशुवेश्याभिगमने...प्राज्ञापरयत्नं चरेत्-पाराशरस्मृति - १०।१३.

(ख) वेश्याऽसौ मदनञ्जालारूपेन्वनसमेधिता ।

कामिभिर्यत्र ह्यन्ते यौवनानि धनानि च ॥

२. मूर्खो द्विजातिः, स्थविरो गृहस्थः, कामी वरिद्रो धनवास्तपस्वी ।

वेश्या बुद्ध्या, नृपतिः कदर्यो, लोके पदेवानि विदतिवगानि ॥

३. हुतानाञ्जालाभे स्थितवति रथावस्तशिखरे,

पिपासु किञ्चक प्रविशति सरोज मधुकरः ।

तदन्तः सरोधं गच्छयति न सध्याममयजं,

जनोऽर्था नापायं विमृशति फलैकान्ततृपितः ॥



यासा कार्यापेक्षा सकटाक्षनिरीक्षणोऽपि वेद्यानाम् ।

दर्शनमात्रक्षुभितैर्यश्च्यन्ते ता कथं पुरुषैः ॥ ६५६ ॥

द्विन वेद्याओं का कथन—आख टेढ़ी करके देखना भी स्वार्थ से खाली नहीं होता, वे घरवालों अपने दृष्टिगत से ही चंचल चित्त वाले पुरुषों को बचैन बना देती हैं फिर व स्वयं इन पुरुषों से बँसे ठगी जा सकती हैं ॥६५६॥

क्लेशाय दुर्मगाना मानस्तुतिगात्रमगाविन्यासम् ।

गणिकाभिनयचतुष्टयमाकृत्यै स्वापतेयपुष्टानाम् ॥ ६५७ ॥

क्लेश का मान, स्तुति, गात्र विन्यास और अंग विन्यासरूपी चार प्रकार का अभिनय दुमागे निर्धना का काम देने के लिए होता है, और यही चार प्रकार का अभिनय धनम्बामी धनिया के आकर्षण के लिए होता है ॥६५७॥

किं घटयति भौमोऽपि ज्वलनं रज्जु तान्द्रा कुलागारम् ।

यो दह्यते न विरस विरक्त्यासीतिरस्कारैः ॥ ६५८ ॥

जो निर्जन विरक्त वेद्या के तिरस्कार से भा नहीं जला, ऐसे विरस (शुष्क) कुलागार का प्रथी की अग्नि क्या जलायेगा ? वह भी नहीं जला सखती ॥६५८॥

गृहमेतदीश्वराणा कान्तार दुष्प्रवेशमन्येषाम् ।

पृच्छतामिन् सुभुजया, न मालती कामसत्रदानपरा ॥ ६५९ ॥

( महाकुलकम् )

वेद्याओं का घर धन से सम्पन्न पुरुषों के लिए घर होता है, निर्धनों के लिये दुष्प्रवेश्य ग्रीहड जगल है । कज्यास किया हुआ यह तिरस्कार है, मालती का कामसत्र दान नहीं गुला हुआ है, जा चाह यहाँ से दान ले जाये ॥ ६५९ ॥

इति चोदितगृहोऽपि निगदति कटुकाक्षराण्यदृवलदया ।

आकर्ण्यतो धाचा दैवोपहतन्य मर्मभिन् ॥ ६६० ॥

एवमभिधीयमानो बुध्यति यन् नो पशुर्नराकारः ।

तदिदं मुन्दरि वाच्यं प्रक्षितवचसा त्वया कामी ॥ ६६१ ॥

स्वामिनी से प्ररित गृहगसी द्वारा अन्य को लक्ष्य बनाकर इन प्रकार बड़े मर्मभंग-कठार कटुए वचन मुन्दर मा देव से मारा हुआ मनुष्यरूपी पशु यदि

१ अभिनय—मदभिनयाऽवस्थापानुकार स चतुर्विधः ।

अभिहितो वाचिदृशैवाशय सोऽविवक्षया ॥ छा० ६० ११२

इनमें मान अभिनय सात्त्विक, स्तु व व विक, गात्रमंग आगक और गात्र विन्यास अभिनय भाहार्य अभिनय है ।

न समके, तव हे सुदरि, तुम्हे कोमल वचनों में इस प्रकार से उसे कहना चाहिये ॥ ६६०-६६१ ॥

प्रीयत एव तत्रोपरि हृदय मे, किन्तु गुरु जनाधीना ।

मातृवचोऽतिक्रमणं न समर्था सविधातुमहम् ॥ ६६२ ॥

मैं तुम्हको हृदय से प्रेम करती हू, परतु मैं गुरुजनों के अधीन हूँ, मैं माता के वचनों का अतिक्रमण नहीं कर सकती, उसकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकती ॥ ६६२ ॥

अर्हसि तावदतस्त्व गन्तुमित कतिपयान्यपि दिनानि ।

पुनरपि भवतैव सम भोक्तव्य जीवलोकमुत्तमम् ॥ ६६३ ॥

इसलिये तुम्हारा यहाँ से कुछ दिनों के लिये चले जाना ही अच्छा है । फिर भी इसने पीछे आपके ही साथ जीवन का सुग्न भोगूँगी ॥ ६६३ ॥

निर्वासितेऽथ तस्मिन् य कामी पूर्वमुज्झितो भुक्त्वा ।

तस्य प्राप्तविभूतेर्युक्तिरिय भिन्नसधाने ॥ ६६४ ॥

उपवनलीलाविहरणहायोज्ज्वलमजुलस्य सह तेन ।

वर्णनमितिवृत्तस्य स्मरनविकाराश्च, वीक्षिते तस्मिन् ॥ ६६५ ॥

इसने निकाल देने पर—पहले जिस कामुक को भोग करने—चूस करके छोड़ दिया हो, उसने यदि पुन धन प्राप्त कर लिया हो, तो उस दूटे हुए को मिलाने में यह चातुरी करते १ । कामुक दिखाई देने पर उसने सामने उपवनों में किया लीला विहार ( पिकनिक खेल ) हाव शृंगार सूचक विकारों से सुन्दर बने, मनो हर, स्थायी और व्यभिचारी रूपी शृंगारज विकारों का तथा पिछली बातों का वर्णन करे ॥ ६६४-६६५ ॥

१ हेमन्तमात्रंर एवात्तिलीन स चेन्न निर्याति निरस्यमान ।

तदेव कार्यमनुममंभेदी प्रवर्धमानः परुषोपचार ॥

श्रीवस्य यस्यास्ति न भोगसपत्न्य किं मुञ्जिस्थामवने कराति ।

न यस्य इस्तेतरमूथमस्ति स किं समारोहति नावमग्रे ॥

प्रतीणवित्तेन निरस्येन किं रूपदुक्तेन करोति धेरया ॥

समयमानुका ८१, ८२ ८६

१. क्षीय निरस्त पुनरावृत्त भजेत यत्नाहृतवित्तमन्यम् ॥

प्राप्ते काले कथमपि घनादानपात्रे च वित्ते,

एव मे सर्वं स्वमसि हृदय जीवित च त्वमेव ।

द्वयुक्त्वा तं क्षयितविमथ कञ्चुकाभ भुजङ्गी,

एषत्वा गच्छसधनमपर पैशिकोऽप्य समाय ॥ समयमानुका ८८-८९

इदमुपवनमतिघन्यं निर्भरमालिगितं सुरभिलक्ष्म्या ।

मत्कण्ठाश्रितपाणिर्वभ्राम स यत्र जीविताधीशः ॥ ६६६ ॥

वसन्त शोभा से अतिशय रूप में आलिगित यह उपवन अति मान्यशाली है, यहाँ पर मेरे प्राणेश्वर मेरे गले में हाथ डाले घूमते थे ॥ ६६६ ॥

सख्य इतो भ्रमरकुलजासितया प्रियतमो मया सहसा ।

वक्त्रीभवत्पयोधरमुपगूढो धीरसीत्कारम् ॥ ६६७ ॥

मित्र ! यहाँ पर भ्रमरों से डरी मैंने मुक्कर मन्द सीत्कार करते हुए स्तनों के साथ प्रियतम का सहसा आलिगन किया था ॥ ६६७ ॥

रणदिन्दिन्दिरघ्न्दे कृजत्कलकण्ठरावरमणौये ।

अत्रातिमुक्तकगृहे मरुदीरणाविधुतकुसुमसंछन्ने ॥ ६६८ ॥

मयि जाताधिकरागो बलवति मद्दने सहायसामग्र्या ।

कान्तः पल्लवशयने नो वृप्तिमगाद्विचिक्तकार्येषु ॥ ६६९ ॥

( युगलकम् )

गूँजते हुए भ्रमर समूह के, झीयल के सुन्दर बुझते हुए, बहती हुई वायु से कम्पित फूलों से ढँपे इसी वासन्तीलता कुञ्ज में, उद्दीवन अनुभावरूपी सहायक सामग्री से काम के बलवान् होने पर मुझमें अतिशय प्रेम उत्पन्न हो जाने पर, कान्त प्रेमी को कोमल विसलश की बनी शय्या पर एकान्त में करणीय कार्यों में वृत्ति नहीं हुई थी ॥ ६६८-६६९ ॥

प्रेरणाप्रहरणयुस्त्या विध्यन्पार्श्वद्वयं नरैर्भूतः ।

चक्रे मां मदनमयीं व्रततिप्रेरणाभिमां समारूढाम् ॥ ६७० ॥

इन सामने दीवने वाली लताओं के झूले पर चढ़े हुए प्रेमी ने; झूले को आन्दोलित करने के ( पींग बदाने के ) बहाने; नगों से नौचकर मुझको कामातुर बनाया था ॥ ६७० ॥

सृष्ट्वापोऽयमशोरः सृष्टो यो वल्लभेन हस्तेन ।

अस्मद्वचतंसनार्थं नूतनदलपल्लवान् विदारयता ॥ ६७१ ॥

यह अशोक स्रुत मान्यशाली है, जिसमें मिषतम के हाथ से छूने पर मेरे कर्णमूल के नियो, टटने कोमल पत्त फूट जाते हैं ॥ ६७१ ॥

अस्मिन्सहकारतले तस्योत्संगे सलीलमासीना ।

अशृणुमहमिति वाचः पश्यन्ती विलसितानि तरुणानाम् ॥ ६७२ ॥

१. कोपप्रहमने भीती । रयोते पुनरातमे ।

संमो,गे च समादन्नेषी विठपेष मुम्पारः ॥

इसी आम्र वृक्ष के नीचे प्रियतम की गोद में विलास के साथ बैठे हुए मैंने तरुणों की विलास व्रीडा को देखते हुए कानमें पडनेवाली इन बातों को सुना था ॥ ६७२ ॥

उत्थापय मानरसे द्युतितं चरणान्निपतितं तूर्णम् ।

अत्याकृष्टं द्रुत्यति मुहृदमयि प्रेमबन्धन मूढे ॥ ६७३ ॥

बातें जो सुनी—हे अभिमानिनि । पैरों में पड़े प्रियतम को जल्दी से उठा ।<sup>१</sup> हे मूढे ! मुहृद प्रेमबन्धन भी बहुत अधिक खींचने पर टूट जाता है ॥ ६७३ ॥

तिष्ठन्नपि यातसम किं तेन निवारितेन सखि पशुना ।

यामीति निष्प्रकम्पा विनि सृता यस्य साऽधरे वाणी ॥ ६७४ ॥

हे सखि ! जिसे मुझ से मैं जाता हूँ, यह कठोर वचन बिना किसी दया के निकल गये, यह नर पशु तैठा हुआ होने पर भी गये हुए के समान ही है, उसको रोकने से कोई लाभ नहीं ॥ ६७४ ॥

आयु सार यौवनमृतुसार. कुसुमसायकवयस्य +

सुन्दरि जीवितसारो रतिभोगरसामृतस्वाद. ॥ ६७५ ॥

आयु का सार तो यौवन है, ऋतुओं का सार वसन्त है । हे सुन्दरि ! जीवन का सार तो रति भोग-रसामृत का स्वाद है<sup>२</sup> ॥ ६७५ ॥

रम्यं कुसुमस्तवकं कुरु मे प्रिय कैंकिरातमघर्तंसम् ।

तिष्ठतु वा विमनेन प्रत्यग्रमशोककिसलयं चारु ॥ ६७६ ॥

हे प्रिय ! मेरे लिये कैंकिरात के सुन्दर फूल के गुच्छे का वर्षाफूल बना दो । अथवा इसको छोड़ दो, अशोक का टटका कोमल पत्ता सुन्दर है, उसका वर्षाफूल बनाओ ॥ ६७६ ॥

आन्तामास्तामेतत् प्रापय मां सिन्दुवारमभिरामम् ।

नहि नहि, राजति सुतरा चूतद्रुममंजरी फर्णे ॥ ६७७ ॥

१. मोहायुक्ताऽपि वा योऽपिद्विदृष्टाऽपि वा भवेत् ।

पात्रे पतन्तं पुष्पमनुवर्षेत सर्वदा ॥

२. यौवन—रतिभोग्यामसहजो मत्तेभस्येव मत्तताम् ।

विधरो युवमात्रो यस्तयौवनमुदाहृतम् ॥

( अ ) यत्र मदनः प्रगल्भस्यापारचरति इति सुगंधरथ वपुषि—माधवी-  
भाष्य. ९।२९.

( ग ) गीतामें—सामानां मार्गशीर्षोऽहं ऋतूनां कुसुमाकर ।

इसको भी छोटी-मुझे रमणीय सिन्दुवार के पाम ले चलो । नहीं नहीं,  
आम्रवृक्ष की मंजरी कान में सुन्दर लगती है ॥ ६७७ ॥

धित्कारुख्यमकान्तं धिक्कान्तं यौवनेन रहितं च ।

धित्कद्ध्यमपि मन्मथशास्त्रविकासं धिना सुरतम् ॥ ६७८ ॥

कान्त प्रियतम के धिना तदशावस्था की धिक्कार है, यौवन से रहित  
प्रियतम को धिक्कार है, कान्त श्रीर प्रियतम दोनों को धिक्कार है यदि सम्भोग  
कामशास्त्र के प्रयोगों के बिना होता है ॥ ६७८ ॥

जनितोऽप्यपराधशतैर्नामे तस्मिंश्चिग्रहृदोऽपि ।

अधिगतमधुना सरया न यसन्तमर्तात्य वर्तते मानः ॥ ६७९ ॥

हे नामे मुन्दरि ! अपर स्त्री गमन आदि सैकड़ों अपराधों से उत्पन्न, देर  
से बढ़ता हुआ भी मान यसन्त समय के आने पर उसमें नष्ट टिक सकता,  
इस बात को मैंने आज सन्धी से जाना ॥ ६७९ ॥

वर्षरातस्य हि सारः काललवः प्रथममेलनस्थानम् ।

सचकितमागच्छन्ती सोत्कलिका यत्र दृश्यते रमणी ॥ ६८० ॥

सैकड़ों वर्षों का सार वह काल लवण है, जिस क्षण में रमणी उत्कण्ठित  
होकर प्रिय के साथ मिलने के सकेत स्थान में चकित, निरमय, भय, कम्प के  
साथ आती हुई देखी जाती है ॥ ६८० ॥

किं निमित्तोऽसि धारा नरोऽपरः किमु यसन्तगुण एवः ।

कुसुमशरपूर्णतूणः किमुताभवदन्य एव कन्दर्पः ॥ ६८१ ॥

मिसी मुन्दर व्यक्ति ने प्रति टक्ति—क्या ब्रह्मा ने यह नया ही बनाया है,  
अपना क्या यसन्त गुण—मल्ल कोरिन की बृहक आदि से भिन्न दूतप  
गुण है, अपना कामदेव से अलग गुणगणों से भरे तूतार वाला दूतप  
कामदेव है ॥ ६८१ ॥

नो पर्यसि यदि वज्रुमः प्रचुरोदलकुसुमसुरभिररमणीया ।

परभृतकृततमिध्रं न शृणोपि यदि द्विरेफभंकारम् ॥ ६८२ ॥

१. नारीषुदीनयन नयनद्वयापुशास्त्रैर्विदीनसुरतं रमणीयार्थो ।

छत्रागुणमिध्रियुक्तपराङ्मना धेत्येकानि परवस्तवसततं वृषा स्तु ॥

शुद्धारक्षीपदा ३।५.

२. इत्येवमकद्विषा रोषापुराणे पंचसायके ।

मयं विनिर्ममे काव्यसुरात्र प्रजासतः ॥ समवमादृश ७।४.

गन्धं यदि च न लभसे वासितदिग्ब्योम सुमनसां हृद्यम् ।  
 अनुभवसि यदि स्पर्शं नो शीतलदाक्षिणात्यपवनस्य ॥ ६८३ ॥  
 रसनेन्द्रियैकशेषः परसंचार्यो जनेन परिभूतः ।  
 नार्हसि ततोऽपि मुक्त्वा निजाश्रमं गन्तुमन्यतो नितराम् ॥ ६८४ ॥  
 ( कुलकम् )

बहुत से विकसित फूलों की सुगन्ध से भरी दिशाओं को यदि नहीं देखती, कोयलके कूहक से मिली भ्रमरों की भंकार को यदि नहीं सुनती, पुष्पों की दिशाओं में फैली मनोहर सुगन्ध को यदि नहीं सूँघती, शीतल दक्षिण पवन के स्पर्श का यदि अनुभव नहीं करती, तो केवल जिह्वा इन्द्रिय के वश में होकर परार्थीन बनकर अपने आश्रम निवास स्थान को छोड़कर; लोगों से तिरस्कृत होकर अन्यत्र जाना योग्य नहीं ॥ ६८२-६८४ ॥

अस्मिन् सरसि सलीलं करयन्त्रविनिर्यद्वन्धुधाराभिः ।

दयितेन ताडिताऽहं, मयाप्यसावाहतो मृणालिकया ॥ ६८५ ॥

इसी तालाब में हाथों से बनाई पिचकारी द्वारा जल फेंककर-खीला-विलास युक्त चेष्टा करते हुए प्रिय ने मुझे मारा था, मैंने भी मृणालिका-कमलनाल से उसे मारा था ॥ ६८५ ॥

पुनरन्तर्जलमग्नां मामुपगम्याधिभावितः सहसा ।

उच्छिच्छेष सहासं हासितसन्निहिमपरिवारः ॥ ६८६ ॥

फिर जल में गोता लगाकर-मेरे बिना जाने सहसा मेरे पास में आकर हँसते हुए मुझे ऊपर उठा लिया, इसको देखकर पास में बैठे सब सम्बन्धीजन हँसने लगे ॥ ६८६ ॥

संसक्ताद्राचरणं जघनं ननु पश्यतस्तदा तस्य ।

प्रथमाकांक्षाकृतं भेजे संभोगशृंगारम् ॥ ६८७ ॥

शरीर के साथ सटे-चिपके हुए गीले बख्नों वाले जघन प्रदेश को देखते हुए; उसमें प्रथम चाह सूचक, संभोग शृंगार उत्पन्न हो गया ॥ ६८७ ॥

काल-प्रदेश-वेप-व्यापार-स्थितिविशेष-घटनाभिः ।

चिररूढोऽपि हि यूनां नयत्वमुपनीयते रागः ॥ ६८८ ॥

युवाओं का पुराना हुआ स्नेह-काल यत्न, वर्षा आदि समय, प्रदेश-उद्यान, विहार आदि देश, वेप-पतले महीन बख्नों के परिधान, व्यापार-शृंगार चेष्टा, स्थिति-शृंगारि विक्षेपण श्रवण आदि के कारण फिर से नया हो जाता है ॥ ६८८ ॥

सादरमर्पयतोऽञ्जं गोत्रशत्रुलनापराधिनस्तस्य ।

सरयः स्मरामि सहसा धिलक्षताक्लिष्टहसितस्य ॥ ६२५ ॥

मानपूर्वक मुक्तकौ कमल भेंट करते हुए गल्ली से मेरे नाम के स्थान पर दूसरी सखी का नाम लेने के अनुरोध के कारण सहसा लज्जा आ जाने पर, आनन्द से हँसते हुए नायक का उत्कण्ठा पूर्वक मैं स्मरण करती हूँ ॥ ६२५ ॥

प्रत्यमनखत्रणितस्तनान्तरे क्षिपति लोचने शृङ्खला ।

प्रेयसि तच्छ्रादनरुमकरवमहमन्त्रिणीपत्रम् ॥ ६६० ॥

स्तनों के बीच में नूतन क्रिये नखदातों की ललचाई आँखों से देखते हुए प्रियतम के, मैंने उनसे दोनने के लिए अपने हाथों से ही लीलाकमलदल का काम लिया-हाथों से उनसे दाँपा<sup>२</sup> ॥ ६६० ॥

क्षिप्त्वा तर्कितमम्भो गर्भितनलिनीपलाशपुटभावात् ।

आहतया यद्विरुतं स्वस्वधिया नैव शक्यते कर्तुम् ॥ ६६१ ॥

प्रियतम के नलिनोरनों के बने सम्पुटों में जल भरकर सहसा बिना मेरी जानकारी के जल से चोट मारने पर जो शब्द निकला, वेश शब्द स्वस्य अस्य में मुझसे नहीं किया जा सकता ॥ ६६१ ॥

मुश्लिष्ठो हावविधिर्मदनालसगात्रजम्भीतं ललितम् ।

गूढस्थानप्रफटनमंगुलिविस्फोटनं, स्मितं सुभगम् ॥ ६६२ ॥

नीर्वाणन्धविमोक्षो, मुहुर्मुहुः केशपाशविश्लेषः ।

स्वाधरदशनप्रहर्षणं, पालकपरिचुम्बनं, रतोस्तुक्त्वा ॥ ६६३ ॥

मली प्रकार बरती हावविधि ( हाव प्रयोग ), वाम के काव्य अलंकारों से सुन्दर बम्भाई लेना, दख ठीक करने के बहाने से स्तन बाहूमल-नाभि वरन आदि गुह्य अंगों को दिखाना, अँगुलियों का चटखाना, मनोहर मुस्मान, बैधी हुई नीला को दाँसा करने के लिए गोंठ चोखना, बैध हुए जूँ के पुनः नौबने के नहाने प्रारंभ चार चोखना,

१. विश्रित—विहासितकपोलान्तदुष्कृतकामललोचनम् ।

किञ्चिद्विश्रितवन्नामं इवितं तद्विश्रो विदुः ॥

२. नखदात काव्य—मामे नखीनमुसते गिहे प्रयासे,

दम्पशयेऽथ विरती च मदे प्रयागः ॥

[दम्पशये—गुह्यरोपस्य स्त्रीकामसङ्घर्ष वा स्पन्दनकाने]

ग्रने निचले ओठ को दातो से काटना, गोद म लिये बालक का चुम्बन-ये  
स्तोसुका कामिनी के लक्षण है ॥ ६६२-६६३ ॥

साकान्ति त्तिपन्त्यास्तरलायतलोचने मुहु कान्ते ।

उद्दिश्य तद्वयस्यकमिति शोकग्रस्तवर्णगिर ॥ ६६४ ॥

(कुलकम्)

प्रियतम को चाहभरी दृष्टि के साथ चचल दीर्घ आँखों से बार बार देखती  
हुई, उसको लक्ष्य करके, उसके मित्र के साथ शोकग्रस्त वाणी से बात  
करती है ॥ ६६४ ॥

एकीभाव गतयोर्जलपयसोर्मित्रचेतसोश्चैव ।

व्यतिरेककृतौ शक्तिर्हंसाना दुर्जनाना च ॥ ६६५ ॥

पानी और दूध की भोंति एक बने आप दोनों मित्रों के हृदय को अलग  
करने में, पाडने में हस और दुजन ही समर्थ हैं ॥ ६६५ ॥

येन तदा मामूचे परिजनमुत्सार्य विवृतनवमन्यु ।

दर्शितहितस्वरूप परपीडाकरणपण्डित प्रखल ॥ ६६६ ॥

हमारा प्रम स्थिर हो जाने पर इस दुर्जनता के कारण ही नौकर चाकर  
आदि को हटाकर-नवीन क्रोध को दिखाते हुए, मेरे प्रति मुहृद्भाव प्रगट करते  
हुए आपका मित्र मुझे कहने लगा-क्याकि अतिशय दुष्ट व्यक्ति दूसरे को  
दु खी करने में पण्डित होते हैं ॥ ६६६ ॥

अतिक्रोमलमतिपरिमितवर्ण लघुतरमुदाहरति शठ ।

परमार्थत स हृदय दहति पुन कालकूटघटित इव ॥ ६६७ ॥

धूर्त मनुष्य बहुत ही क्रोमल एव बहुत ही थोड़े शब्दों में एव सत्तेप से  
कहता है, यह वचन कालकूट महाविष की भोंति वास्तव में हृदय को  
जलाता है ॥ ६६७ ॥

अविदितगुणान्तराणा नो दोष प्राप्तदेशवासानाम् ।

स्वाधीनकुकुमा अपि यद्विदधति बहुमति नोले ॥ ६६८ ॥

१ स्त्री कात्त बोद्धव नामि प्रकटयति मुहुविाक्षपन्ती कटापान् ,

दार्मूल दशयन्तो रचयति कुसुमपीडमुक्षिप्तपाणिम् ।

रोमावस्वेदमृग्भा अयति कुचस्तभ्रशि वस्त्र विवच,

सेहृण्ट वक्ति, नावो रचयति, दशव्याहभग मिनति ॥

(ख) पद्यसायक (४।३०) और अनगरग (४।३८) में ये छक्षण दिये हैं ।

२ मधुरिमरुचिर वध खड्यानाममृतमहो प्रथम पृथु ध्यनक्ति ।

अथ कथयति मोहहेतुमन्तगतमिव हाज्याइल विप तरेव ॥



दूसरे देश में रहने वालों को दूसरे के गुणों का यदि ज्ञान न हो तो इसमें कोई दोष नहीं। जिन काश्मीरियों को केशर सुखम है, वे भी नील की चाह करते हैं ॥ ६६८ ॥

क्व महीतलरम्भा त्वं न्यक्कृतचन्द्रप्रभा स्वदेहन्वा ।

चित्रलता क्व यराको नीचैरुपसेवितारोहा ॥ ६६९ ॥

कहाँ तुम पृथ्वी की रम्भा, जिम्मे अरुनी देह की कान्ति से चन्द्रमा की ज्योत्स्ना को भी नीचा दिखा दिया। कहीं दीन चित्रलेखा जो नीचों से उपसेवित है। (रम्भा-रम्भा नामक अक्षय और कदली, चित्रलेखा नामक अक्षय एवं मन्दित्रा-मनीठ की लता, आरोह ऊपर चढ़ना और नितम्ब) ॥ ६६९ ॥

यस्यार्थं न विगणितः प्रह्लात्मानो महाधनाः कुलजाः ।

सोऽद्य हृदयेन तस्यां, त्वयि तिष्ठति बाह्यवृत्तेन ॥ ७०० ॥

जिसके लिए तुमने आसक्ति से नम्र बने, कुलीन एवं अतिशय धनवान् मनुष्यों को भी झूठ दिया, वही पामरु ग्राज हृदय से दूसरी सपत्नी को चाहता है, तुम्हारे लिये तो केवल बाहरी दिखावे से बरतता है ॥ ७०० ॥

तामेव समाचरणां सद्भावेन प्रयतितां निपुणाः ।

चिन्दन्ति तत्र कुशलाः स्नेहविरूपे प्रभेदेन ॥ ७०१ ॥

उसके सद्भाव-प्रेम आदि के दिखावे पर विलास आदि चिह्नों से मैंने इस बात को जाना है; जिस प्रकार कि प्रेम के न रहने पर व्यवहार की भिन्नता से कुशल व्यक्ति प्रेम को नूनता जान लेते हैं, उसी प्रकार निपुण व्यक्ति विलास आदि लक्षणों से प्रेम को भी जान लेते हैं ॥ ७०१ ॥

भवतु, विरुद्रप्रेम्णः सत्कर्मविवेचने मनोवृत्तिः ।

नारोहतीति सर्वं निवेदितं पारिचित्येन ॥ ७०२ ॥

ठीक है, रहने दो, क्योंकि प्रेम के अंकुरित हो जाने पर सत्कर्म के विवेचन में मनोवृत्ति नहीं लगती, मैंने तो यह बात केवल परिचित होने के सम्बन्ध से ही कही है ॥ ७०२ ॥

इति दुर्जनाहितिःसूत्रयाग्नियदूषितसमस्तवपुपो मे ।

ईर्ष्यारूप- प्रवृद्धादिचिररूढप्रणयस्त्रण्डनप्रभवाः ॥ ७०३ ॥

इस प्रकार साँप की मौँति दुर्जन के मुख से निकली विष दूषित बाणी से मेरा साय शरीर जल गया, इससे चिररूढ प्रणय के दूटने के कारण ईर्ष्या से उत्पन्न क्रोध उत्पन्न हो गया ॥ ७०३ ॥

१. स्वदेशजातस्य नरस्य नूनं गुणाधिकस्यापि भवेदग्रहा ।

निर्जागता यद्यपि रूपराधित्यपापि लोकाः परदारसकः ॥

लघुहृदयतया तस्माद्भूमिपितवस्रपातविहतानाम् ।

वक्तृविशेषवितर्को न स्पृशति प्रायशो मन स्त्रीणाम् ॥ ७०४ ॥

इसलिये दुष्टों के वज्ररूपी कप वचनों से चोरा साइ खियाँ, हृदय के छोट्य होने के कारण कहने वाले की बात की बहुत अधिक छानबीन नहीं करती ॥ ७०४ ॥

प्रियमपि वदन् दुरात्मा क्षिपति विपत्सागरे दुरत्तारे ।

आसाद्य प्राणभृतो मृतये परिलेडि निहया खड्ग ॥ ७०५ ॥

दुष्ट आदमी मीठा बोलते हुए अति दुस्तर आपत्तियों के समुद्र में गिरा देता है । मनुष्य के पास पहुँची तलवार स्वर्श मात्र से ही मृत्यु का कारण बनती है ॥ ७०५ ॥

हितमधुराक्षरवाणी व्यवहारमनुपविश्य तल्लीनाम् ।

सरला दुराशयानामुपवातफनेन विन्दन्ति ॥ ७०६ ॥

दूषित मन वाले मनुष्यों की हिाकारी एवं कर्णप्रिय मधुर वाणी के बशी भूल, उसी में पूर्ण विश्वास रखने वाले सरल हृत्प्य वाले मनुष्य, विनाश के परिणाम से ही उसको पहचानते हैं ॥ ७०६ ॥

परसन्तापविनोदी यत्राहनि न प्रयाति निष्पत्तिम् ।

अन्तर्मना असाधुर्न गणयति तदायुषो मध्ये ॥ ७०७ ॥

दुष्टव्यक्ति जिस दिन दूसरे को दुःखी देखकर प्रसन्न नहीं हो लेते, व दुःखित मन से आयु के दिनों में उस दिन की गणना नहा करते ॥ ७०७ ॥

दिवसास्तानभिनन्दति बहु मनुते तेषु जन्मनो लाभम् ।

ये यान्ति दुष्टबुद्धे परोपतापाभियोगेन ॥ ७०८ ॥

दुष्ट व्यक्ति के जितने दिन दूसरों को दुःखी करने में जाते हैं, उतने ही दिनों को वह सफल दिन मानता है, उहीं दिनों में अपने जीवन को धन्य समझता है ॥ ७०८ ॥

विकसितवदन पिशुन प्रोक्कुल्लविलोचनो यथा भ्रमति ।

मन्ये तथा न जात सदहितकरणश्रमो वन्ध्य ॥ ७०९ ॥

१ स्पृशति अपि गजा हान्त जिह्रस्यपि भुजगम् ।

इसस्यपि च वेताज्ञो मानयन्मपि दुर्जन ॥

२ को वेत्ति गुणविभाग, हस्तेन कथं पराश्रयो जाति ।

दुर्जेय कुटिष्ठानां चेष्टितमन्यद् वचशास्त्र ॥ समयमातृका ८१४८

(ख) प्रविश्य हि मन्ति शठास्तथाविधानसवृताङ्गान्निशिता इवेपव ।

कपनी व्यक्ति प्रसन्न मुग्ध और आँसों को विकसित करके जिस प्रकार से धूमता है, इससे म अनुमान करता हूँ, सजनों को ग्रहित करने में उसका प्रयत्न निष्फल नहीं गया ॥ ७०६ ॥

शठमृगयु कुसृत्तिशरैरज्ञातप्रतिविधानसाधुमृगान् ।

अभ्यस्तलक्ष्यवेधो निघ्नन् न परिभ्रम ब्रजति ॥ ७१० ॥

धूर्त व्यक्ति बाण चलाने में विद्वहन्त व्याध की भोंति, प्रतिरोध के उपाय को न जानने वाले साधु पुरुषों को मृगों की भोंति अपने उपशप (मेदनाति) आदि दूषित नाशों से मारते हुए थोडा भी श्रम अनुभव नहीं करता ॥ ७१० ॥

अनुकूलपरपुरन्ध्रीषु पुरपाणा वद्धमूलरागणाम् ।

नयति मनो दुःशील कुसुमास्त्रो हीनपात्रेषु ॥ ७११ ॥

अनुकूल—चित्त के अनुसार चलने वाली, सुन्दर, स्त्रियो म अतिशय स्नेह रखने वाले पुरुषों के मन को भी, दुष्ट स्वभाव वाला कामदेव नीच स्त्रियों में ले जाता है ॥ ७११ ॥

सावसर ब्रजतोऽन्या कौतुकदृष्टयः प्रसगतो दयितान् ।

बुद्ध्याऽपि विदग्धधियो वर्तन्ते नाट्यधर्मेण ॥ ७१२ ॥

कुतूहल दृष्टि से अन्य स्त्री के गुप्त रूप में प्रसगवश मिलते हुए अपने प्रिय तमों को दूसरों से जानकर भी, चतुर बुद्धिवाली स्त्रियों, नाट्य धर्म से—बाह्य दिखावे से पूर्व की भोंति उनसे बरतती हैं ॥ ७१२ ॥

सत्य प्रेमणि वृद्धे व्यथयति हृदय मनागापि स्पलितम् ।

अवधृतनिजमाहात्म्यास्तदपि न धीरा विगुह्यन्ति ॥ ७१३ ॥

प्रेम के अतिशय जडने पर, हृदय में उत्पन्न थोड़ी सी भी शका, अत्यन्त पीडा उत्पन्न करती है, यह सत्य है । तथापि उदार चित्त वाले धीर मनुष्य इसमें भी विचिंत नहीं होते ॥ ७१३ ॥

स्वच्छन्द पितृ रस भ्रान्त्वा नानावनानि कुसुमेषु ।

अनुभूतगुणविशेष पुनरेष्यति मालतीं मधुप ॥ ७१४ ॥

भ्रमर अनेक वनों म धूमकर इच्छानुसार फूलों का रस भले ही पीता रहे, फिर भी अनुभव नये गुणविशेष के कारण वह मालती पर ही फिर लौटेगा ॥ ७१४ ॥

१ यथा रत्नावली में—प्रकृष्टस्य प्रेम्ण स्वच्छित्तमविषय हि भवति—३१३५.

२ (क) नव नव गुणरागी प्रायशो जीवलोक —

(ख) भ्रमर कौतुकास्वाद्मात्रो नवनवान्मुक्त —समयमात्रका २।५२

(ग) कुसुमस्तवकैर्नम्रा सन्त्येव परितो जता ।

तथापि भ्रमरभ्रान्ति हरत्येकैव मालती ॥

मालत्या गुणवार्ता नो सम्यग्वेत्ति मधुकरस्तावत् ।

अनुभवमेति न यावत् सुमनोन्तरसगमास्वाद ॥ ७१५ ॥

मालती के गुणों को भ्रमर तब तक ठीक प्रकार से नहीं जानता, जब तक वह दूसरे फूलों के रस को नहीं चख लेता<sup>१</sup> ॥ ७१५ ॥

कोमलमानकदुःख भजमानो भजति दीप्ततामधिकाम् ।

सचाल्यमानदारु पावक इव सुप्रभ स्नेह ॥ ७१६ ॥

थोडा सा तीव्र रस खा लेने पर उत्तम स्नेह अधिक तेज बन जाता है (नमक के साथ घी की मात्रा अधिक खाई जाती है) जिस प्रकार कि लकड़ियों के हिलाने से अग्नि अधिक तीव्र हो जाती है<sup>२</sup> ॥ ७१६ ॥

य पुनरतिकोपानलसन्तापवशेन दूरमाकृष्ट ।

काचमणि खलु स यथापरिणाम खण्डखण्डमुपयाति ॥ ७१७ ॥

अतिशय कोपान्नि के सताप के कारण जो बहुत दूर हो गया है,—वह स्नेह अवश्य टूट जायेगा, जिस प्रकार कि अग्नि की उष्णिमा से काचमणि—काच टुकड़े टुकड़े हो जाता है ॥ ७१७ ॥

वेतनलाभाद्बहव सेव्यन्ते सौष्ठवेन पचजना ।

विश्राम्यति यत्र मन स तु दुःप्राप सहस्रेषु ॥ ७१८ ॥

वतन—धन के लाभ की दृष्टि से बहुत से मनुष्य भली प्रकार सेवा करते हैं। परन्तु मन को जहाँ शान्ति मिले, ऐसा मनुष्य हजारों में विरला हो कोई हाता है ॥ ७१८ ॥

मन्वादिमुनिवरैरपि कालत्रयवेदिभि सुदर्शयम् ।

तत्सुकृत यम्य फल रभसागतवल्लभाश्लेष ॥ ७१९ ॥

भूत भविष्य वर्तमान तीनों कालों की बात जानने वाले मनु आदि मुनियों से भी वह शुभ कर्म दुर्बिज्ञय है, जिसका फल प्रमी का उत्कण्ठापूर्वक आकर प्रियतमा का आलिङ्गन होता है ॥ ७१९ ॥

१ दूग्दुग्धकति चम्पक, न च भज यंभोजरराजीरजो,  
नो जिघ्रयपि पायलापरिमल, चूते न घत्त रत्तिम् ।  
मन्वारेऽपि न सादरो विचकिळामोदेऽपि सन्तप्यते,  
तन्मन्ये ष्वचिद्भृ भृगतस्त्रोवास्वा॥दत्ता मालती ॥

२ (क) मन्त्रयो नेर्वया विना,

(ख) खवयोपहिता स्नेहा स्नेहयन्त्यचिरात्तरम् ॥ चरक सू अ १३।९८

यातेऽपि नयनमार्गे प्रेयसि यस्या स्मृतिर्व्यर्लीकेषु ।

मन्ये सा प्रतिनियतं कुण्ठितशरपचको मदन ॥ ७२० ॥

प्रियतम के दिखाई पड़ने पर जिस स्त्री का स्मृति उसने अपराधों में जाती है, मैं मानती हूँ कि अनर्थ उसने प्रति कामदेव ने सन बाण निरल हो गये हैं ॥ ७२० ॥

जीव्यत एव कथचिद्विगृत्तिमिमा महद्भिरवगीताम् ।

विजहाति यन्नगाणिका तद्वाञ्छितरमणलाभलोभेन ॥ ७२१ ॥

किसी प्रकार से जीना है, इसी कारण रूपाजीवा-वेश्या अतिशय गर्हित इस वृत्ति को स्वीकार किये हुए हैं, फिर भी इस निन्दनीय वृत्ति को पेश्या जो नहीं छोड़ती, उसका एक ही कारण है, वह समझती है कि शायद भाग्य से कोई इच्छित मन पसन्द कामुक मिल जायेगा ॥ ७२१ ॥

कण्टकित कटुरसान् करीरघट्टरादिविटपतन्गुल्मान् ।

उपभुजाना करभी दैवादाप्नोति मधुरमधुजालम् ॥ ७२२ ॥

ऊँटनी काटे एव कटुरस वाले करीर, बर आदि वृक्ष, भाड़ी आदि को खाते हुए भा भाग्यवश शहर के छूते को प्राप्त कर हो लेती है ॥ ७२२ ॥

का स्त्री न प्रणयिवशा, का विलासितयो मनोभवविहीना ।

को धर्मो निरुपशम, किं सौर्य वल्लभेन रहितानाम् ॥ ७२३ ॥

ऐसी कीन सी स्त्री है जो मत्त के अर्धीन नहीं ? ( सन मत्त के अर्धीन है ), काम से रहित विलास कौन से हैं ( सन विलास कामुक हाते हैं ), जिसम शान्ति नहीं ऐसा कौन सा धर्म है ( सब धर्मों म शान्ति है ), प्रिय स रहित कौन सा सुर ( सब सुर प्रिय के साथ में ही ) है ॥ ७२३ ॥

स्वाच्छन्द्यफलं बाल्यं, तारुण्यं स्वचिरसुरतभोगफलम् ।

स्वविरत्वमुपशमफलं, परहितसपादनं च जन्मफलम् ॥ ७२४ ॥

बाल्यावस्था का फल हा स्वच्छन्दता है, तरुणावस्था का फल सुन्दर सम्भोग, वृद्धावस्था का फल शान्ति और ब्रम का फल दूसरों का हित करना है ॥ ७२४ ॥

१ पराधीना निद्रा परपुरुषचिन्तानुसरणम् ।

मुद्विष्यन्त्य हास्य रुदितमपि शोकेन रुदितम् ।

पथे न्यस्त काय करनदशनैर्भिन्नवपुषा—

महो कष्टा वृत्तिर्गति गणितानां बहुमया ॥ चाखयदनीतिसार

२ कामवत्त्र में कहा है—

काम च यौवने ( २।१।२।३ ), स्वविरं धर्ममोक्षं च, ( २।१।२।४ ) ।

अभिदधतीमिदमालीभवकरणं गृहीतयेव भूतेन ।

यौवनसुप्तेन सार्धं मयैव यूय परिच्छिन्ना ॥ ७२५ ॥

सखी से कही उपर्युक्त आर्या को सुनकर मानों मुझमें भूत का आवेश हो गया हो मैंने आपके साथ मे यौवन सुप्त का अनुभव किया ॥ ७२५ ॥

अधुनाऽनुतापपापकमध्यगता पन्थमानसवांगी ।

निष्फलजन्मप्राप्तिर्जीवाम्युच्छ्वासमात्रेण ॥ ७२६ ॥

अत्र विरह काल में पश्चात्ताप रूपा अग्नि ने बीच में पूर्ण रूप में जलती हुई, निष्फल जीवन से केवल श्वास लेती हुई जी रही हू ॥ ७२६ ॥

स्थानेषु येषु युष्मत्सगत्या क्रीडित चिर घृत्या ।

तानि स्मरु वीक्ष्यमाणा भवामि कण्ठस्थितप्राणा ॥ ७२७ ॥

आपके साथ जिन स्थानों में मन सतोष के साथ देर तक आनन्द किया था, उन स्थानों को देर देरकर गले में प्राणों का रोने हुए हूँ ॥ ७२७ ॥

अन्यवशेन विसृज्या वृत्तभूपा यन्त्रसुत्रसंचारा ।

दारुमयीव प्रतिमा विदधामि विडम्बना वह्नी ॥ ७२८ ॥

निश्चय होकर दूसरों के द्वारा की हुई वशभूपा से यत्र यत्र से हिलती जुलती कठपुतली की भाँति मैं बहुता की हँसी या पाव उनी हुई हूँ ॥ ७२८ ॥

यदि नामोदरभरणप्राप्त्यै कुरुतेऽन्यपुरुषसश्लेषम् ।

तदपि न पुष्टिर्भूगया अपिबन्त्या अ (आ) रविन्दमकरन्दम् ॥ ७२९ ॥

यद्यपि भुगी केवल पेट भरने के लिये ही दूसरे पुरुषों का आलिंगन करती है, तथापि उसका सतोष तो कमल के मकरन्द के पीन से ही होता है ॥ ७२९ ॥

आस्तामपरो लोक क्रीडापेक्षी परापदि पीत ।

व्यसनार्णवे पतन्ती न वारिता परिजनेनापि ॥ ७३० ॥

दुनिया तो तमाशा देवती है तथा दूसरों के दुःख में प्रसन्न होती है । दुःख में गिरती हुई मुझको सम्बन्धी बनों ने भी नहीं रोका, औरों की बात छोड़ दो ॥ ७३० ॥

किं वा बहुभि कथितै, सम्प्रति हि मयाऽपि नियमिता बुद्धि ।

स्थास्यामि सन्नियुक्ता भवद्गृहे प्रेष्यभावेन ॥ ७३१ ॥

अधिक कहने से क्या लाभ । अत्र मैंने भी दृढ निश्चय कर लिया कि आपके घर में ही नौकर बनकर रहूँगी ॥ ७३१ ॥

इति नेत्रादिविकारवशमुपनीतं प्रलीनवैर्यान्त्रम् ।  
मारप्रहाभिभूतं परिमृष्टप्राङ्निराकृतिग्मरणम् ॥ ७३२ ॥

इस प्रकार नेत्र विक्षेप आदि अनुराग सूचक-भोहोत्सादन विलासों से उसके वैर्य रूपा अस्त्र को व्यर्थ बनाकर, अपने वश में ले आवे । कामदेव से पीड़ित होने पर वह पहले मित्रा हुआ सत्र अपमान भूल जायेगा ॥ ७३२ ॥

प्रादुर्भूतरिरंसं क्षणे क्षणे जघनदेशगतदृष्टिम् ।  
पम्वाभ्रमिव विमांस्यसि पूर्ववदाचूष्य मुधु निःशेषम् ॥ ७३३ ॥  
( युग्मम् )

हे मुधु ? रमणेच्छा ने उत्पन्न हो जाने पर, थोड़ी थोड़ी देर में जघन देश पर दृष्टिपात करने हुए, उमंगों, पके हुए ग्राम का भोंकि पहले की तरह चूमकर निर्जन हो जाने पर निकाल देगी ॥ ७३३ ॥

न्वशरीरामिपदिग्धं वक्रस्मितदृष्टिपातवाग्दृशम् ।  
प्रक्षिप्याकृत्य जडं स्फुरणेन विवर्जितं मुपरिपुष्टम् ॥ ७३४ ॥  
हन्तद्वयान्तरागतमुपचारपरिव्ययेन संरुह्य ।  
भुक्त्वा यावन्मांसं त्यज्यसि चर्मास्थिशेषितं मत्स्यम् ॥ ७३५ ॥

अपने शरीर रूपा मांस को [नसी में] लगाकर, उपहास सूचक मुस्कराना, वक्र दृष्टिपात—कटाक्ष, एवं वक्रोक्ति रूपा मदिश को पँकड़-मूरं, गति रहित, अतिशय पुष्ट मछली कामुक को त्वीचकर दोनों हाथों के बीच में पकड़कर ( कामुक का छाती से आलिंगन करके ); अनुकूल आचरण से, बेशरार मछाले से बनाकर ( कामुक को अनुकूल आचरण-व्यवहार आदि से वश में करके ), मांस को सम्पूर्ण रूप में खाने ( कामुक का सब धन लेकर ), चर्म और अस्थि मान रहने पर ( कामुक के निर्जन होने पर ) पँक देगी ( कामुक को निकाल देगी ॥ ७३४-७३५ ॥

शृणु मुश्रोणि यथाऽस्मिन् समलेश्वरपादमूलमंजया ।  
प्रवराचार्यदुहित्रा राजसुतरचर्वितरच मुत्तश्च ॥ ७३६ ॥

१. जघन—मगस्य माला मयनं विलोणे वृहन्मांसकम् ।

मृदुलं मृदुरीमाद्यं क्षिप्यावर्त्तमीदितम् ॥

२. विस्तारितमकरकेतनपीथरेख छीमंजित वदिमानन्न भवान्बु राशी ।

येनाधिराजतदधरामिपञ्चोक्षमर्त्यमत्स्यान् विहृष्य विपचत्यनुरागवद्भौ ॥

हे सुन्दर नितम्ब वाली! सुनो, प्रवर आचार्य की कन्या एवं कमलेश्वरपाद नामक किसी मठाधीश से उत्पन्न मंजरी ने इसी वाराणसी में राजपुत्र का भोग करके-सब वन लेकर धक्का दे दिया था। (कमलेश्वर पाद से उत्पन्न एवं प्रवर आचार्य की कन्या के नाम से प्रसिद्ध व्यभिचार से उत्पन्न होने के कारण वह भी व्यभिचारिणी थी—यह सूचित किया) ॥ ७३६ ॥

आसोच्छ्वासिहभटो नाम्ना नृपतिर्महोयसां श्रेष्ठः ।

तस्यात्मजोऽधितस्थौ (ष्टौ) निवेशनं देवराजसंबद्धम् ॥ ७३७ ॥

महान् पुरुषों में श्रेष्ठ सिंहभट नामक एक राजा था, उसका पुत्र समर भट देवराज से सम्बद्ध (पाठान्तर में देवराष्ट्र-देवगिरि के पास) सेना शिविर में रहता था ॥ ७३७ ॥

स कदाचिद्दृपभध्वजदिदृक्षया परिमिताम्रपरिवारः ।

अनुवर्तमान आगात्तास्त्रयोदीर्णवेषचरितानि ॥ ७३८ ॥

समरभट कभी वृषभध्वज शिवजी की पूजा देखने की इच्छा से, थोड़े से विश्वसनीय साथियों के साथ, युवावस्था के योग्य खिलते हुए वेप-सनोहर वस्त्र अलंकार आदि धारण करके, युवावस्था के योग्य अवलोकन प्रलोभन आदि कार्यों को करते हुए, काशी विश्वनाथ मन्दिर में पहुँचा ॥ ७३८ ॥

मूर्धत्रिभागसंस्थितवृहदम्बरचीरकेशसंयमनः ।

अल्पाच्छगात्ररागो घनकुंकुमलितकर्णकेशाम्रः ॥ ७३९ ॥

समर भट का वेप—एक बड़े भारी रूमाल से कानों के ऊपर शिरका १/३ भाग दँधा हुआ था, शरीर पर थोड़ा और स्वच्छ अंगराग पुता था, बालों के सिरों पर तथा कान में गाढा केशर लगा हुआ था ॥ ७३९ ॥



धृतवेत्रदण्डमूर्चकपरिवेष्टितसासिवेनुसङ्ग्रह ।

मृदुतरपटिकावरणं शब्दोल्लसच्चुर्चुरांगचरणत्रः ॥ ७४२ ॥

हाथ में त्रेंट की छड़ी थी; जिसका शिरोभाग कमर में बँधे बन्ध में लगा था; कमर में कटारी और तलवार लटक रही थी । कोमल छोटा बन्ध—उत्तरीय दुपट्टा छोटा हुआ था; पैरों में चुर-चुर करने वाला जूता पहने हुए था ॥७४२॥

विश्वनाथ मन्दिर में आते हुए विटों की बात-चीत :—

गम्भीरेश्वरदास्यां लग्नः किल तव वयस्यको घोरः ।

प्राप्यति साऽपि दुराशा वर्षत्रितयेन यन्मया प्राप्तम् ॥ ७४३ ॥

वीर नामक तेरा भिव गम्भीरेश्वर नामक वेश्या ( अथवा गम्भीरेश्वर नामक देवालय की देवदासी ) में आसक्त हुआ है, वह उसी प्रकार से निष्फल होगा—जैसे मैं तीन साल तक उसके लिए कोशीश करके निष्फल हुआ हूँ ॥७४३॥

दर्शयति दिशः कलिता अमृतगभरितं करेऽवतारयति ।

सुरदेवि चन्द्रवर्मा निर्वस्तुकवाक्प्रपंचेन ॥ ७४४ ॥

हे सुरदेवि ! चन्द्रवर्मा व्यर्थ की बातों का बाल पैना कर दिशाओं को फलवाली दिखाता है और चन्द्रमा को हाथ में लाता है; सरता हाथ पर उगाता है, बातें ही बनाता है—उनमें कुछ सार नहीं ॥७४४॥

त्वामनुयान्तं सम्प्रति पश्यामि कुरंगि वसुपेणम् ।

मुनिरूपिता भविष्यति विपमा गुडजिह्विका तस्य ॥ ७४५ ॥

हे कुरङ्गि ! वसुपेण को तुम्हारे पीछे लगा अब देखती हूँ; उसकी मीठी वाणी कैसी झूठी है, यह तुझे भी पता लग जायेगा ॥७४५॥

वंचयति जनं योऽसौ हरिणि हरो धूर्तताभिमानेन ।

लिखति शतं दशवृद्धया स निमग्नस्तरलिकावर्ते ॥ ७४६ ॥

हे हरिणि ! धूर्तता के अभिमान से जो यह हर मनुष्यों को एक सौ के स्थान पर एक सौ दस लिखकर ठगता है; वह तरलिका के भँवर में—चक्र में पँस गया ॥७४६॥

गृह्णासि यत्पटान्ते मम पश्यत एव मन्द मदिराक्षीम् ।

अत आद्ययोरवश्यं सा चक्षति नोक्तमन्तरं भक्ता ॥ ७४७ ॥

मेरे देखते हुए जो तू मदिराक्षी का प्रांचल पकड़ता है; हे मूर्ख ! हम दोनों की गोपनीय बात को वह अनश्य कहेगी ॥७४७॥

१. आधूर्णमभिमन्या या क्षामा चाद्रितनारका ।

रतिर्विभसितांगा मांदरा तरणे मरे ॥

योऽयं गृहीतवृत्तिकः कुशाकर्णो विधृतदण्डकापायः ।  
 लोकस्पर्शांशकी कृतापसारो विलोकयन् पार्श्वो ॥ ७४८ ॥  
 कुर्वाणो मौनव्रतमुत्पादितसकलवैप्रावप्रीतिः ।  
 हरिशासनं प्रपन्नस्त्रिपुरान्तकदर्शनापदेशेन ॥ ७४९ ॥  
 स्त्रैणं पर्यति युक्त्या साकांक्षं वर्जितान्यजनदृष्टिः ।  
 कुमुदिनि मम हृदयगतं भवितव्यं व्याजलिङ्गिनाऽनेन ॥ ७५० ॥  
 ( अन्तर्विशेषकम् )

सन्यासियों का आसन लिये, कानों में कुशा लाये; दण्ड और कापाय-  
 गेरुवा वस्त्र धारण किये; मनुष्यों से स्पर्श न हो जाये इसलिए लोगों को दूर  
 हटाकर-दायें-बायें देखते हुए; मौनव्रत धारण करके सब वैष्णवों का श्रद्धा-  
 भाजन बना, मोक्ष की प्राप्ति के लिए विष्णु के शरण में पहुँचा है, यह यह  
 दृष्टी [ अथवा कुशाकर्ण नामक साधु ] महादेव के दर्शन के बहाने से, दूसरे  
 मनुष्यों से श्रद्धा बचाकर उन्हें चाव से स्त्रियों के समूह को देख रहा है, हे कुमु-  
 दनी ! इस कपट घेपधारी साधु से अवश्य मेरी मनोकामना पूरी होनी  
 चाहिए ॥ ७४८-७५० ॥

पर्यत्यदृश्यमानो, निरीक्षितो वीक्षते परां ककुभम् ।  
 व्रूते किञ्चित्ससृष्टमभियुक्तो भवति कीलितध्वानः ॥ ७५१ ॥

अभियुक्त व्यक्ति स्त्री को देखते हुए कोई न देखे, इस प्रकार से श्रद्धा  
 बचाकर देखता है; पकड़ा जाने पर खाली दिशाओं को ( इधर-उधर ) देखने  
 लगता है, असृष्ट अभिलाषा सूचक बात करता है, मूछने पर मर्गई  
 आवाज में बात करता है ( या मौन धारण कर लेता है ) ॥ ७५१ ॥

न जहाति सभासन्नं, मोत्सहते पार्श्वगोचरे स्थातुम् ।  
 एष मनुष्यो मन्ये निष्पतिभः सामिलापश्च ॥ ७५२ ॥  
 ( अन्तर्गुणलक्षम् )

पास में बैठा होने पर उठना नहीं चाहता, समीप में खड़ा होना पसन्द  
 नहीं करता, ऐसा मनुष्य प्रतिभा ( मुझ ) रहित एष रमणी समागम के लिये  
 इच्छुक होता है, ऐसा मैं मानती हूँ ॥ ७५२ ॥

तैऽतीताः सलु दिवसाः क्रियन्ते नर्म त्वया ममं येषु ।  
 अधुनाऽऽचार्यानी त्वं पाशुपताचार्यसंश्रद्धात् ॥ ७५३ ॥

वे दिन चल गये, जिन दिनों में तुम्हारे साथ दास-वहिास किया जाता था ।  
 पाशुपत आचार्य से सम्बन्ध होने के कारण तुम भी अब आचार्यानी हो गई ॥ ७५३ ॥

भ्रमसि यद्येत् तावत् कुर्वाणो युवती पल्लवप्रहणम् ।

लोलिकदास न यावन्नरदेवी पानिका प्रवृत्ति ॥ ७५४ ॥

हे लालिक दास ! जब तक नरदेवी प्याऊ पर नहा जाती, तब तक तुम युव  
तियों के आंचल को पण्ड कर इच्छानुसार घूमते रहते हो ॥ ७५४ ॥

एवप्रकारवाच्यप्रोक्तचित्चेटिकासमासीर्णम् ।

सेवाचतुरपुरसरविजनीकृतवल्म देवकुलम् ॥ ७५५ ॥

( आदिमहाकुलकम् )

इस प्रकार का सारी रातें सुनते हुए नि और चेटिका-शक्तियों से भरे,  
नौकरों द्वारा खाली रनाये मार्ग से मन्दिर में पहुँचा ॥ ७५५ ॥

सपादितहरपूनो निन्दुरयाष्टीकनियमिते लोके ।

त्वरितनियोगिस्थापितभासनमध्यास्त समरभट ॥ ७५६ ॥

निन्दुर दण्डभारिया द्वारा जन-समूह न रोक दिये जाने पर, महादेव की  
पूजा करन, सेवकों द्वारा चलाये गये निन्दुराये आसन पर समरभट बैठ  
गया ॥ ७५६ ॥

अप्रोपविष्टनर्तकराशिग्गातृप्रकाशयुवतिगण ।

श्रेष्ठिनमुखरणिग्जनदौकिताम्बूलकुसुमपटवास ॥ ७५७ ॥

उसके सामने में नर्तक, वेणु-वाजक, गायक, वक्ष्यायें बैठ गईं । प्रमुख सट  
तथा वणिक् समूह पान, सुनाउ-पूल, इन आदि सुगन्ध लहर आये ॥ ७५७ ॥

विबिधविलेपनसरदितचक्रधरसूदगधारिणा शून्य ।

प्रष्टत आत्तकृपाणै शराररक्षैश्च पिश्वस्तै ॥ ७५८ ॥

नाना प्रकार के अनुलेपनों से चित्रित, चक्र ( अगुली पर घुमा कर पैका  
जाने वाला अक्ष ) तलवार का धारण किए, तलवार खांचे निधासनाय अङ्क  
रकर उसके पीछे खड़े थे ॥ ७५८ ॥

ताम्बूलकरकभृता सन्दशगृहीतवीटिकाग्रहणे ।

ईपत्प्रष्ट कुर्वन् मन् सटकामुरेन वामेन ॥ ७५९ ॥

ताम्बूल की पिगरी का धारण करने वाल क हाथ से पान का बाडा लाने के  
लिए अंगूना और अगली दो अगुलियाँ का मिनाकर मुन्दर रूप में धीमे से धागा  
सा छूते हुए उसने पान लिया ॥ ७५९ ॥

१ सदस-चिमटा-उसके आकार में-सदस का लक्षण-

तत्रचगुणयोगावराहस्य पदा भन्ते ।

अमुप्रवहमप्यस्य स सदस इति श्रुत ॥

पार्श्वस्थितनर्मप्रियसचिवन्यस्तपूर्वतनुभागः ।

पप्रच्छ कुशलवार्ता स वशिग्जननर्तकप्रभृतीन् ॥ ७६० ॥

( कुलकम् )

अपने बगल में बैठे नर्म प्रिय सचिव ( जिसके साथ खुले रूप हास परिहास हो सकता था ) की गोद में शरीर के ऊपर के भाग—शिर को रखे हुए—वशिग्जनों एवं नर्तकों से कुशल मगल पूछने लगा ॥७६०॥

अथ वैतालिक उच्चैरुपसंहृतलोककलकले धीरम् ।

अभितुष्टाव तमित्थं प्रसन्नगम्भीरया घाचा ॥ ७६१ ॥

इसके पीछे जन-समूह का शोर शान्त हो जाने पर; स्वस्थ मन वाले राज-पुत्र को वैतालिक ने प्रसन्न ( विमल-कोमल ) एव अर्थ से भरी ऊँची आवाज से इस प्रकार से प्रसन्न किया ॥७६१॥

जय देव परधलान्तरु गुरुचरणाराधनैककृतचित्त ।

वरवनिताजनमोहन दारिद्र्यतमप्रचण्डकरजाल ॥ ७६२ ॥

हे देव आपकी जय हों, आप शत्रु सैन्य के लिए मृत्यु रूप हो, गुरुजनों की सेवा में एकाग्र चित्त रहने वाले हैं, सुन्दर वनिताओं को मोहने वाले, निर्धनों की अन्वकार रूपी दरिद्रता को नष्ट करने में सूर्य की भांति हैं ॥७६२॥

रणवीर-वंशभूषण गुरु-वसुधादेव-पूजन-प्रह्व ।

शरणागताभयप्रद हितबान्धवबन्धुजीवमध्याह्न ॥ ७६३ ॥

रणवीरों के वंश के भूषण ! गुरु-ब्राह्मणों की पूजा में नम्र, शरणागत को अभय देने वाले, हित चिन्तक, सम्बन्धीजन, मित्रों के लिए दुपहरिया के फूल की भाँति हो ॥७६३॥

तादृक् प्रतापदहनः स तावको व्याप्तगगनदिवचक्रः ।

दृष्टो जलायमानो रिपुवनितातिलकशोभासु ॥ ७६४ ॥

आपका सम्पूर्ण दिशाओं में फैला प्रताप ऐसा है कि उससे शत्रु नियों की तिलक भी पानी में धुल सा गया है—पोंछ गया है, वे विभवा हो गई हैं ॥७६४॥

कटकामुख - कटकामुख—तत्रेनीमपमानये पुंशोऽङ्गुथेन पीडयते ।

यस्मिन्ननामिद्यायोगः स हस्तः कटकामुखः ॥

पुंशु—शरस्य पत्रपाली ।

१. वेताल—तत्प्रमहरकयोग्ये रागीमन्तराजवातिभिः रक्षोकेः ।

• सरमममेव विनालं गयन् वैतालिको भवति ॥

एष विरोप. स्पष्टो बह्वेश्व त्वत्प्रतापब्रह्मेश्व ।

अंकुरति तेन दग्धं दग्धस्यानेन नोद्भवो भूय ॥ ७६५ ॥

अग्नि और आपके प्रतापअग्नि में यह अन्तर देखने में आता है, कि अग्नि से जली बनस्यति फिर अंकुरित हो जाती है, परन्तु आग्ने प्रतापअग्नि से जली वस्तु फिर अंकुरित नहीं होती ॥७६५॥

श्रीफलभुक् पत्रवृत्तो विप्रहरसिको विमुक्तशस्त्ररतिः ।

राज्यस्थिति न मुंचति हृतलक्ष्मीकोऽपि तव विपक्षगणः ॥ ७६६ ॥

साम्राज्य सुख का उपभोग करनेवाला, वाहनां से युक्त, युद्ध का प्रेमी, शस्त्र का त्याग करने वाला शत्रुसमूह, लक्ष्मी ऐश्वर्य का हरण हो जाने पर भी राज्यस्थिति को नहीं छोड़ता । ( मित्व फल को पाने वाला, पत्तों से युक्त, शरीर की रक्षा में प्रेम करने वाला; शत्रु त्याग करके शत्रुगण लक्ष्मी का हरण होने पर भी राज्यस्थिति को नहीं छोड़ता ) ॥७६६॥

ददतो वाञ्छितमर्थं सदाऽनुरक्तस्य तव गृहं त्यज्त्वा ।

स्त्रीचापलेन कीर्तिर्न प्राप्तका गता ककुभः ॥ ७६७ ॥

इच्छित वस्तु का दान करने के कारण, सदा स्नेह रखने वाले आपके घर का त्याग करके; स्त्री रममाण की चमलता से ही कीर्ति अर्द्धियो—स्तुति करने वालों के द्वारा सब दिशाओं में फैल गई ॥७६७॥

भवतो भवतो धैर्यं, तेन हि भिन्नोऽन्धको रिपुः प्रसूतः ।

मुक्तास्त्वया तु बहवो रिपवोऽपि प्रेक्षकाः समरे ॥ ७६८ ॥

आप में शिव से भी अविद्व धैर्य है, क्योंकि शिव ने अतिशय नम्र बने अपने शत्रु अन्धक का मां यथ किया था । आपने तो युद्ध में बहुत दूरक शत्रुओं को भी छोड़ दिया ( लड़ने वाले शत्रुओं को तो जमा कर ही दिया ) ॥७६८॥

अतता जगतीमखिलामिदमाश्चर्यं मया परं दृष्टम् ।

धनदोऽपि नयननन्दन परिहरति यदुग्रसपक्वम् ॥ ७६९ ॥

हे आँवों को आनन्द देने वाले ! सम्पूर्ण प्रप्यों का भ्रमण करते हुए मैंने यह आश्चर्य देखा कि धन देने वाले होने पर भी आपका उग्र पुरुषों के साथ सम्बन्ध नहीं । ( धनद-बुधेर, उग्र-महादेव, बुधेर और महादेव का मैत्री प्रसिद्ध है, यथा—'मन्या देव धनपतिसस्र यत्र साक्षाद् वसन्त'-मेषदूत-७६; 'बुधेरस्य मरुसस्रो'-अमरकोश ) ॥७६९॥

इदमपरमद्भुततमं युवतिसहस्रैर्विलुप्यमानस्य ।

वृद्धिर्भवति न हानिर्यत्तव सीभाग्यकोपस्य ॥ ७७० ॥

यह भी बहुत बड़ा आश्चर्य है कि तुम्हारे सौभाग्य कोप का हजारों युवतियों द्वारा उपभोग करने पर भी उसमें किसी प्रकार की कमी नहीं होता, अतितु और भी अधिक वृद्धि होती है ॥७७०॥

अपर विरमयजनन घवलत्व नायाति यद्भवत ।

ललनालोचनकुवलयदलत्विपा शवलितम्यापि ॥ ७७१ ॥

यह दूसरा आश्चर्य है स्त्रियों के नेत्रकमलो की काति से कर्बुरित होने पर भी तुम्हारी श्वेतिमा लुप्त नहीं हाती, वैसा की वैसी बनी रहती है ॥७७१॥

हृदयेषु कामिनीनामेकोऽनेकेषु वससि येन त्वम् ।

जनक कुसुमास्त्रभृत् पुरुषोत्तम तेन विश्वरूपोऽसि ॥ ७७२ ॥

क्योंकि तुम एक होने पर भी बहुत सी स्त्रियों के हृदयों में रहते हो, इसलिए तुम कामदेव के जनक, पुरुषोत्तम, विश्वरूप नारायण हो । ( पुरुषोत्तम कृष्ण, कुसुमास्त्रभृत् प्रद्युम्न, कृष्ण प्रद्युम्न के पिता हैं, आप भी काम का उद्दीप्त करते हैं, इसलिए आप भी कृष्ण नारायण हैं ) ॥७७२॥

किं वहसि वृथा गर्वं प्रियोऽहमिति योपिता नराधीश ।

काक्षन्ति स्म मुरारि षोडशगोपीमहस्त्राणि ॥ ७७३ ॥

हे राजन् ! किसलिए व्यर्थ का यह अभिमान करते हो कि मैं स्त्रियों का प्रिय हूँ—मुझे स्त्रियाँ चाहती हैं, यह व्यर्थ का अभिमान भिसालण करते हो । कृष्ण को सोलह हजार गापियों प्रेम करती थीं ॥७७३॥

कार्पण्येन ययाचे मत्समये यो बलि हृषीकेश ।

न स भवति समो भवता दानैरुनिपत्यहृदयेन ॥ ७७४ ॥

यह व समय दीनता से विष्णु ने बलि से जो भात माँगी थी, उसके कारण वह निरन्तर दान करने वाले आपने समान नहीं हो सकता ॥७७४॥

भूमिभृतामुपरिस्थित उन्नतये सकलनीत्रलोकस्य ।

दृष्ट सन्तापहरो मेघवदासारदानदक्षत्वम् ॥ ७७५ ॥

सम्पूर्ण ससार की उन्नति व लिए आप सत्र राजाग्रा के ऊपर स्थित हैं । मेघ की भाँति धारा रूप में दान की शृं करण आप ससार के सन्ताप दुःखों को दूर करते हैं ॥७७५॥

चहुमार्गो भद्रयुत बुसृतिपरो गोत्रभेदकरणपटु ।

गगानलप्रवाह पुण्यवशात्केवल तव समान ॥ ७७६ ॥

बहुत मार्गों वाला, कल्याणकारी, पृथ्वी पर पैलने वाला, पर्वतों के तोड़ने वाला गंगाजल ही पुण्यशाली होने से आप के समान है। आपके बहुत से मार्ग-व्यवहार रीति हैं, आपके पास भी भद्र जाति के हाथी हैं, आप भी पृथ्वी पर पैले हैं ( कुसति शठता, दुष्टों से शठता करते हैं ), कुलों के नष्ट करने में चतुर हैं ॥७७६॥

दुर्व्यवहारोत्पत्तिर्मोघ्यप्रसरो विवेकिताप्रसहः ।

एकस्त्वं दोषहः कृती कृती येन कलिकालः ॥ ७७७ ॥

अकेले आप ही ऐसे दोषह-दोषों को जानने वाले एवं निवारण करने वाले परिदृष्ट हैं, जिनके कारण दुष्ट क्रियाओं का जनक, मूढ़ता को पैलाने वाला, अविद्वेकी कलिकाल-कलियुग भी सत्ययुग बन गया ॥७७७॥

सुगतोऽपि नात्रिविमुक्तो, वृषध्वजोऽपि न विपादितायुक्तः ।

उदात्तशस्त्रोऽपि रिपी कथमसि सन्नासिको जातः ॥ ७७८ ॥

सुगत—शोभन मति वाला होने पर भी अति शूर होने के कारण युद्धों से मुक्त नहीं मोड़ते, धर्मप्रधान होने से विपाद अनुताप से युक्त नहीं, आप उत्तम नासिकायुक्त हैं। ( सुगत-बौद्ध दयाशील होने के कारण युद्ध से विमुक्त रहते हैं, वृषध्वज महादेव, विप को खाने वाले हैं, शत्रु के शस्त्र उठाने पर आप किस लिए तलवार को रोके हुए हैं-सन्नः प्रतिबद्धः असिः-विरोधालंकार ) ॥७७८॥

सन्मणिरनेकभोगो गुरुभारसहः स्थिरात्मतास्थानम् ।

नरदेव चित्रमेतद्यदशेषगुणैस्त्वमाश्लिष्टः ॥ ७७९ ॥

हे नरदेव ! यह आश्चर्य है कि आप में शेषनाग के सब गुण उपस्थित हैं, शेषनाग में उत्तम मणि है, उसके हजारों पत्थर हैं, पृथ्वी के मार को उठाये हुए हैं, अपने स्थान पर स्थिर है, आप के पास भी उत्तम श्रेष्ठ मणि है, अनेक प्रकार का—नाना प्रकार का मोग-सुख प्राप्त है, पृथ्वी का आप पालन करते हैं, धैर्य-स्थिरता दृढ़ता के स्थान हैं, इस प्रकार से शेषनाग के सब गुण आप में हैं ॥७७९॥

प्रकृतितापोर्येन कृता जघन्यवर्णस्य गौरवापत्तिः ।

जघनचपला यदार्या स पिंगलस्ते कथं तुल्यः ॥ ७८० ॥

जिसने स्वरूप से लघु ( हीन जाति ) बनाया, अन्तिम वर्ष ( द्राक्षणादि वर्षमें अन्तिम एवं अक्षर ) शूद्र को गौरव दिया (अन्तिम अक्षर को मुक्त किया)

१. यथा सुभ्रुत में—महाणां पृष्टिवर्षाणां प्रसुतानामनेकधा ।

दुर्गराणां सदस्यस्य बलं समधिगच्छति ॥

वह पिंगल ( छद्दशास्त्र के कर्ता ) जघनचपला ( व्यभिचारिणी स्त्री, एव जघन चपला नामक आर्या छन्द ) के बराबर कैसे हो सकते हैं ? ॥७८०॥

वस्य न जातिर्नात्मा नार्थज्ञान न मानसे प्रशम ।

भवसि भयसाररत्न तेनाद्वयवादिना सहस्र ॥ ७८१ ॥

भगवान् बुद्ध से पृथक् करने स्तुति करता है—आप किसके सजातीय बन्धु नहीं हैं, किसके मित्र नहीं हैं, आपसे किसको धन का लाभ नहीं होता, आप किसके मन में नहीं ही, [ आप सबने सजातीय बन्धु हो, सबको आप से धन मिलता है और सबके मन में रहते हों ] इससे आप ससार के उत्तम रत्न हो, इस कारण आप अद्वयवादी विज्ञानवादी बुद्ध के असमान हैं। आपके साथ उसकी उपमा नहीं दी जा सकती ॥७८१॥

तत्रापि वृद्धियोगस्तस्मिन्नपि पुरुषगुणगणरथाति ।

परिभाषा तत्रापि व्याकरणान्नातिरिच्यसे तेन ॥ ७८२ ॥

व्याकरणशास्त्र में भी वृद्धि का योग रहता है, व्याकरणशास्त्र में पुरुषों के गुणों के गणों की प्रसिद्धि है, व्याकरण में परिभाषा नियम भी है, इस प्रकार आप व्याकरण से भी अधिक नहीं हैं [ आप में वृद्धि-उत्कर्ष है, आपमें पुरुष के शौर्यादि गुणों का समूह रहता है, आप में भी परिभाषा-नियम है, इसलिये व्याकरणशास्त्र से भिन्न नहीं है। व्याकरण में आदैच् को वृद्धि कहते हैं, व्याकरण में प्रथमादि पुरुष, गुण नामक संज्ञा, भ्वादि आदि गण रहते हैं, व्याकरण में परिभाषा नियम है, यथा 'इको गुणवृद्धी' यह परिभाषा व्याकरण

१ जघनचपला--आर्याछन्द का भेद है--देखिये ३३३ आर्या की टीका, इसका लक्षण--

छप्मैत्रसप्तगणा गापेता भवति नेह विषमे ज. ।

पद्यो जश्च न छद्यु वा प्रथमार्थे नियतमार्याया ॥

२. अद्वयवादी--विज्ञानवादी बौद्ध के मत में सबके मिथ्या होने से जाति आदि कुछ नहीं है, आप न सब हैं। बुद्ध के पक्ष में जाति, आत्मा, अर्थ ज्ञान-पदार्थों का ज्ञान, मन में चप्रसन्न नहीं आर्याव शान्ति अर्थ है, बौद्धों के अनुसार न जाति है, न आत्मा है, क्षणिक पृथ मिथ्या होने से पदार्थों का ज्ञान भी नहीं, मनमें शान्ति है। उनके मत में बुद्ध धर्म और संघ ये तीन रत्न हैं, ( बुद्ध शरण गच्छामि, धर्म शरण गच्छामि, संघ शरण गच्छामि ), रत्न शब्द दोनों में समानार्थक है।



में लागू होती है—जिस प्रकार से ये बातें व्याकरण म उसी प्रकार आप में भी हैं—इसलिये आप व्याकरण से प्रयत्न नहीं हैं ] ॥७८२॥

निर्व्याजस्तरनोऽपि त्वत्तात्तेपो निरुपमानोऽपि ।

सद्रूपकजातिगुणैर्नार्थं त्व गामलकुरूपे ॥ ७८३ ॥

हे स्वामी आप ! कपट रहित स्तुति द्वारा, मिथ्या निन्दा का त्याग करने से, अनुपमेय होने से, उत्तम रूप, जन्म जन्त शौचादि उत्तम गुणा न कारण प्रथ्वी को एव वाणी को शोभित करते हैं ( गान् का पृथ्वी और वाणी दोनों अर्थ हैं—वाणी कपटरहित स्तुति करती है, मिथ्या निन्दा नहीं करती, अनुपमेय है, उत्तम रूप, माधुर्य प्रसाद आदि जन्म जात गुणों वाली है ) ॥७८३॥

अन्यैव वर्णनैया दूराल्लोकोचराऽस्तिता काऽपि ।

वामो यथैव शत्रुषु मित्रेषु तथैव वामोऽसि ॥ ७८४ ॥

यह आगे कही जाने वाली स्तुति अतिशय विलक्षण ( सप्त लोकों से विलक्षण ) है, आप जिस प्रकार शत्रुओं से निर्रोत हैं, उसी प्रकार मित्रों में भी वाम-सुन्दर हैं ( शत्रु और मित्र दोनों में वाम है—यही विलक्षणता है ) ॥७८४॥

पूजयसि येन गुरुजनमभिनन्दसि येन साधुचरितानि ।

प्रोणयसि येन विप्रान् नृपनन्दन तेन वृषभस्त्वम् ॥ ७८५ ॥

क्योंकि आप गुरुजनों की (माता पिता च्येष्ट माइ की ) पूजा करते हैं, साधुओं के—सत्जन पुरुषों के आचरणों की प्रशंसा करते हैं, ब्राह्मणों को नृत्य करते हैं, हे नृपनन्दन ! इसलिये आप वृषभ—धर्म एव अष्ट हैं । ( वृषभ का अर्थ धर्म और अष्ट दोनों हैं ) ॥७८५॥

दैन्यमिदं यच्छृत्वा धा क्रियते ते रक्षसाऽपि न समस्य ।

न सवलमकरोद्योषिति भवास्तु भुक्ते प्रसह्य रिपुलक्ष्मीम् ॥ ७८६ ॥

गान्धर्व राज रावण के पराक्रम की जा स्तुति मनुष्य करते हैं, वह भी आपने पराक्रम के समान नहीं है, अपितु उससे कम ही है, क्योंकि—रावण ने परल्ली सीता के लिये पराक्रम नही किया था, आप तो शत्रुओं को लक्ष्मी—उनका ऐश्वर्य वनपूर्वक उपभोग करते हैं ॥७८६॥

रमणीय चाटुवचनस्तवन यल्लामहेतुरस्माकम् ।

तत्पतति ते स्वरूपे, यामि, नम सन्तु सीरयानि ॥ ७८७ ॥

१ व्याजस्तुति, आक्षेपालंकार, उपमालंकार, ये अलंकार रत्न प्रसाद समवा माधुर्य, सुकुमारता, अर्थव्यावृत्त, उदारत्व, आज्ञा, कान्ति और समाधि ये वस गुण आपकी वाणी में जन्मसिद्ध हैं ।

हे रमणीय ! श्लाघा परक वचनों से स्तुति करने में हमारा जो घनादि प्राप्त करना लाभ है, वह आप में मिथ्या नहीं, अपितु आप वास्तव में उस स्तुति के योग्य ही हैं। हम जाते हैं, नमस्कार, आप सब प्रकार से सुखी हों ॥७८७॥

श्रुत्वोत्तरमघदत्त वन्दिनमभिनन्द्य साधुवादेन ।

आस्त्व किमाकुलता ते, यास्यसि तुष्टो मया प्रहित ॥ ७८८ ॥

स्तुति का सुनने के पीछे प्रशंसा करने वाले वदी का साधुवाद देकर अभि नन्दन किया, और कहा बैठो, क्या जल्दी है, मुझसे दिये पारितोषिक आदि से प्रसन्न होकर, मेरे कहने पर जाओगे ॥७८८॥

पुनरपि पठ तद्युगल गीतिकर्योर्यत्त्वया पुरा पठितम् ।

कक्षान्तरितेन मम स्थितस्य कुलपुत्रिकारामे ॥ ७८९ ॥

कुलपुत्रिका ( कुलरुन्यका के लिये बनाया घर का उपवन, पीछे इसी नाम से प्रसिद्ध ) उपवन में मेरे रहने पर ड्योड़ी में स्थित होकर पहले तुमने जो दो गीतिकार्यें पढ़ी थीं, उनको एक बार फिर से पढ़ो ॥७८९॥

त्वयि वदति साधुवादं वागियमुन्मुद्रिता बुधसमाजे ।

अभिधायेति पपाठ त्रिस्थानविशुद्धनादेन ॥ ७९० ॥

वन्दी ने कहा—इस विद्वद्गोष्ठी में आपके दिये साधुवाद से मेरी यह वाणी फिर से विकसित हुई ( आपसे मुझे नया प्रोत्साहन मिला )। पढ़ो कहने से मुझे नई प्रोत्साहना मिली। उर-कण्ठ शिर इन तीन स्थानों से शुद्ध स्वर से वन्दी ने गीति पढ़ी ॥७९०॥

एका खण्डनकुपिता, विरासाऽन्या प्रणयमगीलक्ष्यात् ।

काचिन्निकटतरासनमप्राप्य विभर्ति निर्वेदम् ॥ ७९१ ॥

अन्या कलहान्तरिता, नवपरिणयलज्जया परा सहिता ।

रमणीगणमध्यगत स्मरातुर किं करोतु बहुजानि ॥ ७९२ ॥

( सदानितकम् )

[ नायक चतुर (दक्षिण) है वह अनेक स्त्रियों में समान प्रीति रखता है, उसकी] एक अन्त पुर रमणी निराकरण के कारण कुपित है। दूसरी मुदरी प्रणयकी मोंग

१ खण्डिता नायिका—पारदमेति प्रियो यस्या धन्यभोग सिद्धित ।

सा खण्डितेति कथिता धीरैरीर्ष्याकपायिता ॥

सा ६ ३।७२

(ख) निद्राक्यायमुकुब्जीकृतताम्रनेत्रो  
नारीनखप्रणविशेषविचित्रिवाह ।

यस्या कुतोऽपि गृहमेति पति प्रभाते

सा खण्डितेति कथिता कविभि पुराणै ॥ रसमञ्जरी.

की यस्वीकृति से हृष उल्लुक्ता आदि रहित है, प्रणय कुपित है। चौथी स्त्री पास में आसन न मिलने से दुःखी है। चौथी स्त्री प्रेमी से भगडा न्रिये बैठी है। अन्य स्त्री नया पिताह होने से शर्मायी हुई है। इस प्रकार बहुत सी न्रियों में बैठा, बहुत सी पत्नियों वाला कामातुर मनुष्य; क्या करूँ इस चिन्ता में पडा है ॥७६१-७६२॥

अभ्युपपन्नयवबोधकमस्तकचलनं विधाय विकृतभ्रूः ।

नृत्याचार्यमवाद्गोदेतस्मिन्विन्नु संगीतम् ॥ ७६३ ॥

स्वीकृति सूचक रूप में सिर को हिलाकर, भ्रुओं को टेढा करके नृत्याचार्य से पूछा—कि बहो; संगीत कैसा रहा ॥७६३॥

स उवाच ततो यणिजो नेतारो यत्र, यत्र पात्राणि ।

शास्त्र्यायतनं दास्यस्तत्र कुतः सौष्टवं नाट्ये ॥ ७६४ ॥

नृत्याचार्य ने कहा—जब नाटक में मय-प्रिक्रय करने वाले; सीदा करनेवाले बनिये नेता बने; ठगारें भूर्त्ता का स्थान वैश्यायें जिसमें पात्र हों, ऐसे नाटक में सुन्दरता वहाँ से आ सकती है ॥७६४॥

काचिद्वलिना क्रान्ता, काचिन्न जहाति कामिनं रुचिरम् ।

अन्या पानकगोष्ठ्यां नयति दिनं प्रीतकैः सार्धम् ॥ ७६५ ॥

नोत्सृजति सतलमेका पुरुषागमनाशया गृहद्वारम् ।

शूलापालः क्रथयति लब्धोत्कोची रजस्वलामपराम् ॥ ७६६ ॥

कोई तो वैश्या बलवान्—अधिक प्रमुता वाले पुरुष से आक्रान्त है; उसके अर्धीन है। कोई वैश्या सुन्दर कामुक को छोडना नहीं चाहती; कोई दोस्तों के साथ मद्यपान गौठी में बैठी समय व्यतीत करती है। एक जो है, वह कामुक के आने की आशा में घर की देहली छोडना नहीं चाहती। वैश्याभवत् रिश्वत

१. कलहान्तरिता—चाटुकारमपि प्राणनार्थं रोषादपास्य वा ।

पश्चात्तापमवाप्नोति कलहान्तरिता गुप्ता ॥ सा०६० ३।८१.

(ख) प्राणेश्वरं प्रणयकोमलमंजुवाग्भिर्यां चाटुकारमचिराद्वषीयं याति ।

संतप्यते मदनवद्विशिखामद्वैर्वात्पात्रुर्छा कलहान्तरिता दि सा स्यात् ॥

(ग) इसी की भाँति प्रसिद्ध रछोक—

स्नातां तिष्ठति कुन्तलेश्वरमुता, वारोऽङ्गराजस्वसुः

घृते रात्रिरिय त्रिता कमजया, देवी प्रसाद्याऽद्य च ।

इत्यन्त पुरसुन्दरीः प्रति मया विज्ञाय विज्ञापिते,

दंवेनाप्रतिपत्तिगूढमनसा द्विधा स्थितं नाटिकाः ॥

लेकर किसी को रजस्वला बता देता है ( रजस्वला के लिये नृत्य निषिद्ध है )<sup>१</sup> ॥७६५-७६६॥

रगगताऽपि क्षुद्रा शृणोति यदि परिचित गृहायातम् ।

उद्दिश्य चापि कार्यं व्रजति तत प्रकृतमुत्सृत्य ॥ ७६७ ॥

रगशाला म आई हुई वर्या यन् परिचित के घर में आने की खबर सुनती है, तो कोई पहाना बनाकर उपस्थित कार्य को छोड़कर घर की ओर भाग पड़ती है ॥७६७॥

आ तारण्योद्भेदात्कात्ते हृप्रियया न्यस्ता ।

सामानिक्रमध्यस्था कथमन्या समुपयाति परभागम् ॥ ७६८ ॥

जो वर्या जवानी आने के समय से ही सुन्दर युवक में अनुरागन्ती हो गई है, यह सामाजिक जनों के बीच में किस प्रकार से अतिशय शोभनीय प्रशंसनीय हो सकती है ( उसका मन तो सुन्दर युवक को ढूँढने में ही लगा रहेगा, काम में मनोयोग नहा करती ॥७६८॥

चेतोन्तरा न सत्त्व, सत्त्वे सति चारुता प्रयोगस्य ।

न भवति सा वेश्याना भद्यामिपपुरूपनिहितहृदयानाम् ॥ ७६९ ॥

असावधानता से मन एकाग्र नहीं होता मन रु एकाग्र होने पर ही अभिनय म रमणीयता आती है । मद्य मास एव पुरुष में आसक्त मन वाली वेश्याओं से यह सम्भव नहीं ॥७६९॥

वयमपि द्यनिनेतनमनगहर्षे गते त्रिदिवलोकम् ।

आश्रितवन्तो गत्वा तीर्थस्थानानुरोधेन ॥ ८०० ॥

अनग हर्ष ( आहर्ष ) ने स्वर्ग चले जाने पर हम भा तीर्थ स्थान के कारण यहाँ वाराणसी म आकर इस देवालय में ठहर गये हैं<sup>२</sup> ॥८००॥

१ क) शूलति इवक्र यात आत्मशरीर हात शूला पण्ययोपित्—  
सा पालयति इति शूलापाल, वेश्याधिपति ।

(ख) अदृशूना जनदा, शिवशूला इजातय ।

मन्दा कणशूलाया, भद्रन्वत्र वल्लो युगे ॥ हरिवश

अदृमन्नामति प्रोस्त शूलो विक्रय उच्यते ।

शेवा वेद इति प्राक्त कथो मग इतीयते ॥

२ श्री.प के लिये अनङ्गद्वय प्रसिद्ध है—रत्नावली के इस श्लोक के कारण आहर्ष इवद्वानो म अनङ्गद्वय नाम से प्रसिद्ध है—

अनङ्गोऽयमनङ्गस्वमद्य जन्दिप्यात ध्रुवम् ।

यद्नेन न हप्राप्त पाण्डिस्पर्शोस्तवत्तव ॥ रत्नावली १।२२

इह तु कदाचित् किञ्चिद्भृत्तिनिरोधाभिराकृत्या निरुत्साहा ।

रत्नावल्यामेता विदधति करपादविक्षेपम् ॥ ८०१ ॥

यहाँ वाराणसी में जीविका के लिये ही, बिना उत्साह के रत्नावली नाटिका का अभिनय करते हुए हाथ पैरों का चालन करते हैं ॥८०१॥

वत्सेशभूमिकाऽत्या इयमनुकुरुते नरेश्वरवयस्यम् ।

वासवदत्ताचरितप्रयोगमेवा विदधत्यति ॥ ८०२ ॥

यह नयी वत्सेश्वर उदयन का अभिनय करती है, यह नयी राजा के नर्म सचिव वसन्तक का यह नयी वासवदत्ता के चरित्र का अभिनय करने में वासवदत्ता को भी पीछे छोड़ती है ॥८०२॥

उद्यमसाहित्यवशाच्छ्रोभातिशयेन मदनुरन्धेन ।

अनया प्रसिद्धिरामा सिंहलराजात्मजानुकृती ॥ ८०३ ॥

प्रयाग में परिश्रम एवं सहभाग-रन्तवित्ता के कारण एव शोभा का अधिकता से तथा मरे आम्रह से इसने सिंहल राजकुमारी रत्नावली का अनुकरण करने में प्रसिद्धि पाई है ॥८०३॥

विविधस्थानकरचनापरिक्रमं गात्रवलनलालित्यम् ।

काकुविभक्तार्थगिरो रसपुष्टिं वासनार्थैर्यम् ॥ ८०४ ॥

सात्त्विकभावोन्मीलनमभिनयमनुरूपवर्तनाभरणम् ।

मिश्रामिश्रे नाट्ये लयच्युतिं वर्णयन्ति नजय्या ॥ ८०५ ॥

अनेक नाना प्रकार के स्थानों की रचना म किये पैरों व विक्षेप भ्रमण में, अर्गा के माटने में सौन्दर्य को, नाना प्रकार की कण्ठध्वनि से कहे जाने वाली भिन्न भिन्न अर्थ सूचक वाणी की अभिनय आदि द्वारा शृंगारदि रस का पोषण करने में न एव सामाजिक जनों की भावना को दृढ़ करने में, स्तम्भ-स्वेद आदि सात्त्विक भावों का विकास करने में, अभिनय के अनुरूप भूमिका के योग्य वर्तन अंग विक्षेप एव आभरण उपचार धारण करने में, लयच्युति-तालद्रुति में, मिश्र-मेघ नृत्यादि अमिश्र शुद्ध पठनीय नाटक में मन्त्री की प्रशंसा करते हैं ॥८०४-८०५॥

१. काकु—मिश्रकण्ठध्वनिर्धौ काकुस्त्वमिधीयत, काकु वक्रोक्ति, यथा—

इति, स्वया इतमहो निस्त्रिज मद्रुक्,

न त्वादशी परहितप्रददर्शित लोके ।

ध्रान्तामि इन्व शृदुञ्चाहि गता मदर्थं,

सिष्यन्ति कुत्र सुदृशानि विना धमेण ॥

एषाऽभिधानकीर्तनगुणितस्वशरीरकुसुमशररोषा ।  
 सहस्रोद्भिन्नमनोभवभाषदशा सिन्दुवारविचरेण ॥ ८०६ ॥  
 पर्यन्ती घत्सेश्वरमनुकार्यानुकरणभेदपरिमोषम् ।  
 साधुध्वनिमुत्तराननसामाजिकजनमनसु त्रिदधाति ॥ ८०७ ॥

(युगलकम्)

यह मजरी उदयन का नाम मुनते ही अपने शरीर में कामदेव के कोप के बढ़ने से सहसा प्रकृति, काम जय भावदशा-चित्तवृत्ति विशेष के कारण सिन्दुवार वृक्ष के पत्तों में से या उसकी ओट में से पत्तेश्वर-उदयन को देखती हुई, अनुकार्य-रत्नावली का अनुकरण पूर्ण रूप में करन, सामाजिक जनों के सुखों से साधुवाद पाती है ॥ ८०६-८०७ ॥

वत्सपतिमालिषन्ती कामारस्था क्रमेण भजमाना ।  
 वेपथुपुलकस्वेदैराजहति त्रिसष्टुल हस्तम् ॥ ८०८ ॥

काम की प्रत्येक दशा का क्रमशः अनुभव करती हुई, उदयन का चित्र बनाने में-कम्पन, रोमाच, स्वेद हाने के कारण इसका हाथ अस्थिर है ॥ ८०८ ॥

(ख) सात्त्विक भाव—

रज्जुभस्वेदाऽथ रोमाञ्च स्वरभगोऽथ वपथु ।

वैवर्ण्यमधुप्रलय इत्यष्टौ सात्त्विका स्मृता ॥

(ग) छय—ताला-तरालवर्ती य कालाऽसौ छय ईरित ॥

(घ) रस तानमकार के हैं—

१ सात्त्विक रसानुरूपैराद्यापै श्लाकैर्वाक्यै पदैस्तथा ।

नानालकारसयुक्तैर्वाचिको रस उच्यते ॥

२-नेपथ्य—कर्मरूपवयोजात्रिदेशकाद्यानुवर्तिभि ।

मालवभूषणवस्त्राद्यै नेपथ्यरस उच्यते ॥

३-स्वाभाविक-रूप-यौवन छात्रण्यस्यैयं धैर्यादिभिर्गुणै ।

रस स्वाभाविको ज्ञेयः स च जाट्ये प्रशस्यते ॥

(ङ) मिश्र गेय नृत्यादि सहित नाटक—यथा विक्रमोर्वशी,

अभिषेक-रहित पठनीय मात्र—यथा माञ्जरीमाधव ।

१ रत्नावली नाटिका में—तदनेन सिन्दुवारविटपेन अपवारितशरीरा भूत्व प्रचे-

२ यद्यपि मे अतिसाधुत्वेन वेपथे अय अतिमात्र अग्रदस्त, तथापि तस्य जनस्य अन्यो दर्शनोपायो नास्तीति यथा तथा आसिद्धय एव प्रेक्षिष्ये ॥

सदृशोऽप्यनुभावगणे करुणरसं विप्रलम्भतो भिन्नम् ।

दर्शयति निरभिकांचित्तसौख्यं ननु गोचरापन्ना ॥ ८०६ ॥

अभिनय सूक्ष्म प्रदर्शन के कौशल से एक समान दिखाई पड़ने वाले, करुण रस और विप्रलम्भ शृंगार परस्पर भिन्न हैं, इनमें करुण रस संयोग मुद्र की आशा रहित होता है, ( करुण रस में संयोग मुद्र की आशा नहीं रहती, विप्रलम्भ शृंगार में संयोग मुद्र की आशा बनी रहती है, यह दोनों में भेद है ) । निःश्वास आदि श्रुत्वाय दोनों में समान हैं ॥ ८०६ ॥

अस्मिन्दर्शयतीत्यं मंजरिकां साभिलापमवलोक्य ।

परपुत्रं राजपुत्रः किमसाविति वैत्रदण्डेन ॥ ८१० ॥

नृत्याचार्य द्राघ इस प्रकार मजरी को दिखाने पर समरभट ने चाव के साथ मजरी को देखकर; वैत्रदण्ड से झूते हुए पूछा कि "क्या यही है" ॥ ८१० ॥

बुद्ध्वाथ तस्य भावं प्रसारयन्नुवतिसंकथाकेलिम् ।

न्यक्कुर्वन्धारवधूः सचिवः प्रशशांस बन्धकीगमनम् ॥ ८११ ॥

राजपुत्र के मन के भाव को जानकर, मजरी ने अन्य युवती नायिकाओं की कथा का प्रारम्भ करके; धारवधू की निन्दा करते हुए, बन्धकीगमन परदार गमन की प्रशंसा की ॥ ८११ ॥

दाररतिः संततये व्याधिप्रशमाय चैदिकारलेपः ।

तत्पलु सुरतं सुरतं कुन्धप्राप्यं यदन्यनारीपु ॥ ८१२ ॥

सन्तानोत्पत्ति के लिये अपनी पत्नी के साथ सम्भोग किया जाता है, पित्त-

1. मजभूति ने करुणरस और विप्रलम्भ को एक ही कहा है—एक रसः करुण एव निमित्तभेदात्—उत्तररामचरित ३।५१, जिस प्रकार आवर्त और बुद्धुद में बाहर के आकार में भेद है, परन्तु दोनों में एक ही जड़ के अंग हैं; उसी प्रकार करुण और विप्रलम्भ में आकार का भेद है, वास्तव में अन्तः भाव एक है । विप्रलम्भ चार प्रकार का है अभिजाया, विरह, ईर्ष्या और शापजन्य । बुद्धुद शाप के स्थान पर कलह जन्य मानते हैं । दूसरे भाषायां, पूर्वानुराग मान, प्रवास, करुणात्मक चार प्रकार का विप्रलम्भ मानते हैं ।
2. बन्धकी का अर्थ—कुलटा, मुक्ता, पुंरचली, स्वैरिणी है, यह छै प्रकार का है—विदग्धा, मुदिता, शिवाऽनुशयानाऽथ क्षतिता । गुला य बुद्धुद चेति षट्प्रकारोदिता युधैः ॥

ज्वर आदि रोग शान्ति के लिये दासी का आलिगन किया जाता है ।<sup>१</sup> परस्त्रियों में कठिनाई में जो सम्भोग प्राप्त होता है, वही वास्तव में सु-रत मुन्दर रति है<sup>२</sup> ॥८१२॥

स्वव्यापारैकमतेः परचिन्ता नास्ति मे कदाचिदपि ।

पर्यंत्यास्त्वामीदृशमद्य तु मे मानसं व्यथितम् ॥ ८१३ ॥

दूतिका का नायक को परनारी के लिये प्रलोभित करना अपने ही काम में लगे रहने से मुझे दूसरों के विषय में चिन्ता या सोच विचारने का जरा भी समय नहीं मिलता । आज तुमको ऐसा कमजोर देखकर ही मेरे मनको दुःख हो गया ॥८१३॥

यदि वेद्मि तस्य वसतिं सामर्थ्यं यदि भवेत्ततोऽप्यधिकम् ।

तद् गत्वा दग्धविधिं लगुडैः संचूर्णयाम्यधुना ॥ ८१४ ॥

यदि मैं उस ब्रह्मा के निवास स्थान को जान सकूँ और ब्रह्मा से अधिक शक्ति मुझमें आ जाये, तो अभी जाकर टण्डों से उस मुँह जले का सिर फोड़ दूँ ॥८१४॥

वपुरिदमनुपमभीष्टम् यदि विहितं तेन ते धात्रा ।

अनुरूपरमणविरहात् किमिति कृतं वन्द्यं जन्मफलम् ॥ ८१५ ॥

उस ब्रह्मा ने यदि ऐसा मुन्दर यह शरीर बनाया था, तो अनुकूल रमण-विलास लालसा के अभाव में जन्म-फल को निष्फल क्यों किया ( मुन्दर शरीर के अनुरूप विलास भी देना चाहिये था<sup>३</sup> ) ॥८१५॥

शैशवमस्तु जरा वा व्याधिर्वा क्षेत्रियप्रणाशो वा ।

स्वाकारं तारुण्यं न तु कुपतिरुदर्थनाप्रस्तम् ॥ ८१६ ॥

१. अपत्यं धर्मकार्येण शुभ्रपारतिरत्तमा ।

दाराधीनस्तथा स्वर्गः पितृष्णामात्मनश्च ह ॥ मनु—१.२८

(ख) वेपं त्रियाया मुखमेव च वलं क्षोळिम्बराज्जेन सदानुभूतम् ।

(ग) कन्या कौतुकमात्रेण, विधवा संमर्दमात्रार्थिनी,

वेश्या वित्तलक्षवेच्छया, स्वगृहिणी गत्यन्तरामंभवात् ।

वाञ्छन्तीत्यमनेककारणवशात् पुंभिः क्षिपः संगमं,

हृदस्नेहनिबन्धता परवभूः पुण्यैः परैः प्राप्सते ॥

२. स्त्रावण्यदविद्यस्यो न गच्छतः क्लेशो महान् स्वीकृतः

स्वच्छन्दस्य सुखं जनस्य वसतश्चिन्ताऽपरो निर्मितः ।

एषाऽपि स्वयमेव सुखपरमखाभावाद् वराकी हता

फोऽर्धश्चेतसि बेधसा विनिहितस्तन्वीमिर्मा तन्वना ॥



नायिका के प्रति दूती का वचन—स्त्री को यदि योग्य-श्रनुकूल पति न मिले तो इससे यह कहीं अधिक अच्छा है कि उसका बचपन रहे, या बुढ़ाया आजाये, अथवा उसकी किसी रोग या क्षेत्रिय रोग ( राजयक्ष्मा आदि असाध्य रोग ) से मृत्यु हो जाये, ( सारे जीवन भर कुपति रूप पीडा से दुःखी होकर बीना सत्रसे अधिक बुरा है ) ॥ ८१६ ॥

केलि प्रदहति मञ्जा शृंगारोऽस्थीनि चाटव प्राणान् ।

न करोति मनस्तुष्टि दानमभव्यस्य गृहभर्तु ॥ ८१७ ॥

जिसमें मन नहीं लगे ऐसे हीन पति की केलि शृंगारचेष्टा हास्य आदि मञ्जा को जलाती है, शृंगार अस्थियों को, चाटुवाद-नुशासन प्राणों को जला देता है, उसका दिया दान भा मन को प्रसन्न नहीं करता ॥ ८१७ ॥

कुत आगताऽसि कस्मिन् वेत्तामियती स्थिता, किमर्थमिति ।

पृच्छन्नस्वस्थमना जनयति रोही शिर शूलम् ॥ ८१८ ॥

पत्नी के प्रति शंका—कहाँ से आई है, इतनी देर कहाँ लगाई, क्यों देर की, इस प्रकार शक्ति मनवाला स्वामी पूछता हुआ शिर शूल ( सिरदर्द ) को उत्पन्न करता है ॥ ८१८ ॥

यदि भवति दैवयोगाच्चतुर्विपय समुज्ज्वलस्तरण ।

तत्रात्मानं क्षपयति जाया च रटन् गृहस्वामी ॥ ८१९ ॥

यदि भाग्यवश कोई सुन्दर उज्ज्वल शरीर वाला युवा मनुष्य दीप्त जाता है, तो घर का स्वामी अपनी पत्नी को कोसता हुआ अपने माये को पीटने लगता है [ प्रतिदिन पत्नी से भगडा करता है ] ॥ ८१९ ॥

सचिवादे परलोके जनापवादे च जगति बहुवादे ।

दैवाधीने प्रणये न विदग्धा हारयन्ति तारुण्यम् ॥ ८२० ॥

परलोक है या नहीं, इसने सन्दिग्ध होने से, सत्कार म अनेक प्रकार की लोक निन्दा होने से, प्रणय—प्रेम के दैव के अधीन होने से, चतुर स्त्रियों अपने जीवन को व्यर्थ नहीं खोतीं, वे इन बातों की चिन्ता नहीं करती ॥ ८२० ॥

दुर्भर्तृपराम्फालनमलिनीनियमाणशोभमनुदिवसम् ।

तुगमपि पतितकल्प स्तनशालिनि तत्पयोधरद्वन्द्वम् ॥ ८२१ ॥

प्रतिदिन दुष्ट पति द्वारा मार पडने से—भूमि पर खींची जाने के कारण, तेरा सारा सौन्दर्य नष्ट हो गया है । हे सुन्दर स्तनवाली ! तेरे ये दोना उन्नत-पीनस्तन भी खूब गये ॥ ८२१ ॥

१० उज्ज्वलचतुर्पं पुरुष कामपते स्त्री वसोऽपि तां दृष्ट्वा तितादस्य १३।१२.

२ गुणो दूषयता याति दूषण गुणां कश्चित् ।

तथाहि नष्टता दोष स्तनयो स्तब्धता गुण ॥

पर्यंक स्वास्तरण पतिरनुकूलो मनोहर सदनम् ।

तुलयति न हि लक्षारो त्वरितक्षणचौर्यसुरतस्य ॥ ८२२ ॥

सुन्दर बिछा पलग, अनुकूल पति, सुन्दर मनोहर घर भी जल्दी में सम्पादित चौर्यरत के लाखवें भाग की भी समानता नहीं कर सकता ॥ ८२२ ॥

सहसा सकटवर्त्मन्यवितर्कितसमुद्रागतेनापि ।

अभिलषितेनोद्घृष्टकमनल्पशुभकर्मणा लभ्यम् ॥ ८२३ ॥

तग रास्ते में सहसा बिना किसी पूर्व सूचना के अचानक सामने आ जानेपर इच्छित उद्घृष्टक आलिंगन मिलना बहुत बड़े शुभ कामों का ही फल होता है । [ उद्घृष्टक-उत्सव या देवयात्रा में सहसा थोड़ी देर के लिये नायक और नायिका के अगों का परस्पर रगड़ना-उद्घृष्टक आलिंगन है ]<sup>१</sup> ॥ ८२३ ॥

प्रीति मिल निरतिशया स्वर्ग परलोकचिन्तनैर्गदित ।

तस्यास्तु चन्मलाभो हृदयेऽसितपुरपसयोगात् ॥ ८२४ ॥

परलोक का विचार करने वाला ने निरतिशय [ जिसस बढ़कर कुछ भी अधिक नहीं ] प्रीति को स्वर्ग कहा है । यह निरतिशया प्रीति [ स्वर्ग की प्राप्ति ] मन चाहे पुरुष के साथ मिलने से ही मिलती है ॥ ८२४ ॥

अतटस्थस्वाढुफलप्रहणव्यवसायनिश्चयो येषाम् ।

ते शोककलेशरुचा केवलमुपयन्ति पात्रता मन्दा ॥ ८२५ ॥

आस्थिर दुग््राह्य मीठे फल की प्राप्ति के लिये जिन्होंने टढ़ सकल्प कर लिया है, ऐसे मूर्ख व्याक्त केवल शोक और झगडा को ही प्राप्त करते हैं, वे इसी के योग्य हैं ॥ ८२५ ॥

किं प्रतिकूला प्रहगतिरत परिणतमात्मदुश्चरितम् ।

स्वानुष्ठानव्यसन किं वा तस्यामयोनिहतकस्य ॥ ८२६ ॥

नायिका की विरहावस्था का वर्णन करके दूती नायक के मन में सभोग की उत्कठा को उपन्न करती है—क्या यह प्रहगति की प्रतिकूलता है, जो आप के साथ उसका अभी तक समागम नहीं हुआ, अथवा उसने अपने किये बुरे कर्मों का

१ अप्यभोगेषु यथाऽऽनुराणा स्पृहा यथाऽर्ध्वतिदुर्गतानाम् ।

परोपतापेषु यथा स्रज्जानां स्त्रीणां तथा चौर्यरतारसवेपु ॥

२ ऊरसवे देवयात्रायां महातिमिरसंकुले ।

विजने स्थानके वाऽपि गण्यतोश्च परस्परम् ॥

अज्ञाज्ञपपय नातिचिरकाल तु यद् भवेत् ।

तदुद्घृष्टकमि पाहुवाःस्थायनमहामुनि ॥ रतिरत्नप्रदीपिका १४।०४ ०२.

यह फल है, या दुष्ट प्रजा का क्रिया हुआ कार्य है जो अभी तक आपके साथ उसका मेल नहीं हुआ ॥ ८२६ ॥

येन तपस्वी स युवा स्पृशति समीरं त्वदंगसंस्पृष्टम् ।

त्वत्पादाक्रान्तभुजे स्पृहयति, ककुभं त्वदाश्रितां नमति ॥ ८२७ ॥

इसी कारण आप के अंगों से स्पर्श की हुई वायु का वह विचारी स्पर्श करना चाहती है,<sup>१</sup> जिस भूमि पर आप का पैर पड़ा होता है, उस भूमि पर वह भी चलना चाहती है या उसको देखना चाहती है। जिस दिशा में कार्यवश तुम जाते हो, उस दिशा में वह नमस्कार करती है ॥ ८२७ ॥

ध्यायति च त्वद्रूपं, त्वन्नामकवर्णमालिकां जपति ।

एकस्मीकृतचेतास्त्वदंगतः सौख्यसिद्धिमभिकांक्षन् ॥ ८२८ ॥

(अन्तर्युगलकम्)

वह आप के ही रूप का ध्यान करती है, आप के ही नाम के अक्षरों की माला जपती है। आप के साथ में सुरतानन्द सिद्धि की कामना करती हुई वह आप के अंगों के साथ में एकत्रभाव स्थापित करती है ॥ ८२८ ॥

उत्सृज्य सकलकार्यं तिर्यग्भ्रौषं विलोकयन् भवतीम् ।

कुर्वते गृहाभरथ्यां यातायातैः शतावर्ताम् ॥ ८२९ ॥

सारे कार्यों को छोड़कर गवाड़ (खिडकी) आदि में बैठकर, ग्रीवा को थोड़ा टेढ़ा करके, श्मित नेत्रों से आप को देखती रहती है। आपके घर के सामने के गली में हजारों बार घाना जाना करती है—घरके सामने चक्कर काटती है ॥ ८२९ ॥

दृष्टोऽसि तथा सुचिरं रोहाभ्याशे परिभ्रमन् स्पृहया ।

सन्देश एष दत्त. प्राश्रुतमेतत्तया ' दत्तम् ॥ ८३० ॥

घर के समीप में घूमते हुए आपको उसने बड़ी चाह के साथ देर तक देखा है। इसलिये उसने यह सन्देश भेजा है और यह उपहार [ पान माला आदि ] भी साथ में दिया है ॥ ८३० ॥

शुष्यति साऽलभमाना भवत्कृते वैशमनिर्गमावसरम् ।

इति चतुरशष्टस्त्रीभिर्धिलुप्यते त्वदपदेशेन ॥ ८३१ ॥

(अन्तर्युगलकम्)

घर से निकलने का अवसर न मिलने के कारण वह आपने लिये सूखती जाती है। इस प्रकार के बहुतेरे महानों द्वारा चतुर धूर्तत्रियां परदारियों का चारित्र्य नष्ट किया करती हैं ॥ ८३१ ॥

१. मेघदूत में आश्लिष्यन्ते पुण्यवति धा ते तुषाणाद्रिवाता,  
पूर्वं स्पृष्ट यदि किञ्च भवेदंगमेभिस्तदेति ॥ मेघदूत १०३-

किं वा कथितैरधिकैरस्थानाविष्टचेतसस्तस्या ।

अनुतिष्ठ यथायुक्तं त्वत्तो नाशश्च जीवरक्षा च ॥ ८३२ ॥

(दूतीयचन, महाकुलकम्)

अधिक कहने से क्या लाभ, आप जैसे काठन हृदय वाले व्यक्ति में दिल लगाने वाली उसके लिये जो उचित समझें आप करें, आप से ही उसकी प्राणरक्षा है और आप से ही उसकी मृत्यु है—उसका जीवन-मरण आप के ही हाथ में है ॥ ८३२ ॥

कुलपतनं जनगर्हां नरकगतिं प्राणितयसन्देहम् ।

अगो करोति तत्क्षणमवला परपुरुषमभियान्ति ॥ ८३३ ॥

पर पुरुष के पास जाती हुई स्त्री कुलनिन्दा, लावापगद, नरकप्राप्ति, जीवन का भय, यह सब उस क्षण में स्वीकार कर लेती है ॥ ८३३ ॥

स तु लिखति दासपत्रं त्यजति कुटुम्बं ददाति सवत्स्यम् ।

यावन्न भवति पुरतः परयुवति प्रोज्झितावरणा ॥ ८३४ ॥

आवरण रहित (निर्वस्त्र), पराई युवती स्त्री के सामने आने पर मनुष्य दूसरे की दासता भी स्वीकार करने के लिये, अपने सगे सम्बन्धियों का भी छोड़ने के लिये और अपना सर्वस्व लुटाने के लिये तैयार हो जाता है ।<sup>१</sup> [ परस्त्री-समागम के लिये मनुष्य सब काम करने के लिये तैयार हो जाता है ] ॥ ८३४ ॥

दृष्टं यद् द्रष्टव्यं व्यपयात कौतुकं विदितमन्त ।

इति याति मनसि कृत्वा विहितविधेयस्तत्तत्सूर्यम् ॥ ८३५ ॥

जैसे देखने की चाह थी, वह देख लिया, मन में उमुक्तता भी समाप्त हो गई, अदर का भी अनुभव कर लिया, मन में यह सांच कर, परकीया रति मुक्त से श्रुतकृत्य होकर, कामुक जल्दी ही उस स्थान से हट जाता है ॥ ८३५ ॥

साऽपि च्छिन्ना च्छोदनगृहीतमुक्ता विलोकयन्त्याशा ।

विशति गृहं सप्रस्ता सर्वत आशङ्किता सर्वैलक्ष्यम् ॥ ८३६ ॥

१ मृच्छकटिक में—न शक्या हि स्त्रियो रोद्धुः प्रास्थता दयितं प्रति—२।११.

कुञ्जकुञ्जद्वयावदां बभ्रुवधनयन्त्रणाम् ।

न सदन्ते तरगिण्यो रतिशीला हि यापित ॥

२ तावत्प्राणपणेनापि क्षपळा सकुन्दला ।

परस्त्रियं प्राथयन्ति न यावद् ब्रह्ममुञ्चति ॥ सेमेन्द्र

(क) धृतां तु परदारान्नामभिस्तु समागम । शिवपुरा० धर्मसंहिता ०।११०

वह छिनार भी चुटकी बगाने जितने समय में-थोड़ी समय में ही सम्भोग से छूटकर, चारों ओर देखती हुई, सत्र ओर से शक्ति, उरी हुई सी, शमांती हुई धरमें घुसती है ॥ ८३६ ॥

नवचारित्रभ्रशा सुरचितकुलटोदितेषु नो निपुणा ।

पृष्ठा क्व गताऽसि त्व न फवचिदिति संभ्रमाद् ब्रूते ॥ ८३७ ॥

नया-नया शील का नाश, कुलटाओं के अच्छी प्रकार बनाये उत्तरों के देने में अनिपुण, स्त्री से, 'कहा गई थी' पूछा जाने पर, भय से धवराती हुई वद कहती है कि 'कहीं नहीं गई थी' ॥ ८३७ ॥

मितदोषे बहुरोपा पुरपा अपि चपलकौतुकप्राया ।

त्व च प्रहेण लग्ना कार्यविमूढाऽत्र तिष्ठामि ॥ ८३८ ॥

दूती का नाविका ने प्रतिवचन-पुरुष भी चचल और कुतूहल मन वाले होते हैं, थोड़े से अपराध पर बहुत क्रोध करते हैं, और तू जमीन पकड़े पैड़ी है, एक कदम भी आगे नहीं चलती, मैं यहाँ सोच में पड़ी हूँ कि क्या करूँ ? ॥ ८३८ ॥

इति दोलायितदृश्या स्थिरीकृताऽभ्यस्तकर्मणा दूत्या ।

दृष्टेति शकमाना पदे पदे चलति पर्येऽपि ॥ ८३९ ॥

इस प्रकार दूती के बार-बार कहने से चलने का निश्चय करके अस्थिर-शक्ति मन से चलती हुई जो कदम कदम पर पत्तों की खरखराहट से भी शक्ति होती है ॥ ८३९ ॥

अनु दिक्षु विक्षिपन्ती मुहुर्मुहुरचकिततरलिते नेत्रे ।

प्राप्ता संकेतभुवं शतगुणितमनोरथाकृष्टा ॥ ८४० ॥

बार-बार भयभीत और चचल नेत्रों से चारों ओर देखती हुई, हजारों मनोरथों को लेकर सनेत स्थल पर पहुँचती है ॥ ८४० ॥

भयदृग्गारम्रीडामिश्रीभूतानुभावसन्दोहम् ।

जनयन्ती लीलाशुकट्टादृष्टासकुचनाभि ॥ ८४१ ॥

हिलते हुए वज्र के आचल के कारण शरीर के कुछ दीप्साई पडने एवं कुछ नहीं दिखाई पडने वाले अंगों से, संकोच, भय, शृंगार और लज्जा मिश्रित भ्रूमण्डि अनुभाव समूह को उत्पन्न करती है ॥ ८४१ ॥

नीचीश्लथनारम्भ निरन्धती वित्तव यामि यामीति ।

निभृताम्बुटाभिधानै पल्लवयन्ती स्मरस्य कर्तव्यम् ॥ ८४२ ॥

१ दूती—दौत्यं कृत्वा नयेत्कातं बल्लभां वा प्रिय प्रति ।

सा दूती कथिता सन्निसिबोऽनुभवकाविदा ॥

कामुक द्वारा नीवीबन्धन टोला करना प्रारम्भ करने पर, उसको रोक्ती हुई थोड़े और मुस्पष्ट शब्दों में कहती है कि 'हे धूर्त ! मैं जाती हूँ जाती हूँ' । इस प्रकार कहकर सम्भोग की चाह को और भी अधिक बढ़ावा देती है ॥ ८४२ ॥

नयतीवान्तर्विलय समममानेव सर्वगात्राणि ।

सश्लिष्यतेऽन्ययोपा तित्त तस्यामृत पुरत ॥ ८४३ ॥

शरीर के सत्र अवयवों को अतिदृढता से पकड़ने की भाँति मानों कामुक के अन्दर प्रविष्ट हो रही हा, इस प्रकार से परनारी आलिंगन करती है । इस आलिंगन के सामने उसे अमृत भी कड़ुआ लगता है—तुच्छ अचता है ॥ ८४३ ॥

नायिका का वचन—

न कृत तव रहसि पुरो वाप्पावृतकण्ठकुरठया वाचा ।

गोहस्वामितिरस्कृतिनिष्पादितदु सवेगानिर्वहणम् ॥ ८४४ ॥

घर के स्वामी द्वारा की हुई भर्त्सना से उत्पन्न हुए की बात भी एकान्त में तुम्हारे सामने आमुआ से रुके गले से कुरिठत बनी वाणी द्वारा मैंने नहीं कही ॥ ८४४ ॥

उपधानीकृत्य भुजावन्योन्य निर्विशकभावाभ्याम् ।

सवलितोरु न सुप्त शिथिलाग रतिविमदरिन्नाभ्याम् ॥ ८४५ ॥

सुरत भ्रम से श्रान्त दोनों एक दूसरे की बाहु की तकिया बनाकर, बिना किसी शका के, अगों को ढीला किये एक दूसरे को ऊर के ऊपर ऊर रखकर हम नहीं सोये ॥ ८४५ ॥

आत्मगृहादानीत प्रच्छाद्य स्वादु भोजन विजने ।

स्वकरेण मया दत्त निर्वृतहृदयेन नाशित भवता ॥ ८४६ ॥

अपने घर से ( अपने हाथ का बनाया ) वस्त्र से ढाप कर लाया ( चोरी से लाया ) भोजन एकान्त में, अपने हाथों से ही दिया, तुमने उसे भी शान्त चित्त से नहीं खाया ॥ ८४६ ॥

न कृता चरित्ररक्षा न च भुक्त त्वच्छरीरमपयन्त्रम् ।

दृष्टादृष्टभ्रष्टा क्व यामि किंवा करोमि दुर्जाता ॥ ८४७ ॥

१ पराङ्गनार्ता सुरताभ्यनुज्ञा मन्दोदिता एव निषेधवाच । मुकुन्दार्चदभाष-१२०

(ख) अञ्जिकचिबुकगण्ड नासिकाग्र च सुग्बन्,

पुनरुपहितसोष्क तालु जिह्वा च भूय ।

दुरितकञ्चित-नाभीमूलवक्षोरुहोरु,

श्चययति इदधैय क्षीमयिखाऽथ नीवीम् ॥ रतिरहस्य १०१

मैंने तुम्हारे लिये अपने शील की भी रक्षा नहीं की, बिना किसी स्कावट या हिचकिचाहट के तुम्हारे शरीर का चुम्बन-श्रातिगन द्वारा भोग भी पूरे तौर पर नहीं किया। दृष्ट विषयानन्द मुग्ध, अदृष्ट पुण्य से भ्रष्ट मैं कहीं जाऊँ, दोनों स्थानों से भ्रष्ट हो गई, पूटे माग्यों वाली मैं अत्र कहीं जाऊँ ॥ ८४७ ॥

अवगुण्ठनचिनयरति स्वैरालापं च मन्दसंचारम् ।

सम्प्रति मम पापाया करपिहितमुखा हसन्ति तत्त्रज्ञाः ॥ ८४८ ॥

कुलधू के समान मुझ दुष्टा का घूँघट निकालना, नम्रता, प्रीति-स्नेह, धीमे से बातचीत करना, धीरता-गम्भीरता पूर्वक चलना देखकर, वास्तविक बात को जानने वाले व्यक्ति हाथों से मुल का टापपर अत्र मुझ पर ईसते हैं ॥ ८४८ ॥

यासामासीत्सत्यं मया समं समवयःकुलस्त्रीणाम् ।

ता धारयन्ति मत्तः कुसंग इति तन्नियन्तार ॥ ८४९ ॥

समान वय एव समान कुलवाली जिन स्त्रिया के साथ मेरी भिन्नता थी, उनके गुणजन अत्र मेरे साथ उठने बैठने-बातचीत करने से उनको रोकते हैं ॥ ८४९ ॥

धिग्वादान् परिजनत सहमानाऽनुत्तरा ह्यधोवदना ।

तिष्ठामि निरभिमाना निजनिर्मितदोषदौर्बल्यात् ॥ ८५० ॥

नीचे मुझ किये, बिना किसी प्रकार का उत्तर दिये कुटुम्बी एव पडोसी जनों के धिक्कारों को मैं सह लेती हूँ। अपने किये दोष की निर्मलता के कारण ही गर्वरहित होकर रहती हूँ ॥ ८५० ॥

सद्भिर्विधोयमानं प्रसंगपतितं पतिव्रतास्तवनम् ।

हृदयेन द्रव्यमाना मूढा सीदामि शृण्वन्ती ॥ ८५१ ॥

सज्जना द्वारा प्रसंगवश की हुई पतिव्रता स्त्रियों की स्तुति को सुनकर हृदय में अतिशय दुःखी होती हुई मैं मूढ़ा पीड़ित हाती हूँ ॥ ८५१ ॥

आसन्न उपविशन्ती मा दक्षिण्यान्नियन्तुमसमर्थाः ।

अन्योन्यमीक्षमाणा हातिजना संकुचन्ति मुजाना ॥ ८५२ ॥

शांति भोजन के समय मुझे पास में बैठती हुई देखकर, उदास्तावश मुझे न हटाकर सम्बन्धी बन एक दूसरे का देखते हुए लजा अनुभव करते हैं ॥ ८५२ ॥

प्रकटीकृता त्वयैव क्षणमात्रममुंचता गृहोपान्तम् ।

अस्मासु दृशं मग्ना प्रेमस्निग्धामनुद्धरता ॥ ८५३ ॥

मेरे घर के पडोस को एक क्षण के लिये भी न छोड़ कर, तथा मेरे तुम्हारे सामने आने पर मुझ पर स्नेह भरी दृष्टि लगातार डालकर, तुमने ही यह रहस्य प्रकट किया है<sup>१</sup> ॥ ८५३ ॥

परगृहविनाशपिशुना सुभगमन्याभिरूप्यकृतदर्पा ।

कृकलासतुल्यरागा भवन्ति युष्मद्विधा एव ॥ ८५४ ॥

दूसरों के घरों को उजाड़ने वाले, परकीया स्त्रिया को मोहित करने में अपने को सौभाग्यशाली समझने वाले, अपने रूप सौन्दर्य का अभिमान करनेवाले, आप जैसे दुष्ट आदमी ही गिरगट के समान क्षण क्षण में रग उदलते हैं<sup>२</sup> ॥ ८५४ ॥

अनभीष्टव्यवहारप्रभवरूपा पीडिताक्षरा इत्थम् ।

सोपालम्भा विजने धन्या शृण्वन्ति बन्धकीवाच ॥ ८५५ ॥

इस प्रकार अनिच्छित व्यवहार से उत्पन्न क्रोध से भरी बन्धकी वेश्या की वाणी को, उपालम्भ के साथ भाग्यवान ही एकान्त में सुन पाते हैं ॥ ८५५ ॥

परतरुणीसद्भावस्नेहार्पितनयनभागदृष्टस्य ।

वेश्यारचितविलासा कथिता पुरत पुराणवृणतुल्या ॥ ८५६ ॥

दूसरी युवती ( परस्त्री ) द्वारा निष्कपट प्रेम से समर्पित कथाओं के आगे वेश्याओं के किये हाव भाव पुराने तिनके के समान तुच्छ हैं ॥ ८५६ ॥

उपनयति रतिमहोत्सवमाराधितदेवताविशेषाणाम् ।

वचनमपि प्रेमाद्रै स्वैरिण्या श्रवणमेति पुण्यवताम् ॥ ८५७ ॥

मत्र जप पूजा आदि द्वारा देवता का प्रसाद प्राप्त पुरुषों को रतिमहोत्सव सम्भोगरूपी महान आनन्द परस्त्री से प्राप्त होता है। स्वैरिणी का प्रेमपूर्ण वचन भी भाग्यशाली पुरुषों को ही सुनने में मिलता है<sup>३</sup> ॥ ८५७ ॥

१. आचार कुलमाख्याति, षपुराख्याति भोजनम् ।

वचन श्रुतमाख्याति, स्नेहमाख्याति लोचनम् ॥

२. क्षेमेन्द्रने समयमातृका में अस्सी प्रकार के राग बताये हैं, उनमें एक राग कृकलास राग भी है—

कृकलासाभिधानश्च स्त्रैणदर्शनचचल — १३६

३. स्वैरिणी—पतिव्रता चैकपत्नी, द्वितीया कुलटा स्मृता ।

तृतीया वृषळी शेषा चतुर्थी सुश्रुती स्मृता ॥

वेश्या च पचमे पण्डे, युगी च मत्तमेऽष्टमे ।

सत ऊर्ध्वं महावेश्या साऽऽसृश्या सर्वजातिषु ॥ प्रसवैवर्त्तं पुराण

(२) नातश्चतुर्थं प्रसवमापरस्वपि बद्धस्युत ।

अत पर स्वैरिणी स्याद् वधकी पचम भवेत् ॥ महा०आदि १२३।७७



का गणना विषयवशे पुंसि वराके, वरांगना स्पृहया ।

व्याजेन वीक्षमाणा ध्यानधियां स्पृशति संज्ञानम् ॥ ८५८ ॥

यदि वरांगना-उत्तम स्त्री-मुगात्री किसी बहाने से समागम की चाह के साथ देखती है, तब एकाग्रचित्त मुनियों का भी उत्तम ज्ञान खंचल हो जाता है, फिर भोग्यस्तु के विषय में तीन पुत्रों की बात ही क्या ? ॥ ८५८ ॥

शिरसा रचितांजलयो दधति निदेशं त्रिविष्टपे गणिकाः ।

परदाररसारुष्ट्रस्तथापि भेजे शर्चापतिरहल्याम् ॥ ८५९ ॥

स्वर्ग में वेश्यायें जिसकी आज्ञा को फिर झुकाकर स्वीकार करती हैं, उस इन्द्र ने भी पपई स्त्री के रस की ओर आकृष्ट होकर ग्रहलगा का सेवन किया ॥ ८५९ ॥

अप्सरसः किं न वशे वैदग्ध्यवतां च किं न धीरेयः ।

येन चकारासक्तिं गोविन्दो गोपदारेषु ॥ ८६० ॥

क्या कृष्ण के वश में अप्सरायें नहीं थीं, लौकिक विषयों में कुशल विद्वानों में क्या कृष्ण अग्रणी नहीं था ? फिर भी कृष्ण ने गोपवधुओं में आसक्ति की ॥ ८६० ॥

प्रेलोक्ष्यगता वेश्याः स्वार्थान्ता यातुधाननाथस्य ।

तदपि जहार कलत्रं दशरथतनयस्य रामस्य ॥ ८६१ ॥

रावण के अधीन स्वर्ग की सब वेश्यायें थीं, तो भी उसने राम की पत्नी सीता का हरण किया ॥ ८६१ ॥

१. किं बुवल्लयनेत्राः सन्ति नो नाकनार्यः

त्रिदिक्पतिरहस्यां तापसीं यत् सिषेवे ।

हृदयतृष्कुटीरे दीप्यमाने स्मराधौ

दधितमनुचितं वा वेत्ति नः पण्डितोऽपि ॥

२. भेजे गौत्रमसुन्दरीं सुरपतिश्चन्द्रश्च भार्यां पुरो

धर्मोऽपि स्वयमेव पाण्डुनृपतेः पत्नीमयासीत् पृथाम् ।

गोपार्ता वनिता नितान्तममत्रदेवः स्वर्गं भावयो,

मृदाः पण्डितमादितोऽभिदधिरे द्यौषं परस्त्रोरती ॥

(क) हित्वाऽऽप्यकामं शमयेद् वशी यो नितंबिनीर्ता मदनगरात्तिम् ।

कृपान्वितो मन्मथराक्षवेदी समाप्नुयात्स्वर्गमुत्तं स धीरः ॥

नागरसर्वस्व ११४.

(ख) नासी चोन्नतर्षावनाऽमिलवितं कान्तं न चेदात्तुपाद्

उन्मादं मरणं च विन्दति तदा कन्दपंसंमोदिता ।

अथ मंजर्या जननी निजपद्मसमर्थने कृतोत्साहा ।

आक्षेप्तुमाचचक्षे नृपसुतसचिवाश्रिता वाचम् ॥ ८६२ ॥

राज्य मंत्री की बात सुनकर पूर्ण उत्साह के साथ अपने पद का समर्थन करने के लिये श्रीर राजपुत्र के मंत्री के वचनों पर आक्षेप करने के उद्देश्य से मंजरी की माता कहने लगी ॥ ८६२ ॥

घटयुवतिषु प्रगल्भो नागरिकादर्शनेन हृतपुस्त्व ।

ग्रामोपितो विदग्धो निन्दति गणिका भवद्विधोऽवश्यम् ॥ ८६३ ॥

पनहारियों में धृष्ट, नागरिक शिक्षित विदग्ध चतुर स्त्रियों के देखने मात्र से मूढ़ बना नपुंसक बना, गवार, मूर्ख आप जैसा, अवश्य ही वेश्याओं की निन्दा करता है ॥ ८६३ ॥

नार्द्रयति मन पुसामवगाहितमीनवेतुशास्त्राणाम् ।

नखदशनक्षतिहीन जीवत्यतिबन्धकीसुरतम् ॥ ८६४ ॥

कामशास्त्र का भली प्रकार अध्ययन किये पुरुषों का मन, जीवित पति वाली पराई स्त्री के साथ नख दशन से हीन सम्भोग से प्रसन्न नहीं होता । [ पति के भय से नखदत दन्तक्षत नहीं किये जा सकते ] ॥ ८६४ ॥

स्थापय घटक तावत्, कुरु भूमितले तृणै समास्तरणम् ।

सुरतोपमम ईदृग्ग्रामीणकतरुणमिथुनानाम् ॥ ८६५ ॥

कामुक पतिहारी को रास्ते में देखकर गवार कहता है कि 'घड़े को उतार कर एक तरफ रख दे, पृथ्वी पर घास बिछाकर समान करले', गँवार स्त्री पुरुष इस प्रकार से सम्भोग करते हैं ॥ ८६५ ॥

सचिन्त्येति समागता परवधू रर्यर्थिनीं स्वेच्छया

गच्छेत्कापि, न सर्वदा सुमतिमानिर्याह वास्यायनः ॥

अनगरंग ८।१३.

(ग) नहि कविना परदारा पृष्टव्या नापि चोपदेष्टव्या ।

कसंन्यतयाऽन्येषा न च तदुपायोऽभिधातव्य ॥

किन्तु तदीय वृत्त काव्यागतया स केवल वक्ति ।

आराधयितुं विदुषस्तेन न दोष कवेरत्र ॥ काव्यालकार १४।१२-१३.

१ इसमें श्रीद्वयं का उक्ति अपवादरूप है—

साहित्ये सुकुमारवस्तुनि रटन्वायग्रहप्रन्धिजे,

तर्कं वा मयि सविधातरि सम लीलापते भारती ।

शय्या वाऽस्तु मृदूत्तरच्छदवती दर्भाङ्कुरैरास्तृता,

भूमिर्वा इदयङ्गमो यदि पतिस्तुल्या रतियोपिताम् ॥

वहलोशीरविलिप्तस्थितजूटक्लापमल्लिकामाल्यः ।

पामरनार्या दृष्टः स्मरोऽहमिति मन्यते चिटो ग्रान्य ॥ ८६६ ॥

बालों पर खस का मोटा गहरा लेप करके, उनपर मोगरे की माला बाँधे, ग्रामीण युवक—ग्रामीण मूर्ख नीच स्त्री के कटाक्षपात से ही अपने को कामदेव समझने लगता है ॥ ८६६ ॥ -

गृहकर्मकृतायासा प्रस्विन्नां सलिलकार्यनिर्याताम् ।

उपपतिरूपैत हर्षं निशागमे पामरी प्राप्य ॥ ८६७ ॥

घर के काम से थकी, पसीने से तर, पानी लेने के लिये घरसे निकली ग्रामीण स्त्री को, रात्रि के पहले पहर में प्राप्त करके उपपति-जार अति प्रसन्न होता है ॥ ८६७ ॥

कूपक्षिप्तघटाया नार्यास्तत्काष्ठनिहितचरणायाः ।

वलितप्रीव वीक्षितमुन्नमयति मानसं यूनः ॥ ८६८ ॥

घंटे को कुँए में डाले, एक पैर को घडा खाँचने की बरण पर टिकाये, प्रीवा को मोड़कर देखती हुई युवती को देखकर, युवा-व्यक्ति का मन आनन्द से खिल जाता है ॥ ८६८ ॥

लग्नोऽसि यत्र गात्रे कथमपि दैवेन देवयात्रायाम् ।

अद्यापि तन्न मुंचति पुलकोद्गमकण्टकं तस्याः ॥ ८६९ ॥

रथयात्रा या अन्य किसी प्रसंग में भाग्यश अचानक यदि कभी शरीर से ग्रामीण युवती के शरीर का स्पर्श हो जाता है, तो उसका धमरुण करके ज्ञान भी उसके शरीर में रोमांच बना रहता है ॥ ८६९ ॥

उच्छेतुं कार्पासं प्रविष्टया गहनवाटिकां शून्याम् ।

दंकारितेन संज्ञा कृता तथा त्वं च वेत्सि नो मूर्खः ॥ ८७० ॥

निर्जन घने कपास के खेत में कपास चुगने के लिये घुसी ग्रामीण बधू द्वारा पत्थर फेंककर, ताली बजाकर अथवा खटार कर दिये हुए सवेत को भी व मूर्ख नहीं समझता—तू तो मशमूर्ख है ॥ ८७० ॥

आलिङ्गितमुसलायास्त्वप्येव निविष्टचक्षुपस्तस्याः ।

आवृत्या भ्रमति पुरो जात. खलु शालिकण्डने विघ्नः ॥ ८७१ ॥

तेरे बार-बार उसके सामने आने जाने से, तेरे में ही आँस लगाये रहने के कारण, मूसल को हाथ से पकड़ रहने पर भी, धान बूटने में रुकावट अटचन होने लगी ॥ ८७१ ॥

त्वा लोष्टमाक्षिपन्तं पार्श्वस्थैः स्तूयमानसामर्थ्यम् ।  
गृहकर्तव्यं त्यक्त्वा पश्यति सा द्वाररन्ध्रेण ॥ ८७२ ॥

पत्नी उड़ाने के लिये या अन्य कारण से हाथ द्वारा या गोपण से पत्थर फेंकते हुए तुमको, समीपवर्त्ता मनुष्यों द्वारा की हुई तेरी प्रशंसा को सुनकर, घर का सब काम छोड़कर दरवाजे के छेद से वह तुमको देखती है ॥ ८७२ ॥

त्वयि मार्गनिकटवर्तिन्यविचिन्तितखेदया तथा सुभग ।  
प्रत्यासन्नगृहेष्वपि कृत. प्रसह्य स्मरातुरो लोक. ॥ ८७३ ॥

हे सुभग ! तेरे घर के समीप की गली में आने के लिये उसने मार्ग की धूप आदि दुःख की भी परवाह नहीं की । घरके समीप में खड़ी उसको देखकर—राहगीर भी कामातुर हो जाता है—[ धूप के कारण उसका चेहरा और भी अधिक लाल सुन्दर बन गया है ] ॥ ८७३ ॥

इति चतुरदूतिकोदित उपचितसौभाग्यगर्वपूर्णस्य ।  
ऊर्मिसहस्रोत्थसितं भवति मनो ग्राम्यपिगस्य ॥ ८७४ ॥

इस प्रकार चतुर दूती के कहे वचनों को सुनकर, बड़े सौभाग्य के गर्व से भरा ग्राम्य विट का मन बल्लियों उछलने लगता है—अतिशय प्रसन्न होता है ॥ ८७४ ॥

विनिवार्य तत्प्रवर्तितवाक्यविकासं नतोत्तमांगेन ।  
श्रीसिंहभटतनयं तमुवाच वचोऽथ नर्तकाचार्य. ॥ ८७५ ॥

मजरी की माता द्वारा प्रस्तुत कथा को समाप्त करने के लिये सिर झुकाकर नर्तकाचार्य ने सिंहभट्ट के पुत्र-राजपुत्र से कहा ॥ ८७५ ॥

नायकभूमौ भरतः कुशीलवाः कोहलादयो मुनयः ।  
अप्सरसः स्त्रीनाट्ये गान्धर्व कमलजन्मनस्तनयः ॥ ८७६ ॥  
सुपिरस्वरप्रयोगप्रतिपादनपरिष्ठतो मतंगमुनिः ।  
यदि रंजयन्ति हृदयं भवतो, भूमिस्पृशां कुत. शक्तिः ॥ ८७७ ॥

नाटक की भूमि में भरत के समान, तनला आदि बजाने में कोहल आदि मुनियों के समान, स्त्री पात्र में अप्सराओं के समान, गायन-वादन में ब्रह्मा के पुत्र नारद के तुल्य, घोंसुरी आदि बजाने में मतङ्ग मुनि के समान निपुण, अभिनय करनेवाले कुशीलव जहाँ आपके हृदय को प्रसन्न करते हैं, वहाँ पर हम जैसे सामान्यजनों की क्या सामर्थ्य है, हम आप का क्या मनोविनोद कर सकते हैं । [ भूमिस्पृशा-मर्त्यानाम् ] ॥ ८७६-८७७ ॥

अभ्यधिकं घृष्टत्वं प्रायेण हि शिल्पजीविनो भवति ।

आश्रित-नर्तक-वृत्तेर्विरोपतो विजित-रंगस्य ॥ ८७८ ॥

प्रायः करके शिल्पजीवी अधिक वाचाल घृष्ट होते हैं, इनमें भी विशेष करके नाट्यभूमि में कीर्ति प्राप्त नर्तक अधिक घृष्ट-वाचाल होते हैं ॥ ८७८ ॥

विज्ञापयान्यतस्त्वां नरेन्द्र नाट्यप्रजासदृशाम् ।

अवलोकयाम्कमेकं मा- भवतु मम श्रमो वन्द्यः ॥ ८७९ ॥

हे राजन् ! इसीसे मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि नाटक प्रिय समाज के समान आप एक अंक देखें, जिससे कि मेरा प्रयत्न निष्फल न जाये ॥ ८७९ ॥

इति कथयन्नरमर्तुः पुत्रेण स चोदितो भ्रुवोन्नतया ।

रचिते सक्लातोद्ये नियोजयामाम सूत्रधृतम् ॥ ८८० ॥

नृत्याचार्य के इस प्रकार कहने पर राजपुत्र ने भ्रुवों ने दृग्गित से उसे आजा प्रदान की । नृत्याचार्य ने सत्र वाद्यवीणा-मुरज-वशी काल्य आदि तय्यार करके सूत्रधार को आज्ञा दी ॥ ८८० ॥

वांशिकदत्तस्थानकतद्भावितभिन्नपंचमे सम्यक् ।

प्रावेशिक्यनसाने द्विपदीप्रहृष्टान्तरेऽग्निशात् सूत्री ॥ ८८१ ॥

बंसुरी बजाने वाले के साथ अन्य वाद्यों का स्वर मिला कर पंचमराग प्रवृत्त हो जाने पर, प्रावेशिकी भ्रुवाविरोप के अन्त में, [ नान्दी के अन्त में ], द्विपदी को लय विरोप में गाते हुए नदों के बीच में सूत्रधार प्रविष्ट हुआ ॥ ८८१ ॥

उत्साहभावयुक्तः सामाजिकदृढदयरंजनं कुर्वन् ।

कविनेपुणवत्सेरवरचरितस्य विधेय दाक्ष्यसामग्र्या ॥ ८८२ ॥

अष्टकलापरिमाणां भ्रुवां च परिकल्प्य ताललययुक्ताम् ।

आहूय नदीं कृत्वा तथा समं स्वगृहकार्यसंलापम् ॥ ८८३ ॥

सूचितपात्रागमनः कियन्ति दत्त्वा पदानि ललितानि ।

निश्चक्राम गृहिण्या सार्धं निःसरणगतिेन ॥ ८८४ ॥

उत्साह और भाव से युक्त सामाजिक जनों के हृदय को प्रसन्न करता हुआ, कवि श्रीहर्ष के बनाये उदयन चरित्र काले रत्नावली नाटक के प्रयोग में कुशल, संपूर्ण सम्पत्ति से युक्त, ताल-लय से युक्त भ्रुवां को आठ अक्षरों तक पढ़ कर, नदी को बुलाकर उसके साथ में अपनी घर सम्बन्धी बात चीत करने, पात्र के आने की सूचना देकर अपनी सुन्दर चाल से कुछ कदम चलकर बाहर

१- द्विपदी—शोकविभ्रमयुक्तं व्याधिभिन्नासमाश्रिते ।

ध्रुववापां दिवैरुष्ये योग्या द्विशदिका युधै ॥ मासलीमाधव टीका

जाने वाले गीत को गाते हुए सूत्रधार अपनी गृहिणी के साथ नेपथ्य से निकल गया<sup>१</sup> ॥ ८८२-८८४ ॥

आश्रित्य कथोद्घात प्रविवेश तत सचिस्मयोऽमात्य ।

दुर्घटसंघटनेन च्छित्तिनाथस्योदयेन मुदितश्च ॥ ८८५ ॥

सूत्रधार के निकलने के पीछे, कथोद्घात का आश्रय लेकर असमवनीय संयोग के होने से, राजा उदयन की उन्नति से प्रसन्न एवं चकित हुआ अमात्य योगन्वरायण मंच पर आता है<sup>२</sup> ॥ ८८५ ॥

प्रासादमारुहन्त कुसुमायुधपर्वचर्चरीं द्रष्टुम् ।

निर्दिस्य यत्सराज समनन्तरकार्यसिद्धये निरगात् ॥ ८८६ ॥

राजप्रासाद पर चढ़कर कामदेव के महोत्सव को देखने के लिये वसन्तराज उदयन को कह कर, स्वयं शेष रहे अपने कार्य को पूरा करने के लिये अमात्य योगन्वरायण निकल गया<sup>३</sup> ॥ ८८६ ॥

१. प्रस्तावना या आमुख—सूत्रधारो नटीं धृत्ते मारिष वा विदूषकम् ।

स्वकायंप्रस्तुताश्लेषि चित्रोक्त्या यत्तदामुखम् ॥

दशरूपक ३७१

२. कथोद्घात—स्वेतिवृत्तसम वाक्यमर्थं वा यत्र सूत्रिणः ।

गृहीत्वा प्रविशेत् पात्रं कथोद्घातो द्विधैव स ॥

दशरूपक ३९-१०.

(ख) जैसे रत्नावली में—द्वीपादन्यस्मादपि मभ्यादपि जलनिधेर्दिसोऽप्यन्तात् ।

शानीय क्षटिति घटयति विधिरभिमतमभिमुखीभूत् ॥

११९.

(ग) जैसे रत्नावली में—(सहपंम्)—सर्वथा स्पृशति न स्वामिनमभ्युदया ।

इदं च—येयं सिद्धलेश्वरस्य दुहिता सा सिद्धेना-

दिष्टा यथा योऽस्या, पाषिप्रदृश्य करिष्यति स

सार्वभौमो राजा भविष्यति । चतुर्थं अक.

३. कुसुमायुध महोत्सव चैत्रोत्सव / होली -यथा स्कन्दपुराण में—

मधुमासे तु समासे शुक्लपक्षे चतुर्दशी ।

प्रोक्ता मदनसुञ्जीति सिद्धिदातु महोत्सवे ॥

चैत्रे मासि चतुर्दश्यां मदनस्य महोत्सव ।

सुगुप्तोक्तिभिस्तत्र गीतवाचादिभिर्नृणाम् ॥

भगवांस्तुष्यते काम पुत्रपौत्रसमृद्धिदः ॥

अथ विराति स्म नरेन्द्रः प्रासादगतः समं वयस्येन ।

अवलोकयन् प्रमोदं प्रमुदितचेताः स्वसौख्यसंपत्त्या ॥ ८८७ ॥

अमाल्य यौगन्धरायण के निकल जाने पर, अपने मित्र वसन्तक के साथ प्रासाद पर चढ़ा, राजा उदयन अपनी सुखसमृद्धि से प्रसन्न मन के साथ नगर-निवासियों के दर्प को देखता हुआ आता है ॥ ८८७ ॥

विस्मयभावाकृष्टः प्रोत्सुल्लविलोचने ततो विसृजन् ।

नृत्यति पौरजनीधे प्रोवाच वयस्य पश्य पश्येति ॥ ८८८ ॥

विस्मय के कारण चकित बना, पुरवासी स्त्री-पुरुषों के समूह में आश्चर्य के साथ आँख फैलाकर देखते हुए राजा अपने मित्र वसन्तक को कहने लगा—  
“मित्र देख-देख ॥ ८८८ ॥

तुल्यशिशुतरुणवृद्धं समगुणागुप्रयुवति सविचेष्टम् ।

अगणितवाच्यावाच्यं क्रीडन्ति जनाः प्रवृद्धहर्षेण ॥ ८८९ ॥

नगरनिवासी अत्यन्त दर्प के साथ खेल रहे हैं, इनमें बालक, तरुण, युवा, और वृद्ध सब छोटे-बड़े का भाव भूलकर आनन्द ले रहे हैं, युवती-कुलीन स्त्रियों, युवती वेश्यायें भी नाना प्रकार की हास्यजनक चेष्टायें कर रही हैं। कहने योग्य या न कहने योग्य किर्ती भी प्रकार का विचार धातचीत में नहीं हो रहा है—  
शस्त्रीलादि गाती गलौज भी चल रहा है ॥ ८८९ ॥

पिष्टातकपिंजरितं सुचिरोच्छ्रितविविधकुसुमनिर्युहम् ।

गात्रायाससमुत्थितवहुनिःश्वासप्रकीर्णपटवासम् ॥ ८९० ॥

गुलाल से सब दिशाएँ पीली-लाल बन गईं, पगड़ी में देर से लगाया फूलों का गुच्छा भी लाल हो गया है। शरीर की थकान से निकलने वाले निःश्वास के कारण कपड़ों पर पड़ा पटवास-धूसर उड़कर इधर-उधर गिर रहा है ॥ ८९० ॥

तूर्यरषच्यामिश्रितकरता लीरुजुजं प्रनृत्यन्तम् ।

सुहुरुपजातस्वलनं संदर्शितदाह्यसौष्टवं स्थविरम् ॥ ८९१ ॥

तुरी की ध्वनि के साथ में ताली बजाकर हाथों को ऊँर उठार कर नृत्य करते हुए, एवं बार-बार गिरता हुआ वृद्ध भी अपने शरीर की दृढ़ता का सौष्टवं दिखा रहा है ॥ ८९१ ॥

कुछ छोग चैत्र वैशाख में, कुछ छोग फाल्गुन और चैत्र में वसन्त मानते हैं। 'वसन्तः कुम्भसौमयोः, एवं मधु-माधवो वसन्तः, फाल्गुन-चैत्री वसन्तः'—यह भी पाठ है। सुश्रुत एवं धरक में दोनों पाठ हैं।

वरपीडनोपमर्दव्यतिकरसमये कदर्व्यमानोऽपि ।

स्तनमण्डले स्थितोऽहं त्वं पुनराकृष्य कुत्रचित्तिष्ठ ॥ ८६६ ॥

हार और कचुकी (चोला) में घातर्चित—हार चोली से कहता है—  
हाथों द्वारा स्तनों में मर्दन करने समय पीडित होता हुआ मैं, लगातार  
स्तनों पर ही बना रहा, तू तो रींचिकर दूर फेंक दी गई यो ॥ ८६६ ॥

अधुनाऽन्तरयसि मामिति कोपादिव वारवाणमभिरामम् ।

बहुचित्रपदन्यासैर्वल्गन्त्या हन्ति हार उच्छ्रलित ॥ ६०० ॥

श्रीर और तू मुझको रोकती है, मेरे और स्तना के बीच में तू आता है,  
नृत्यसमय में नाना प्रकार के आश्चर्य कारक पात्रप्रक्षेपा से ऊपर कों उठता  
हुआ हार बीच से सुन्दर चोली को इस प्रकार कहता है । [ वारवाण-वार  
वर्णीय मुन्दर वान स्पृक्निर्म यस्य तत् कचुक्-चोला ] ॥ ६०० ॥

चूतलता धम्मिल्लस्थानन्युतशेखर दधौ श्लायम् ।

अधृत पतन्निर्यूहा न त्वेषा मदनिका वेणीम् ॥ ६०१ ॥

पंचे हुए जूँ से गिरी हुई माला को राक्कर चूतलता ने प्रशंसा प्राप्त  
की । और इत मदनिका ने वेणी से गिरते हुए पूलां ने गुच्छे को नहीं  
सम्भाला । [ अशौशल से या मदातिरेक के कारण गिरता हुआ गुच्छा नहा  
रोका जा सता ] ॥ ६०१ ॥

स्तनभाराग्रतस्य प्रतनोर्मप्यस्य नास्ति तेऽपेक्षा ।

इत्यमित्र पादलम्बी व्रीडन्त्या नूपुरी रसत ॥ ६०२ ॥

पैरा में पहने नृत्य करते समय बजते हुए नूपूर बह रहे हैं—कि स्तनों के  
भार से मुग्धे हुए वह माग के आगे कुछ मध्यमाग की अपेक्षा नहा है—उसका  
कुछ मूल्य नहीं ॥ ६०२ ॥

बहति स्म यं नितम्बं वक्षमपि शृङ्खलेण मन्दसंचारा ।

कलयति च तूललघुं, जयति मनोजन्मनो महिमा ॥ ६०३ ॥

जो गजगामिनी प्रडी फटिनाई से नितम्ब के भार को येन उन प्रकार से  
उठाये हुए भी, वही नृत्य के समय नितम्ब के भार को कपास से हल्का समझती  
है, वामदेव की महिमा की जय है, उसी की यह महिमा है ॥ ६०३ ॥

उदयनसमनुदातो नर्तति वसन्तकोऽपि मुदितस्मा ।

हास्यप्रपाभिराम चर्चरिकाधेन तन्मध्ये ॥ ६०४ ॥

राजा उदयन से आगा लेकर प्रसन्न हुआ वसन्त भी चर्चरिका के आगे  
डुक्के को गाता हुआ, मदनिका और चूतलतिका के बीच में हास्य और लज्जा  
से सुन्दर बना नृत्य करने लगता है ॥ ६०४ ॥



धीरोद्धतललितपदैः क्रीडित्वा ते चिराय नरनाथम् ।

प्रद्योतस्य सुतायाः संदेशकमूचतुः समुपगम्य ॥ ६०४ ॥

राजा का शास्त्रानुकूल धीर-उद्धत ललित पदों से देर तक मनोरञ्जन करके, उन्होंने राजा के समीप आकर वासवदत्ता का संदेश कहा ॥६०४॥

आदिशति देव देवीत्यर्घोक्ते, ते सलज्जमन्योन्यम् ।

श्रवलोक्त्य मुखं, नहि नहि-विज्ञापयति प्रणम्य वि येन ॥६०६॥

हे देव । देवी आज्ञा करती है, इतना कहने पर ही लज्जा से एक दूसरे का मुख देरकर कहने लगी नहीं, नहीं, विनय के साथ प्रणाम करके देवी निवेदन करती है ॥६०६॥

मकरध्वजस्य पूजां त्वत्पादसरोजसन्निधौ कर्तुम् ।

पृथिवीमण्डलमण्डन समीहते मे मनोवृत्ति ॥ ६०७ ॥

हे पृथ्वीभूषण ! आपकी उपस्थिति में मकरध्वज की पूजा करने की मेरी इच्छा है ॥६०७॥

प्रियरतिभोगो मदनो दयितयमन्तो जनस्य मनसि वसन् ।

भावेन भवान् पूज्यो, लोकस्थित्या नु कुसुमशरपाणिः ॥ ६०८ ॥

कामदेव की पूजा से दो लाभ हैं; अतः मन से तो आपकी पूजा हो जायेगी, और लौकिक व्यवहार में मकरध्वज की पूजा सम्पन्न होगी । आपको भी रति-सम्भोग प्रिय है, मित्र वसन्तक भी प्रिय है, आप सबके हृदय में बसते हैं । काम-देव को भी अपनी पत्नी रति का भोग प्रिय है, उसका भी सखा वसन्त है, काम भी सबके हृदय में बसता है ॥६०८॥

इति दत्त्वा संदेशं प्रकृतियय.कालसमुचितं भ्रान्त्वा ।

ते मदमदनाविष्टे धभूयतुर्जवनिकान्तरिते ॥ ९०६ ॥

इस प्रकार देवी का संदेश देकर स्वाभाविक गर्व एवं यौवन जय काम से आविष्ट वे दूतियाँ—स्वाभाविक हास्यादि; वय-यौवन, काल मदन महोत्सव से अनु-सार धूमकर-चलकर नेपथ्य में चली गई ॥६०६॥

अपनीततिरङ्गरिणी सतो भवन्नृपसुता समं चेष्टया ।

अविदितरत्नावल्या पूजोचितवस्तुहस्तयाऽनुगता ॥ ९१० ॥

हस्ते पीछे, परदे को हटाकर वासवदत्ता दासी के साथ ( काचनमाला के साथ ) रंग मंच में आती है । वासवदत्ता की जानकारी के बिना ही ग्वावली

१. मधुरच ते मन्मथ साहचर्यादसावदर्शऽपि सहाय एव ।

समीरणो नोदयिता भवेति स्वादिरश्वते न हुताशनस्य ॥ कुमारः ३.

मी पूजा को सम्पूर्ण सामग्री हाथ में लिये उमने पीछे पीछे प्रविष्ट होती है ॥ ६१० ॥

अथ दृष्ट्वा सागरिका प्रमादितां परिजनस्य निन्दित्वा ।

कांचनमालामवदन्नुपमहिषोजातसंक्षोभा ॥ ६११ ॥

इसके पीछे सागरिका ( रत्नावली ) को देखकर, परिजनों के आलस्य की निन्दा करते हुए, वासरदत्ता ने क्रोध में काचनमाला को कहा ॥ ६११ ॥

प्रेषय कन्यामेनाभवरोधं, त्वं गृहाण कुसुमादि ।

यावन्न भवति विषये वीक्षणयोर्भूमिनाथस्य ॥ ६१२ ॥

इस कन्या को [ रत्नावली को ] घर में भेज दो और पूजा की सामग्री तुम ले लो, जिससे कि राजा की श्रौंखों के सामने यह न आये ॥ ६१२ ॥

उपगम्य ततश्चेद्री तामवदत्त्यं किमर्थमायाता ।

मेधाविनीं विमुच्य, व्रज, तस्मिन्मा विलम्बस्य ॥ ६१३ ॥

इसके पीछे काचनमाला रत्नावली के पास जाकर कहने लगी कि तू 'मेधाविनी' (मैना) को छोड़कर क्यों चली आई, जल्दी से जा, देर मत कर ॥ ६१३ ॥

विहिते देव्यादेगे मनसीदं संविधाय सा तर्था ।

विद्वागो मुसंगताया हस्ते निहिता, मनोभवसपर्याम् ॥ ६१४ ॥

अथलोकयामि तावत्तिरोहिता सिन्दुवारविटपेन ।

तातान्त पुरिकाभिर्यथाऽर्च्यते किं तर्धतदुत नेति ॥ ६१५ ॥

देवी का आदेश है, यह मन में समझकर कि मैना को तो मेने मुसंगता के हाथों में सौंप दिया है, इससे यहाँ लड़ी रहकर, कामदेव की पूजा को सिन्दुवार वृक्ष की श्रेष्ठ में छिपकर देखूँगी । क्या कामदेव की पूजा यहाँ भी उसी प्रकार से होती है, जैसा की मेरे पिता के घर में होती थी ॥ ६१४-६१५ ॥

पिएडोवृत्तमिव रागं हृच्छयमिव लब्धविप्रहोत्कर्षम् ।

समुपेत्य वत्सराजं जगाद् सा जयतु देव इति ॥ ६१६ ॥

राग और स्नेह ही मानों पिएडानार घनीभूत हो गया हो, काम ने ही मानों अतिराग मुन्दर शरीर धारण कर लिया हो—ऐसे वत्सराज उदयन के पास जाकर वासरदत्ता ने कहा—देव की जय हो ॥ ६१६ ॥

परिमुक्तमपि नचत्वं शृंगारं मदनपर्येषा नीतम् ।

भजमानो भजमानां म्यागतवचसाऽभिनन्य तामूचे ॥ ६१७ ॥

परम अनुरागवती वासवदत्ता का स्वागत करते हुए राजा ने कहा, अन्त और बाहर सम्पूर्ण रूप में अनुभूत शृंगार भी मदन महोत्सव के कारण फिर से अनुत्तपूर्व की भाँति नया ही हो जाता है<sup>१</sup> ॥६१७॥

भर्गविलोचनपावकदाहाभ्यधिका मनोभवो मन्ये ।

प्राप्स्यति तव करसगमसुराविरहसमुत्थिता पीडाम् ॥ ६१८ ॥

कामदेव को शिव की ओर की अग्नि से जतने का जितना दुःख हुआ था, उससे भी अधिक दुःख उसे तुम्हारे हाथ के स्पर्श के विरह का होगा—ऐसा मैं मानता हूँ । ( पूजा करते समय कामदेव को तुम्हारे हाथ का स्पर्श उसे मिल जायगा, परन्तु पूजा का समाप्ति पर तुम्हारे हाथ के हटने से विरह का दुःख उसको होगा ) ॥ ६१८ ॥

सा मन्मथमभ्यर्च्य (भ्यार्चत् ?) क्षितिनाथ तदनु साधिक तस्याम् ।

परमा मुद् वहन्त्या विग्रहवन्मदनमनसि कन्यायाम् ॥ ९१६ ॥

वासवदत्ता ने प्रथम कामदेव की पूजा की, फिर इसके पीछे विशेष रूप से राजा की पूजा की । इससे कन्या-सागरिका ( राजावली ) के मन में विश्वास हो गया कि कामदेव शरीरवाला है इसलिये उसने अतिशय प्रसन्नता हुई । ( सागरिका ने कामदेव की पूजा नहीं देखी—उदयन का ही पूजा को देख कर कामदेव को शरीरवाला समझा—इससे प्रसन्नता हुई क्योंकि उसके घर में अशरीरी कामदेव चित्ररूप में पूजा जाता था ) ॥ ६१६ ॥

शृंगाररसमुद्र सोत्कलिक निपितिते तथा नृपतौ ।

तारमधुरस्फुटार्थं नग्नाचार्यं पपाठ नेपथ्ये ॥ ६२० ॥

उत्कण्ठा के साथ शृंगार रस के समुद्र में उदयन को गोता खाते देख कर नग्नाचार्य वैतालिक ने ऊँचे और मधुर स्वर में स्पष्ट अर्थ वाली इस आर्या को परदे में से पढा ॥ ६२० ॥

नयनानन्दमरुण्डितमण्डलमभिरामममृतरश्मिव ।

सायन्तन आस्थाने क्षितिपतय सन्त्युदयन द्रष्टुम् ॥ ६२१ ॥

आँखों को आनन्द देनेवाले सम्पूर्ण पृथ्वी में अभिराम चन्द्रमा के समान शीतल राजा उदयन का देखने के लिये सब राजा लोग सायंकाल के समय सभामण्डप में एकत्रित हुए हैं ॥ ६२१ ॥

उन्चारितेऽन्यनाग्नि त्रिदशपती तत्क्षणाच्च्युतपदायाम् ।

उत्पन्नविस्मयरतिनिदधे नरभर्तुरात्मना हृदये ॥ ६२२ ॥

१ काब्र प्रवेश येश-न्यागार स्थिति । वनपधनाभि ।  
विरहदोऽपि हि धूनां नक्षत्रमुपनीयते रागः ॥

बैतालिका के मुग्न से कुछ थोड़े से ही शब्द निकलने पर सागरिका सोचने लगी कि यह इन्द्र का अथवा किसी अन्य का नाम लेंगे। परन्तु जब उसने उदयन का नाम लिया तो विश्वेश्वर की कन्दा सागरिका के मन में विस्मयपूर्ण स्नेह प्रेम टलन हो गया—उसे आश्चर्य हुआ ॥ ६२२ ॥

अथमुदयनः स राजा वातः सत्कृत्य मां ददौ यस्मै ।

हन्त परप्रेषणमपि न निष्फलं साम्प्रतं जातम् ॥ ६२३ ॥

क्या यह वही उदयन है, जिसकी मुझे पिता ने सम्मान के साथ सीपा था। दूसरे के यहाँ वास करने भी मेरा निष्फल नहीं हुआ—इसकी मुझे प्रसन्नता है ॥ ६२३ ॥

यावन्न वेत्ति कश्चित्तावद्वितस्वरितमेव निर्यामि ।

इति कथमपि नायकतो हृत्वा दशमुत्सवस्य रंगमुच्यम् ॥ ६२४ ॥

जब तक कोई दूसरा नहीं जानता, तब तक मैं यहाँ से हट जाती हूँ। इस प्रकार सोच कर किसी प्रकार नायक का आँवा से जबर रगनन्द को छोड़ गई ॥ ६२४ ॥

कन्दर्पमहमहोत्सवहृतहृदयैर्नावधारितोऽग्माभिः ।

संध्यातिक्रमकालः पश्य त्वं प्रियवयस्य तथा हि ॥ ६२५ ॥

कामदेव के महोत्सव में मन लगा रहने के कारण, हमने संध्याकाल की निकल मुला ही दिया, हे मित्र ! देख—॥ ६२५ ॥

उदयनगान्तरितमियं प्राची सूचयति दिङ् निशानाथम् ।

परिपाण्डुना मुखेन प्रियमिव हृदयस्थितं रमणी ॥ ६२६ ॥

यह पूर्व दिशा अपने पीले मुख से उदयाचल में छिपे चन्द्रमा की सूचना दे रही है; जिस प्रकार कि कोई रमणी अपने पीले चेहरे से हृदय में स्थित प्रिय की सूचना देता है ॥ ६२६ ॥

देवि त्वन्मुखपद्मं पद्मान् विदधाति पश्य त्रिच्छायान् ।

अलयोऽपि लज्जिता इव शनैः शनैस्तदुदरेषु लीयन्ते ॥ ६२७ ॥

हे देवा ! देवी कुक्षरा मुख-कमल-इन कमला को भी कान्तिहीन कर रहा है, भ्रमर भी लज्जित होकर धीरे-धीरे इन कमलों के अन्दर छिप रहे हैं ॥ ६२७ ॥

एवमभिधाय चिरेत्तरणान्नामै परिक्रमं कृत्वा ।

नेष्कामिक्या ध्रुवया चिनिर्ययी नायकोऽपि सह सर्वैः ॥ ६२८ ॥

इस प्रकार सत्ता समय का वर्णन करते, दो-चार बदन रङ्गनन्द पर चलकर राजा भाहर निकलने की ध्रुवा-गीति को बोलते हुए, सब पात्रों के साथ निकल गया ॥ ६२८ ॥

१. अंकान्ते निष्क्रमणे पात्राणां गीयते प्रथमेषु ।

निष्क्रामोपात्रगुणं विद्यान्नेष्कामिकीं तां तु ॥

अवे जातसमाप्तौ गीतातोद्यध्वनौ च विश्रान्ते ।

प्रेक्षणकगुणग्रहण नृपसूनु प्रववृते कर्तुम् ॥ ६२६ ॥

अक समाप्त हो जाने पर, गीत-वाद्यके शान्त हो जाने पर राजपुत्र समर भू नाटक के भाव अभिनय-सगीत आदि गुणों की विवचना करने में प्रवृत्त हुआ ॥६२६॥

नाम्यप्रयोगतत्त्वे मतयो न विशान्ति मादृशा प्राय ।

वाहनयानपदातिग्रामादिककार्यदत्तहृदयानाम् ॥ ६३० ॥

मुझ जैसे लोगों की बुद्धि प्राय करके नाम्य प्रयोग के मर्म को समझने में नहीं चलती । क्योंकि हम लोगों का मन तो घोड़े, हाथी, आदि वाहन, रथ आदि यान, पदाति, ग्राम आदि के कार्यों में ही लगा रहता है ॥ ६३० ॥

आस्ते लिखितो ग्रामो गृहाण त सत्प्रदेशयद्बुभूमिम् ।

वासय तत्रावास भवसि तत्प्रभुरो दिवसै ॥ ६३१ ॥

अच्छी उपजाऊ भूमिवाला गाँव तुम्हारे नाम लिए दिया उसको लेकर वहाँ निवास करो थोड़े दिनों में तुम वहाँ के ठाकुर बन जाओगे ॥ ६३१ ॥

कृतजीवनसस्थो हि त्वमपि किमर्थं करोपि विज्ञप्तिम् ।

अर्पय वा यदि नेच्छसि कुरु हस्तदानेन ॥ ६३२ ॥

जीवन निर्वाह का प्रबंध हो जाने पर भी क्यों अब धेतनबुद्धि की माँग कर रहा है, यदि नौकरी करने की इच्छा नहीं है, तो नौकरी को छोड़ दो ॥ ६३२ ॥

न च पत्तयो न सप्तिर्न च पोष्यजनस्तथाप्यसन्तुष्ट ।

लभमानेऽपि सदा य चिरन्तनत्वाभिमानेन ॥ ६३३ ॥

तुम्हारे पास न तो पदाति-सिपाही हैं, न घुड़सवार हैं, और न स्त्री पुत्र नोकर आदि के पोषण का भार है तो भी जो तुमको मिल रहा है, उससे सदा असन्तुष्ट रहते हो, तुम समझते हो कि मैं पुराना नौकर हूँ, इससे मुझे और अधिक मिनना चाहिये ॥६३३॥

विज्ञप्तिकोन्मुखत्व दूरत एवावधारित भवत ।

तूष्णीं क्रियतामस्मान्छोष्यसि कार्यं प्रतीहारात् ॥ ६३४ ॥

तुम जो कहना चाहते हो, इसे मैंने दूर से ही तुम्हारा मुख देखकर जान लिया है । चुन होकर बैठ जाओ, द्वारपाल से कार्य की सूचना तुमको मिल जायेगी ॥६३४॥

यूयं कुट्टुम्वमध्ये, क्व गम्यते, गोत्रपुत्रसामान्यम् ।

आदाय संविभागं स्वगृह इव स्थीयता यथासौख्यम् ॥ ६३५ ॥

तुम तो घर के आदमी हो, कहाँ दूसरी जगह जा रहे हो, गोत्र कुल, पुत्र सन्तान की भीति अपना भाग— हिस्सा लेकर सुल पूर्वक यहीं रहो ॥६३५॥

अभ्यन्तरव्ययार्थं न विलब्धो यो मया महोद्गम ।

तत्रापि तेऽनुबन्धो जाने किं करोमीति ॥ ६३६ ॥

पर लर्च जानगी लर्च के लिये जो बड़ा ग्राम मैंने अलग कर दिया है, उसकी आर्य में नहीं लेता, इस पर भी तुम्हारा माँग बराबर बनी ही रहती है, मैं नहीं जानता, क्या करूँ ॥६३६॥

प्रथमतरमेव कल्पितमनल्पफलजीवन प्रदेशस्थम् ।

अद्यापि ते न जात, नियोगिना पश्य मन्थरताम् ॥ ६३७ ॥

मैंने पहले ही अतिशय लाभ देने वाला भूमिभाग दे दिया है, परन्तु आज तक वह तुमको नहीं मिला, देखो काम करने वाला का आलस्य ॥६३७॥

! एवम्प्रायैरनुदिनलाभोदयमोहकारिभिर्वचनैः ।

फलशून्यैरनुजीवी प्रतारित क न्यत्कालम् ॥ ६३८ ॥

इस प्रकार प्रतिदिन लाभ द्रव्य लाभ, उदय उन्नति विषयक भ्रमेले वाले, व्यर्थ के विषय में नोकरो से छेत्राते हुए—उगे जाते हुए कितना समय चला जाता है ॥६३८॥

एतद्विषये नैपुण्यमत्र तु भूमिभुजा समाश्रित्य ।

! मुखरतया कथयामो जडमिध सामाजिकोचित किञ्चिन् ॥ ६३९ ॥

नाटक के विषय में राजा लोग अच्छे पारखी हाते हैं, इस लोकप्रसिद्धि के कारण सामाजिकों के अनुसार नूर्ख की भाँति कुछ थोड़ा सा कहता हूँ ॥६३९॥

सप्ताश्रय पडात्मा शारीरद्विप्रमाणपरिमाण ।

सत्त्वाधिक्याज्ज्येष्ठो व्यस्तसमस्तैस्त्रिभिर्विनिष्पाद्य ॥ ६४० ॥

नाटक का शरीर—सात स्वर्ग वाता है [ पद्म, ऋषभ, गायार, मध्यम, पंचम, पैवत और निपाद ] इनकी मुखर सरस, सरास, मधुराक्षर, अलंकार आदि छ आत्मा हैं । नाटक भी शरीरधारी है—शरीर की भाँति है, इसका तीन प्रमाण [ लोक, वेद और अध्यात्म ] परिमाण हैं । वाच प्रयोग में सत्त्व की अधिकता रहने से श्रेष्ठ है । तीन—समा, सातोवहा, गोपुच्छा इन तीन लक्ष्यों आसार प्रसार द्वारा सम्पादित होता है ॥६४०॥

१ उद्गस्तु नारीवदप — उद्गंताइधमा द्रम पत्तनादुत्तमद्रव स ।

उद्गमश्च निवशश्च स एव द्रम इत्यपि ॥ वाचस्पति.

पत्तन—पचास गाँव का. कबंठ—चारसौ गाँव का ।

स (सु?) कुमाराविद्वक्त्रिय उपरजकरजितो विविधवृत्ति ।

आदेयहेयमध्यैर्भावै सपादित प्रयोगोऽयम् ॥ ६४१ ॥

गान-वाद्य-नृत्य अभिनय आदि सुसुमार त्रियात्रा से नाटक श्रोत प्रोत होता है, गमक आलाप से सयुक्त है भारती, कौशकी, सात्वती, आरम्भो चार वृत्तियों वाला है, आदेय-ग्रहण करने योग्य हेय-त्याज्य, मध्य व्यभिचारि भावों के साथ यह नाटक किया गया ॥६४१॥

गम्भीरमधुरशब्द परिवृद्धितगीतविविधभगयुतम् ।

दर्शयतो वैचित्र्य न भ्रष्टो वादकस्य लयकाल ॥ ६४२ ॥

सुरजादिवाद्य वादक का विस्मयजनक बजाना गम्भीर होने पर भी मसुर था, नाना प्रकार के गीतों की परम्परा से मिला हुआ था—उनसे बड़ा हुआ था, लय का समय कहीं भा चूका नहीं ॥ ६४२ ॥

अपरित्यक्तस्थानकरसकाकुव्यजितस्फुटार्थपदम् ।

अभिरामाविश्रान्त पठित निरवद्यमखिलभापासु ॥ ६४३ ॥

१ नाटक को पुरुष के रूप में वर्णित किया है—पुरुष में रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और हृत्त ये सात धातु हैं, ये शरीर के आश्रय हैं, शरीर इनमें आश्रित है—नाटक में भी सात स्वर हैं। पुरुष में छ आत्मा हैं—अक्षमय, प्राणमय, मनोमय बुद्धि, आनन्दमय, पाच कोष या नेत्र, कर्ण, रसना, त्वचा, नासिका पच ज्ञानेन्द्रिय और आत्मा ये छ आत्मा हैं, नाटक में—सुस्वर आदि छ आत्मा हैं। पुरुष में शरीर के अन्दर रहने वाला जीव शरीर है, प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द ये तीन प्रमाण हैं, सत्व रज और तम इन तीन गुणों में सत्वगुण सबसे अधिक श्रेष्ठ है। स्थूल-सूक्ष्म और कारण इन तीन शरीरों के समस्त-समष्टि रूप में विराट, द्विरण्यगर्भ और ईश्वर ये तीन बनते हैं, व्यस्त-व्यष्टि रूप में प्राज्ञ, तैजस, विरवाक्य ये तीन बनते हैं। सुसुमार भूतदशा आदि कामज भावों से युक्त, जप, याग आदि क्रियाएँ हैं, रमणीय दर्शन भाग आदि से प्रसन्नता मिलती है, काम, क्रोध, हर्ष, शोक आदि नाना प्रकार की चित्तवृत्तियाँ हैं, कुछ पदार्थ अनुकूल होने से प्रश्रय करने योग्य हैं, कुछ पदार्थ प्रतिकूल होने से त्याज्य हैं, और कुछ पदार्थों के प्रति उदासीनता उपेक्षा का भाव रहता है। इस प्रकार का पुरुष जीवात्मा है।

२ तालान्तरालवर्त्ती य स कालो लय उच्यते ।

विविध स च विज्ञयो द्रुतो मध्यविलम्बित ॥

पात्रों के पठित की प्रशंसा—पात्रों के पढ़ने में उर, कण्ठ और फिर इन स्थानों का त्याग नहीं हुआ, मन्द्र मध्य और तार स्वर से पढा जाता था, पढ़ने में रस, शृङ्गारादि, काकु—अर्थ और पद सब विलम्बित स्पष्ट थे। नाटक में प्रयुक्त होनेवाली सब भाषाओं में पठन, सुन्दर, स्वावट रहित तथा दोषरहित था ॥ ६४३ ॥

नियमितदीपनगमनं द्रुतमप्यविलम्बिताललययुक्तम् ।

रसवत्स्वरोपपन्नं कृतसाम्यं साधु गातृभिर्गीतम् ॥ ६४४ ॥

गायकों की प्रशंसा—गायकों ने भी अच्छे प्रकार उच्चमता से गाया—नियम से स्वरों का आरोह अनरोह आदि हुआ है, द्रुत-मध्य विलम्बित इनसे ठीक प्रकार मिले ताल और लय थे, शृङ्गार-और आदि रसों के अनुसार स्वर आवाज थी, स्वरों में परस्पर बराबर समता बनी रही ॥ ६४४ ॥

प्रकृतिविशेषाद्यस्थाप्रतिपादकवेपरचनसामग्रा ।

अनुरणमभ्यतीतं सिद्धिद्वयसंपदा धाराम् ॥ ६४५ ॥

नाटक की प्रशंसा—राजा, विदूषक आदि, नायक-प्रतिनायक आदि के स्वभावविशेष एवं कामकृत अभिलाषा आदि अवस्था को बतानेवाली पात्रों की वेशभूषा की सम्पूर्णता से आङ्गिक, वाचिक आदि अनुरण करने में सबको नीचे कर दिया एवं सगुणा और सालकार दोनों प्रकार को निर्दोष सिद्धि एवं स्तुति प्राप्त की ॥ ६४५ ॥

भरतमुत्तरुपदिष्टं क्षितिपतिनहुपावरोधनारीणाम् ।

मन्ये ता अपि नाट्ये शोभासंदोहमोदसां नापुः ॥ ६४६ ॥

भरत के पुत्र—कोहल आदि ने नहुप राजा की अन्त पुत्र-मुन्दरियों को नाटक की वैसी शिक्षा दी थी, मैं मानता हूँ उन्होंने भी नाट्य के विषय में इस प्रकार की कान्ति को प्राप्त नहीं किया था ॥ ६४६ ॥

सुरिल्लष्टसन्धिवन्धं सत्पात्रसुवर्णयोजितं सुतराम् ।

निपुणपरीक्षुदष्टं राजति रत्नावलीरत्नम् ॥ ६४७ ॥

१. यथा जन्मान्तरान्प्रापान् कण्ठे कस्यापि रक्तता ।

तथैव पाठमौन्द्यं नैकवन्त्रविनिर्मितम् ॥ वाच्यमीमांसा ।

श्रोत्र, प्रसाद, माधुर्य औदार्य और साम्य ये पाँच गुण पठन के हैं ।

२. हास्यसृष्टारणोः स्वरितोदान्त्रं, वीररीन्द्राद्मुतेदूदात्तस्वरितं, कदम्बवीभसमयानकेष्वनुदात्तस्वरितमुत्पादयेत् ।



यह रत्नवली नाटिका रत्न की भाँति शोभित हो रही है, (रत्नावली के पक्ष में)—इस नाटिका में मुख्य प्रतिमुख गम विमर्श और निर्दोषण पाँचों सन्धियों अच्छी प्रकार से सशिल्प मिली है, उत्तम पात्र एवं उत्तम वर्ण अक्षर शब्दों से यह युक्त है, चतुर पराङ्गों ने भली प्रकार परीक्षा की है। (रत्न के पक्ष में)—रत्न का सविवन्ध भली प्रकार से जुटा है, अच्छे कारीगर ने सुवर्ण में भली प्रकार जडा है, रत्न परीक्षका ने भी भली प्रकार से रत्न की परीक्षा की है ॥ ६४७ ॥

एवविधगुणकथनप्रसगिति विभावितात्मनृपतनये ।

पठति स्मार्यामन्य स्मृतिविषयमुपागता प्रसंगेन ॥ ६४८ ॥

इस प्रकार से नाटक के गुणों की प्रशंसा करने में राजपुत्र के मन लगाये रहने पर, किसी दूसरे व्यक्ति ने प्रसंगवश यह आई इस आया को पढा ॥ ६४८ ॥

सग्रामादनपसृति प्रेक्षाभिज्ञा मुभापिताभिरति ।

आच्छोदनाभियोग कुलनिष्ठा राजपुत्राणाम् ॥ ६४९ ॥

सग्राम से न भागना, नाट्य की समझना, मुभापित-सुन्दर हितकारी बचनों में व्यसन, मृगया में अभ्यास ये राजपुत्रा के घर की विचार्यें हैं ॥ ६४९ ॥

एतद्वस्तुनि याते श्रुतिमार्गं नृपतिनन्दनो रसत ।

आरब्धकथाच्छेदकमारोपदवर्णन चक्रे ॥ ६५० ॥

इसको सुनते ही राजपुत्र समरभट्ट ने दुख्त ही प्रारम्भ की हुई कथा को समाप्त करके मृगया का वर्णन प्रारम्भ किया ॥ ६५० ॥

चललक्ष्यवेधकौशलमखप्रजवे स्थिरासनाभ्यसनम् ।

भूमिविभागज्ञान भवन्ति मृगयाभियोगेन ॥ ६५१ ॥

मृगया के अभ्यास में अस्थिर लक्ष्य के वेधन में कौशल होता है, दीठते हुए घोड़े पर दृढ़ता के साथ जमहर बैठा जाता है, मृगया में नदी, पर्वत, जंगल क्षेत्र आदि रूप में पृथ्वी का परिचय हाता है ॥ ६५१ ॥

१. न तच्छ्रुतं न तच्छ्रुतं न सा विद्या न सा कक्षा ।

नासौ योगा न तस्मिन् दनाटकास्मिन् न दृश्यते ॥ भरतनाट्यशास्त्र

२. मृगया क खाम मेदरउदङ्गुशोदर छपु भवसुपापानघोर्षं वपु,

सत्त्वानामाप छत्रपते विकृतमद्यत्त मयसाधयो ।

तरुपरं स च घातिना यदिपथ सिष्यन्ति लक्ष्य खले,

मिष्यैव व्यसन वदन्ति मृगयामीदम्भवोद् कुत ॥

शास्त्रार्थ १५.

बहति जवेन तुरगे निद्रिडस्थितपादकटकपादाप्र ।  
 तिर्यक्प्रसिहितकाचो निम्नोन्नतमप्रतो भुज पर्यन् ॥ ६५२ ॥  
 यात्राण घात्रत्याकुलिते निरनन्दुभिर्भाल्या ।  
 गोचरपतिते जीवे लनुक्रिय क्षिपति मार्गेण धन्य ॥ ६५३ ॥  
 ( सदानितकम् )

वेग से गैन्ते हुए घोड़े पर दबता से उठे, रकाव में पैर का अगला भाग डाले, शरीर का आधा आधा झुकाने, आगे का नाचा-ऊँचा भूमि का देखते हुए, शिकारा कुत्तों से भय से प्रार्थना का आवाज लगाकर दौड़ते हुए प्रार्थना के आँख के सामने जाने पर फुरता से बुरस्त गान चलाना-शिकारा के लिये अति शय गौरव का बात है ॥ ६५२-६५३ ॥

मूले स्थितस्य निभृत मृगशुभिन्न्चाट्य ढौकित निरुटे ।  
 पातयतो मृगमुत्प्लुतमव्यपदेश्य सुख निमपि ॥ ६५४ ॥

वृद्ध का मूल में शान्त निरुचल छिपकर, पैर-शिकारियों द्वारा थाली धनस्तर आदि बचाकर समीप में लाये, बूढ़ते हुए मृग को बाण से मार कर गिराने में एक अनिर्बचनाय शान्त मिलता है ॥ ६५४ ॥

गीतश्रवणोत्कर्षं निरवलवृणुकनलगर्ममुलहरिणम् ।  
 उपवेशितमस्यन्त् स्पृहणीया एव गृह्णन्ति ॥ ६५५ ॥

गीत का सुनने का लालसा से जानों को खड़े किये, मुख में तिनकों के कणल को लिये, निरुचल शान्त बैठे, दिव्य को भाग्यमान हा जानित पक पाते हैं ॥ ६५५ ॥

दानानलसन्तापान्निर्घात गहनवीरघोऽमिसुखम् ।  
 यो निरुणद्धि स धन्य सूकरमेकप्रहारेण ॥ ६५६ ॥

जगन में लगा दानानल का गरमी से उचर निरुलते हुए—सामने को गहन भाडियों में घुसते हुए सुअर को भाले का एक हा चोट से अपने पर चोट करने से जो शिकारी रोक देता है, वह सुख करने योग्य है ॥ ६५६ ॥

घनवृत्तोदरमुप समुपेत्य स्वैरममृतपदशब्दम् ।  
 व्याधवर एव कुरुते निर्जीव हेलया शशकम् ॥ ६५७ ॥

घने वृत्ता में सुगन्ध सोते हुए खरगश क पास उचर शिकारी पैरों की आवाज किये बिना धाने से पकड़कर, जिना किसी परिधन के सरलता से ही खरगश का शिकार कर लेता है ॥ ६५७ ॥

इति विदधति सैहभटात्राग्नेदशक्तिलाघवश्लाघाम् ।

हृदयागतामगायन् प्रसंगतो गीतिकामपर ॥ ६५८ ॥

समरभट्ट के इस प्रकार से मृगया सामर्थ्य में क्षिप्रकारिता का वर्णन करते रहने पर किसी अन्य व्यक्ति ने प्रसंगवश मन में आई इस ग्राह्य को गाया ॥ ६५८ ॥

आस्ता व्यापाररस प्रवर्तिता सकथाऽपि मृगयाया ।

अन्तरयति तन्मनसामाहारादिक्रियोचित कालम् ॥ ६५९ ॥

मृगया सम्बन्धी सुन्दर रस वाली कथा को भी श्रवण नन्द करना चाहिये, इसने कारण आहार आदि का उचित समय भीत रहा है ॥ ६५९ ॥

अवधार्य गीतिकार्थं दान प्रति धननिधुत्तमभिधाय ।

उत्तस्थौ समरभटो मजरिका समवलोकयन् प्रेम्णा ॥ ६६० ॥

गीतिका के अभिप्राय को समझकर कोपाध्यक्ष को पारा के लिये दान देने की आज्ञा देकर, मजरी को प्रेम से देखता हुआ समरभट्ट उठ खड़ा हुआ ॥ ६६० ॥

गत्वाऽथ स्वावसथ विनिवर्तितभोजनादिवर्तव्य ।

मजरिकाकृष्टमना अभिद्ध्यौ सचिवसन्निधावेवम् ॥ ६६१ ॥

अपने निवास स्थान पर जाकर, भोजन आदि करणीय कार्यों को सम्पन्न करके, मजरी में अनुरक्त मन वाला समर भट्ट मन्त्री से इस प्रकार से कहने लगा ॥ ६६१ ॥

भ्रूभगस्मितवीक्षितमृदुवक्रघर्षोऽगहारगमनेषु ।

कुसुमप्रहरण एको युगपद्विहिताश्रय कथ तत्या ॥ ६६२ ॥

उत्त मजरी के भ्रूभग, स्मित [ मन्दहास्य ], विशेष रूप से देखने में, कोमल स्वर में, वक्रोक्ति में, हाथ पैर आदि श्रगो के चालन में, चलने में, अरेले कामदेव ने किस प्रकार से एक साथ में आश्रय लिया है ॥ ६६२ ॥

सुन्दोपसुन्दनाश फलमात्मभुवस्तिलोत्तमासृष्टे ।

जनमृतये ता सृजता कि दृष्ट सुरहित तेन ॥ ६६३ ॥

तिलोत्तमा की रचना करके तो ब्रह्मा ने सुन्द और उपसुन्द दो रत्नों का वध किया था । मनुष्यों की मृत्यु के लिये इस मजरी को बनाकर ब्रह्मा ने देवताओं का क्या लाभ सोचा ॥ ६६३ ॥

सुमनोमि परिकरिता मृगशावकतरलचक्षुपस्तस्या ।

कामोचितफलहेतुर्देहभृता दीर्घिका वेणी ॥ ६६४ ॥

मृगशावक के समान चञ्चल आँतों वाली मजरी की फूलों से गूथी लम्बी वेणी, शरीरधारी मनुष्यों में प्रबल काम विकार को उत्पन्न करने वाली है ॥ ६६४ ॥

कमलमिव वदन्कमलं पिबन्ति तस्यास्त्रिविष्टपत्रयाः ।

सदलिक्रमपेतदोषं सविभ्रमं मधुमदाताम्रम् ॥ ६६५ ॥

मंजरी के कमल के समान मुक्कमल का स्वर्ग से च्युत मनुष्य ही पान करते हैं । मंजरी का मुख विलस से भूषित, बाल आदि दोषों से रहित, विलास युक्त, मधु—मद्य के समान के मदकारक तथा इंपद् रक्त वर्ण है । (कमल के पद में)—कमल भ्रमरो से युक्त—रात्रि से मुक्त, दिन में निरक्षित, तरंग वायु आदि से प्रीति रूप में हिलने वाला, मकरन्द से भरा, इंपद् रक्तवर्ण लाली लिये है ॥ ६६५ ॥

यः शैलेन्द्रनितम्बं सुरताप्यै सेवते तपोनिरतः ।

सृष्टयति सोऽपि नितम्बं सुरताप्यै समबलोक्य तन्वंग्याः ॥ ६६६ ॥

जान में लगे हुए जो व्यक्ति देवत्व प्राप्ति के लिये पर्वतों के कठिमाग-मध्यभाग का सेवन करते हैं, वे भी उस कामलगायी के नितम्ब को देखकर सम्भोग की चाह करने लगते हैं ॥ ६६६ ॥

त्रिक्रो मध्यविभागो बाह्योर्ध्वगलं परद्रयोपेतम् ।

जनयति तदपि मृगाक्षी सहस्रकरतोऽधिकं तापम् ॥ ६६७ ॥

उस मंजरी का मध्यभाग—कटि, उदर भाग तान अन्यायों से (दो ऊर्ध्वान्ध और एक निम्न) बना है, इसमें तीन वर्ण्यो हैं । दोनों माहुओं में दो कर (हाथ) हैं । तो भी यह मृगाक्षी स्वर्ग से भी अधिक सताप देती है । इसके तो पाँच ही कर हैं—दूर के हजारों कर हैं (न-हाथ एवं किरणों—दोना अर्थ हैं) ॥ ६६७ ॥

सा स्रग्धरा मुग्धना प्रहर्षिणी सैन सैव तनुमध्या ।

न करोति कस्य विरमयमिति नचिरामंजुभाषिणीसैव ॥ ६६८ ॥

१. (क) क्षीणे पुण्ये मयंलोकं विरान्ति—गीता;

(ख) स्वहरीमूले सुचरितफले स्वर्गिणो गा गता ये ।

२. विभ्रम—श्लोघः स्मितं च बुभुभामरणादिवाञ्छा,

तद्वर्जनं च सदसैव विमण्डनं च ।

आक्षिप्य कान्तवचनं छपनं सखीनि-

निष्कारणस्यितिगतेन म विभ्रमः स्यात् ॥

नागरसर्वस्व १३।१३.

३. मानसयंमुत्पायं विचार्यं कार्यमार्गां. समर्थादिमिदं वदन्तु ।

सेव्या नितम्बा किमु मूधापाणामुत स्मरस्मेरविद्यापिनीनाम् ॥ शृङ्गारशतक.

मञ्जरी स्रग्धरा-माला को धारण किये, सुवदना-शोभन मुख वाली, प्रह  
पिण्णो-हर्षदात्री, तनुमध्या-सूक्ष्म मध्य भागवाली-सुश्रोणी, रुचिरा-सुन्दरी,  
मृदुभाषिणी-मधुर भाषणशीला-होने से किसको आश्चर्य में नहीं डालती-  
सबको चकित करती है। स्रग्धरा आदि छद्मों का एक साथ समावेश किसको  
आश्चर्य में नहीं डालता? ॥६६८॥

अनुकुर्वत्या कन्या तथा तथा नायकस्तया दृष्ट ।

येन जरत्त्वप्यटनी धनुष स्पष्टा दशार्धघाणेन ॥ ६६९ ॥

रत्नावली नाटिका के अभिनय में रत्नावली कन्या का अभिनय करते हुए  
मञ्जरी ने नायक उदयन को इस प्रकार से देखा था, जिसको देखकर ऐसा प्रतीत  
होता था-मानो कामदेव ने अपने धनुष के प्रान्त भाग से बृद्धों को स्पर्श कर  
दिया हो-बृद्ध भी कामातुर बन गये थे ॥६६९॥

रूप यौवनचित्रितमनगविकृतानि नाट्यदीप्तानि ।

शमिनामपि शमगर्व समुत्पण्णन्त्यविकल तस्या ॥ ६७० ॥

मञ्जरी का रूप, यौवन, मण्डन, नाट्य से उद्दीप्त शृंगार चेंगय, मुनियों के  
शान्ति के अभिमान को सम्पूर्ण रूप में चूर चूर कर देती हैं ॥६७०॥

दग्धेऽपि वपुषि भीतिं न विमुचति नीललोहितसमुत्थाम् ।

तत्क्षेत्रे वसति यत प्रमदारूपेण शम्बरध्वसी ॥ ६७१ ॥

शरीर के जल जाने पर भी कामदेव नाल-लाहित [ शिव ] के भय से आज  
भी भयभीत होकर स्त्री के रूप में मञ्जरी के शरीर में रह रहा है। क्योंकि  
स्त्री अश्वथ है, इसलिये काम ने स्वरूप ग्रहण किया है। [ शम्बरध्वसी  
कामदेव ] ॥६७१॥

यदि च परलोकमति शृणुत श्रेयस्तपोधना मत्त ।

उत्सृज्य यात तूर्णं वारवधुमुपित स्थानम् ॥ ६७२ ॥

हे तपोधन मुनियों! यदि तुमको परलोक स्वर्ग की इच्छा है, तो मुझसे  
मोक्ष को मुनो, वेश्याओं से सेवित स्थान को छोड़कर जल्दी से दूर भाग  
जाओ? ॥६७२॥

१. स्रग्धरा - अम्भेर्यानां प्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेवम् ।

सुवदना—ज्ञया सप्तारवपद्भ्रमरभनययुता ग्ध्रीया सुवदना ।

प्रहपिण्णो—प्याराभिर्ननजराया प्रहपिण्णायम् ।

रुचिरा—जमी सनी गिति वाचरा चतुर्द्वे ।

मधुभाषिणी—सजसा जगी च यदि मधुभाषिणी—छद्मोमजरी ।

२. शृणु हृदय रहस्य यत्प्रशस्त मुनीनां, न खलु न खलु धोपिःसनिधि सनिधेय ।

हरति द्वि हरिणाञ्चो क्षिप्रमक्षिणुरप्रं पिहितरामतनुत्रं चित्तमपुत्तमानाम् ॥

चिरमपि विकल्प्य निश्चितिरियमेव स्थाप्यते, न गतिरन्या ।

तन्निर्माणे जाता लाघण्यमयाः कणा विवेकशवः ॥ ६७२ ॥

देर तरु विचारने के पीछे यही निश्चय हुआ कि इस मजरी के बनाने में ब्रह्मा के परमाणु भी लाघण्यमय बन गये थे; इसने ठीकरा दूसरा कोई रखता नहीं दीवता ॥ ६७३ ॥

आसाद्य समुद्भ्रायं तस्याः स्तनयुगलमविद्वत्प्रसरम् ।

क्षपयति यज्जनमैवं कल्पयति तद्विवेक्यान् पतितम् ॥ ६७४ ॥

मजरी के दोनों स्तन निर्माण रूप से बढ़ते हुए अपनी उन्नति के शिखर पर पहुँच कर मनुष्य का [ निरपराधी मनुष्य का ] नाश कर देते हैं । निनेकी मनुष्य श्रौंनों के सामने आये इन स्तनों को पकड़े पिना कैसे छोड़ सकता है । [ निरपराधी पुरुष को जो माग्ता है, सामने आने पर उस अपराधी पुरुष को बुद्धिमान मनुष्य पकड़ता ही है ] ॥ ६७४ ॥

स कथं न स्पृहणीयो विषयरतैस्तन्निन्तम्यविन्यास ।

शान्तात्मनाऽपि विहितं विश्वसृजा गौरवं यम्य ॥ ६७५ ॥

विषयों से विमुक्त शान्तचित्त ब्रह्मा ने मजरी के जिन नितम्बों की भारी बनाया है, उन नितम्बों की चाह विषयों में रत पुरुष क्यों न करें ॥ ६७५ ॥

स्मरणार्थस्योत्पत्तिः सुमनस इषवो धलाश्रया शक्तिः ।

सोऽपि व्यग प्रहरति, धातुरहो चित्रमाचरितम् ॥ ६७६ ॥

जिस [ काम ] की उत्पत्ति स्मरण से है; फूल जिसके नाश हैं, अमला जिसकी जिसना नश है, जिसने अग नष्ट हो गये हैं, वह व्यग अनग-काम सुना वृद्ध सन पर प्रहार करता है, यह ब्रह्मा का आश्चर्यजनक कार्य है ॥ ६७६ ॥

तिष्ठन्त्वन्ये, दृष्ट्वा सारं जगता तदङ्गनारत्नम् ।

नष्टपठनाद्यधानो भवति ब्रह्मा सनिर्वेदः ॥ ६७७ ॥

दूसरों की बात रहने दी—सारे ससार की सार भूत मजरी को देखकर ब्रह्मा भी वेदपाठ करना बूल जाता है और इसके कारण दुःखी रहता है ॥ ६७७ ॥

१. लाघण्य—सुधाफलैषु च्छायावास्तरलचमिधान्तरा ।

प्रतिभाति यद्गेषु छात्रण्य तद्विद्वेच्यते ॥

२. सुवृचमुद्यत पीनमदूरोचतमायनम् । स्तनयुग्म तदाशस्त—भविष्यपुराण.

३. नितम्बविषय नारीयास्तुन्ताममिच्छ-पृथुः । महाभोगाय संशोकः—भविष्यपुराण

४ मनोहि मूल हरदशमूर्ते—वृहत्संहिता ७७।१४।

काम जाना म ते मूल सक्त्वाजायते किञ्च ॥

यदि पश्यति ता शर्वस्तदपररामासमागमाद्विमुर ।

निन्दति मूर्धनि सोम स्मरग्निमधुक्षणं शरीरञ्च ॥ ६७८ ॥

अन्य स्त्रियों से सम्बन्ध करने में विमुख बने महादेव यदि मंजरी को एकबार देख ले, तो शिर में स्थित चन्द्रमा की तथा कामाग्नि से जलते शरीर दोनों की निन्दा करने लगे [ चन्द्रमा से कामाग्नि बढ़ती है, चन्द्रमा काम का उद्दीपक है— “परमसुहृदनगो रोहिणीवल्लभस्य”—विद्वशालभञ्जिका—१।१ ] ॥ ६७८ ॥

केशव इह सन्नहित, साऽपि मनोहारिरूपसपन्ता ।

तद्वत्तश्चयवनभुव कथमुज्जति सैन्धवीशकाम् ॥ ६७९ ॥

वह मन्त्री लक्ष्मी के समान अति रूपवती है, उसका वह स्थल-स्तनों के औन्नत्य, कठिनत्व आदि सम्पत्ति से युक्त है। इसलिये विष्णु उसमें लक्ष्मी का भ्रम करते हैं, उसी के पास रहते हैं। [ सैन्धवी-लक्ष्मी ] ॥ ६७९ ॥

उदयति न पण्डिताना कथमात्मनि कौतुक गजेन्द्रगति ।

यन्नववयसा पुमा विना क्रियायोगमुपसर्गा ॥ ६८० ॥

उस मन्दगामिनी को देखकर पण्डितों के मन में भी आश्चर्य उत्पन्न होता है, क्योंकि जिनमें अभी जराही फूटी है, ऐसे पुरुषों में भी विना क्रियायोग के [ सयोग रूप क्रिया के विना भी ] उपसर्ग [ विरहजन्य पीडा ] होने लगते हैं ॥ ६८० ॥

श्रुतिकुवलयमीक्षणता कुवलयता वा त्रिलोचन यायात् ।

हरिणदृशो यदि नस्यात् कनकोज्ज्वलकेसर मध्ये ॥ ६८१ ॥

यदि नील कमल में स्वर्ण के समान पोला केशर न होता तो उस मृगादों के कानों में लगे नीलकमल ने आँखों की शोभा लेली है, अथवा आँखों ने उस नील कमल की शोभा ले लिया है, इसका निश्चय करना कठिन होता, पीला केशर ही नीलकमल और आँखों में भेद कराता है ॥ ६८१ ॥

ललनास्तदतुल्यतया पुरुषा अपि तदुपभोगविरहेण ।

गच्छन्ति शोपमनिश, प्रकृतिद्वयनर्जिता स्वस्था ॥ ६८२ ॥

१. क्याकरण में क्रिया के विना प्र आदि उपसर्ग नहीं बनते, क्रिया के साथ जुबने पर ही इनकी उपसर्ग सज्ञा होती है—

‘उपसर्गा क्रियायोगे’ [ पा १।४।१९ ] पाणिनेरिति समतम् ।

निष्क्रियोऽपि वाराति सोऽसर्गाः, सदा कथम् ॥

परन्तु मंजरी के साथ सम्भोग वि या के विना ही पुद्गलों में विरहजन्य पीडा होने लगती है, यह आश्चर्य है ।

अन्य त्रियों मजरी के समान न होने की चिन्ता से; और पुनः उसके उप-  
भोग के विरह के दुःख से, रात दिन सूखते जाते हैं, केवल नपुंसक ही  
सत्य है ॥ ६८२ ॥ -

दुर्घृत्तयोर्न वृत्तं श्लाघास्पदमेति तत्पयोधरयोः ।

यौ दत्त्वाऽमलमूर्तिं मध्ये हारं, जनक्यं कुरुतः ॥ ६८३ ॥

दूरे आचर्य वाले उसके स्तनों का वर्तन प्रशंस्तनीय नहीं है, जो स्तन  
निर्मल स्वर्ण के हार को बीच से रखकर मनुष्यों को मारते हैं ॥ ६८३ ॥

भूमण्डलेऽत्र सकले नातः परमपरमद्भुतं किञ्चिन् ।

नो ज्ञाता यदपार्था कृशोदरी धार्तराष्ट्रायाताऽपि ॥ ६८४ ॥

इस सारी पृथ्वी पर इससे अधिक आश्चर्य की बात दूसरी कोई नहीं, इस-  
गामिनी-कृशोदरी का जन्म निफल नहीं हुआ, अति रूपरती-होने से सबके लिये  
आनन्ददायक है ॥ ६८४ ॥

रूप एष मध्यदेशस्तन्व्या नार्हार्यमण्डलं वोढुम् ।

शक्त इति कृतं विधिना रोमावलिभूषणं सहजम् ॥ ६८५ ॥

उस तन्वज्ञी का यह पतला मध्य भाग ही ऐसा है, जो कि कितों प्रकार के  
आभरण के भार को नहीं उठा सकता । इसीसे ब्रह्मा ने इस भाग में जन्म से  
ही रोम पक्ति बना दी [ जीवन के आगमन की सूचना देने वाली रोमपक्ति  
उत्पन्न कर दी ] ॥ ६८५ ॥

साम्प्रमोघर, ईक्षणयुगलस्याधीरता, भ्रुवो भंगः ।

तन्त्रंग्या बलमीदृग् जयति जगत्तदपि निशोपम् ॥ ६८६ ॥

उसका निचला ओंठ कौनवा है, दोनों आँवों में चञ्चलता है, भ्रुवों में  
कुटिलता है, उस तन्वज्ञी का बल इस प्रकार का है, निर भी वह सम्पूर्ण जगत्  
को बीतिती है ॥ ६८६ ॥

यद्वत्तु तितम्बः स्थूलो रसानां, हारं च कुचयुगं पीनम् ।

तद्वाहुमृणालिक्रयाः सापायं कटकयोजनमवुक्तम् ॥ ६८७ ॥

f. घृतराष्ट्र के पुत्रों के साथ पायं-वृषा के पुत्र पाण्डवों का एक साथ रहना सबसे  
अधिक आश्चर्य है—औरव-पाण्डव एक साथ रहें—यह आश्चर्य है । इस  
विशेष का परिहार यही है कि उस हंसगामिनी का जन्म व्यर्थ नहीं हुआ ।  
कृशोदरी—उदरेवातिवृन्देन चित्तिरेव मृदुत्वचा ।

यौपिद् भवति भोगाया निम्प निष्ठाधमेवनी ॥



पारिजात के गुच्छे को घेणी में धारण करने की इच्छा मूर्ख ही कर सकता है। इसी प्रकार मूढ मनुष्य ही नारायण के वक्ष से कौस्तुभ मणि को लेने की इच्छा करता है ॥ ६६३ ॥

स्वनियतपुरुषस्पर्श्याः पापा वयमन्यथा क्व हीनकुलाः ।

क्व च यूयमिन्द्रकल्पा अनल्पमनसो गुणाभरणाः ॥ ६६४ ॥

कहाँ हम हीन कुल में उत्पन्न पापी—अपने ही नियत पुरुषों से [ कुल वाले पुरुषों से] स्पर्श हैं [उनमें ही निवाह आदि हमारा हो सकता है] ? कहीं आप इन्द्र के समान उदार अन्त करण विनीत-कुलीनत्व आदि गुणों वाले ! ॥ ६६४ ॥

दुष्पकृतेः प्रकृतिरियं तस्य तु दग्धात्मजन्मनः काऽपि ।

अगणितयुक्तायुक्तो लगयति चेतो यदस्थाने ॥ ६६५ ॥

दुष्पकृति, जलसुँहे कामदेव का यह स्वभाव ही है कि वह मनको विवेक रहित बनाकर अन्धान में लगाता है—सम्बद्ध करता है ॥ ६६५ ॥

या हसति सरोजप्रती रसान्विता सहजरागरकेति ।

ध्यानधिय आत्मवृत्तिं निन्दत्येकत्र पुरुष आसक्ताम् ॥ ६६६ ॥

जो मजरी कमलिनी को मी हँसती है, वह स्नेह वाला मजरा तुममें अनु-रागवती बनी है, [ उसका यह अनुराग स्वाभाविक है ] । एक ही पुरुष में आसक्त [ परमात्मा में आसक्त ] एकप्रचित्त मनुष्यों की अन्त करण वृत्ति की वह निन्दा करता है, उनको भी नीचा दिखाती है—उनकी अपेक्षा भी आप में उसका ध्यान अधिक है ॥ ६६६ ॥

स्निग्धेति नाभिनन्दति जन्मशतेनापि सर्पिषो धाराम् ।

पंचाक्षयूतारतिं नानर्धकरागसंगता स्तीति ॥ ६६७ ॥

घृत की धारा सेन्द्रा जम से स्निग्ध होने पर भी वह उसकी निन्दा करती है—[ मजरी का स्नेह घृत की धारा से भी अधिक आप पर है ] । अनर्धकारक क्षुद्र में मनको नहीं लगाती ॥ ६६७ ॥

न स्तीति चन्दनलता भुजंगपरिवेष्टिता रसात्रेति ।

न शृणोति कीर्त्यमाना स्वप्नेऽपि भदनमूर्च्छिता मत्सीम् ॥ ६६८ ॥

रस से भरी—सौंधी से परिवेष्टित चन्दनलता की प्रशंसा नहीं करती [शुभ्रग विदग्ध कामुकों से युक्त होने पर स्वयं स्नेहवती होकर भी सुप्त अनुभव नहीं करती ] । काम से मूर्च्छित मछली के समान स्वप्न में वही बात भी नहीं सुनती ॥ ६६८ ॥

१. भागवत के अनुभारभदन-प्रधान मछली के उदर से निकले हैं (१०।१५।१३) काम से मूर्च्छित-कहे हुए गुणों की नहीं सुनता ।

स्थूल नितम्ब भले ही रशना का बोझ उठाये, पीन दोनों स्तन भी भले हार को धारण करें। परन्तु कमलनाल के समान कोमल उसके दोनों बाहुओं में अनर्थकारी बाजूबट का पहनना उचित नहीं ॥ ६८७ ॥

बहलोपायाभिज्ञा गुणविषये सततमाहितप्रीति ।

यत्नित स्थापयति वशे करभोरुर्विग्रहेण मृदुनैव ॥ ६८८ ॥

मनुष्यों को वश में करने के विलास कला कौशल आदि अनेक उपायों का जानने वाली, रूप रसादि इन्द्रिया के गुणों में अनुराग रखने वाली, यह करभोक ? कोमल युद्ध से ही बलवाना को अपने वश में कर लेती है। अपने अनुग्रह मात्र से बड़े बड़ों को अपने अधीन कर लेती है ॥ ६८८ ॥

इति तत्स्तुतिमुत्तरमुखे राजसुते मकरकेतनाकुलिते ।

समुपागता प्रगल्भा मजरिकाचोदिता दूती ॥ ६८९ ॥

कामदेव से वैचैन राजपुत्र के इस प्रकार से मजरी की स्तुति करते हुए मजरी से मेरी प्रगल्भा दूती राजपुत्र के पास आई ॥ ६८९ ॥

सा सप्रणति पुरत सुमनस्ताम्बूलपटलक निदधे ।

व्यज्ञापयच्च तदनु स्वावसरे सहचरीकार्थम् ॥ ६९० ॥

दूती ने प्रणाम करके, राजपुत्र के सामने फूलों एवं पान की पिण्डियाँ रख दीं, और समय देरकर अपनी सखी का कार्य कहना आरम्भ किया ॥ ६९० ॥

मुररिपुनाभिसरोरुहमवतसीकर्तुमीहिते मूढा ।

नक्षत्रराजमण्डलमिच्छति वियत समादालुम् ॥ ६९१ ॥

मूर्ख व्यक्ति विष्णु भगवान् की नाभि से उत्पन्न कमल को प्राप्त करना चाहते हैं। इसी प्रकार आकाश में से नक्षत्रों के बीच से चन्द्रमा को लाना चाहते हैं [ अर्थात् मूर्ख मनुष्य मजरी को प्राप्त करना चाहते हैं वह कमल एवं चन्द्रमा के समान उनके लिये दुष्प्राप है ] ॥ ६९१ ॥

निश्चेतनाऽभिकाक्षति पीयूष त्रिदिवसद्धानामशनम् ।

अभिलपति शयनमुष्ण नवचन्दनपल्लवास्तरणम् ॥ ६९२ ॥

चेतना शून्य व्यक्ति देवताओं के भाजन अमृत को प्राप्त करना चाहते हैं एवं चन्दन के गुलन पत्तों से बने गरम तिल्लीने पर सोना चाहते हैं [ जिस प्रकार से ये दोनों बातें असंगत हैं उसी प्रकार मजरी का पाना भी असंगत है ] ॥ ६९२ ॥

विदधाति पारिजातकसुमनोनिर्यूहधारणश्रद्धाम् ।

दुर्व्यवसिता जिघृक्षति नारायणवक्षसो रत्नम् ॥ ६९३ ॥

पारिजात के गुच्छे की बेणी में धारण करने की इच्छा मूर्ध ही कर सकता है । इसी प्रकार मूढ मनुष्य ही नारायण के बद्ध से कौस्तुभ मणि को लेने की इच्छा करता है ॥ ६६३ ॥

स्वनियतपुरपस्पृश्याः पापा वयमन्यथा क्व हीनकुलाः ।

क्व च यूयमिन्द्रकल्पा अनल्पमनसो गुणाभरणा ॥ ६६४ ॥

क्यों हम हीन कुल में उत्पन्न पापी-श्रपने ही नियत पुरुषों से [ कुल वाले पुरुषों से ] स्पर्श हैं [उनमें ही विवाह आदि हमारा हो सकता है] ? क्यों आप इन्द्र के समान उदार अन्तःकरण विनीत-कुर्लान्त्य आदि गुणों वाले ? ॥ ६६४ ॥

दुष्प्रकृतेः प्रकृतिरियं तस्य तु दग्धात्मजन्मनः काऽपि ।

अगणितयुक्तायुक्तो लगयति चेतो यद्स्थाने ॥ ६६५ ॥

दुष्प्रकृति, जलमुँहे कामदेव का यह स्वभाव ही है कि वह मनको विवेक रहित बनाकर अन्याय में लगाता है-सम्बद्ध करता है ॥ ६६५ ॥

या हसति मरोजवती रसान्विता सहजरागरक्षेति ।

ध्यानधिय आत्मवृत्तिं निन्दत्येकत्र पुरुष आसत्ताम् ॥ ६६६ ॥

जो मंजरी कमलिनी की भी हँसती है, वह स्नेह वाला मंजरी गुमने श्रुत रागवती बनी है, [ उसका यह अनुराग स्वाभारिक है ] । एक ही पुरुष में आसक्त [ परमात्मा में आसक्त ] एकाग्रचित्त मनुष्यों को अन्तःकरण वृत्ति को यह निन्दा करता है, उनको भी नीचा दिखाती है—उनकी अपेक्षा भी आप में उसका ध्यान अधिक है ॥ ६६६ ॥

स्निग्धेति नाभिनन्दति जन्मशतेनापि सर्पिषो धाराम् ।

पंचाक्षर्युक्तगतिं नानर्धकरागसंगतां स्तौति ॥ ६६७ ॥

घृत की धारा सेरुद्धों जन्म से स्निग्ध होने पर भी वह उसकी निन्दा करती है—[ मंजरी का स्नेह घृत की धारा से भी अधिक आप पर है ] । अनर्थकारक क्षुप में मनको नहीं लगाती ॥ ६६७ ॥

न स्तौति चन्दनलता भुजगपरिवेष्टिता रसाद्रैति ।

न शृणोति कीर्त्यमाना स्वप्नेऽपि मदनमूर्च्छिता मत्सीम् ॥ ६६८ ॥

रस से मरी—सौंसी से परिवेष्टित चन्दनलता की प्रशंसा नहीं करती [ भुजग विदग्ध कामुनों से युक्त होने पर स्वयं स्नेहवती होकर भी मुग्ध अनुभव नहीं करती ] । काम से मूर्च्छित मद्युक्ती के समान स्वप्न में कही बात भी नहीं सुनती ॥ ६६८ ॥

१. भागवत के अनुसार मदन-प्रदुग्ध मद्युक्ता के उदर से निकले हैं (१०।१५।११)

काम से मूर्च्छित-कंठे हुए गुणों को नहीं सुनता ।

विद्वेष्टि करणमध्ये रसना ताम्बूलरागयुक्तेति ।

शसति मतिं मुमुक्षोरविशिष्टा शशशृपाश्वपुम्पेषु ॥ ६६६ ॥

पाँचों शनेन्द्रियों में वह ताम्बूल की लाली से युक्त रसना-जिह्वा से द्रव्य करती है [ क्योंकि मजरी की जिह्वा में स्वाभाविक रक्तिमा है और पान से कृत्रिम लाली आती है, इसीसे उसे इससे द्रव्य है ] । मोक्ष की इच्छा वाले पुरुषों की शश, वृष, अश्व आदि पशुओं में समान बुद्धि की प्रशंसा करती है ॥ ६६६ ॥

नो बहु मनुते रम्भा नलकूबरमभिसृतेति कामार्ता ।

गर्हति च देवगणिकामनुरक्तामुर्वशीं पुरुरवसि ॥ १००० ॥

काम से पीड़ित होकर स्वयं नलकूबर के पास जाने वाली रम्भा को भी वह बहुत मान नहीं देती । पुरुरवा में आसक्त देवगणिका उर्वशा को भी वह कुछ नहीं गिनती [ दिव्य योनि की होकर उसने आदिव्य मर्त्यलाक के आठमी में मन लगाया-इससे उसका भी आदर नहीं करती ] ॥ १००० ॥

हरति मनो नो हियते, रजयति न रज्यते कदाचिदपि ।

गृह्णाति चित्रचरितैरुपकृतिभिर्गृह्यते न वह्नीभि ॥ १००१ ॥

मजरी दूसरे मनुष्यों का मन हरण करती है, परन्तु अपना मन किसी को नहीं देती, दूसरों का मनोरञ्जन करती है, परन्तु कभी भी किसी में अनुरक्त नहीं होती । विचित्र आचरणों स्वाभाविक विलक्षण विलासों से दूसरों के मन को वश में करता है, और स्वयं दूसरों के किये बहुत से उपकारों से भी वश में नहीं होती ॥ १००१ ॥

१ खेश, वृष और अश्व-ये तीन उपलक्षण हैं-मजरी सब प्राणियों में समान बुद्धि रखती है—

।वद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिान ।

शुनि चैव श्वपाके च पण्डिता समदर्शिन ॥ गोवा २।१८

कामशास्त्र में शश, वृष और अश्व जाति के पुरुष प्रसिद्ध हैं—वह मजरी तीनों में समान अनुराग रखती है ।

शश—स्त्रीजितो गायभ्रशैव नारीसचपर सुखी ।

पङ्गुलशरीरश्च श्रीर्माश्च शशको मत ॥

वृष—उपकारपरो नित्य स्त्रीवश इलेष्मच्छस्तथा ।

दशागुलशरीरस्तु मेदस्वी वृषभो मत ॥

अश्व—लुब्धश्च कृपणश्चैव मिथ्यावादी च निभय ।

द्वादशागुलखिगस्तु कुशलाऽपि हयो मत ॥

अनगरग [२।१६ १८] पधसायक [२।८।१८] में ।वशेष हृष से देश जा सकते हैं ।

प्रेममयीवाभाति प्रेम तु नान्मैव केवलं वेत्ति ।

कण्टकिता भवति रते रतभोगसुखं गृणोति लोकात्तु ॥ १००२ ॥

प्रेम की मूर्ति बनी प्रतीत होती है, परन्तु वास्तव में वह प्रेम की केवल नाम से ही जानती है। प्रेम कथा में या रमण क्रीडा की बातों में उसे रोमांच हो जाता है, परन्तु ब्रह्मानन्द के समान सम्भोग के सुख को अन्य पुरुषों से ही सुनती है, [ उसने कभी अनुभव नहीं किया ] ॥ १००२ ॥

कुरुते विविक्तवाहृन् शिल्पविशेषेण न तु रसावेशात् ।

अनभिज्ञा मदनरुजामाकल्पकचेदनां समावहति ॥ १००३ ॥

अपना चातुर्य दिग्गाने के लिये ही कला विशेष से वह निर्दोष प्रिय वाक्यों की-समस्याओं की रचना करती है; किसी राग के कारण प्रिय बातें नहीं करती [सुशामद नहीं करती]। काम की पीडाओं में अनभिज्ञ है, उनको नहीं जानती, परन्तु कामावस्था सम्बन्धी अनुभवों का उनको ज्ञान है ॥ १००३ ॥

वालैचार्यचरहिता स्फुरतीश्वरमेत्य चन्द्रलेखेव ।

हृतधनपतिमाहात्म्या प्रवृत्तिरिव रत्नसां पत्युः ॥ १००४ ॥

मंजरी बाल चन्द्रलेखा के [ द्वितीया के चन्द्रमा के ] समान पद है— उसमें सीवापन नहीं है [ कण्ट करने में कुशल है ]। चन्द्रमा की भाँति ईश्वर-महादेव को प्राप्त होकर अधिक प्रकाशित होती है। मंजरी धनी व्यक्ति को प्राप्त करके अधिक विलास वाली बन जाती है। जिस प्रकार से रावण ने कुबेर का सब धन ले लिया था; उसी प्रकार धनी व्यक्तियों का धन हरण करने में उसकी प्रवृत्ति है ॥ १००४ ॥

नरनाथ, किं ब्रवीमि, त्रिपुरान्तकनयनदाहदग्धोऽपि ।

दुःसाध्यसाधनमहमुत्सृजति न पापकुसुमास्त्रः ॥ १००५ ॥

हे नरनाथ ! अधिक क्या कहूँ, महादेव का अज्ञान का अग्नि से जला हुआ पापी कामदेव भी कष्टसाध्य कार्य के सम्पादन में अरने हठ को अर भी नहीं छोड़ता [मंजरी के द्वारा असाध्य कार्य को भी सिद्ध कर लेता है ?] ॥ १००५ ॥

त्वद्दर्शनावकाशं संप्राप्य यतो दुरात्मना तेन ।

चिरसंभृतकोपेन प्रारब्धा साऽपि हन्तुमिषुधारेः ॥ १००६ ॥

(कुलङ्कम्)

इसी कारण से उस दुरात्मा कामदेव ने तुम्हारे दर्शन का एक लाभ देकर, चिर काल संचित क्रोध पूर्वक वाक्यों की वृष्टि से उस पर प्रहार करना प्रारम्भ कर दिया ॥ १००६ ॥

अवहेलयेव भवता संस्पृष्टा येन वेत्रदण्डेन ।

जातः स एव तस्या अनन्यभवमार्गणः प्रथमः ॥ १००७ ॥

जिस वेत्रदण्ड से आपने अग्रहेलना रूप में [ वास्तव में स्नेह रूप से ] मजरी का स्पर्श किया था, वही वेत्रदण्ड उसके लिए कामदेव का पहला बाण बन गया ॥ १००७ ॥

विज्ञानार्जितदर्पो निभृतं हसित. समानशिल्पाभिः ।

त्वयि सक्तदशः सरया विसंफुले नाट्यनिर्माणे ॥ १००८ ॥

मेरी सखी को अग्रवस्थित नाट्य रचना में तुम में लगी श्रौतियों को देखकर, नाट्य कर्म में सम्पादित गर्ववाली समान कला में शिक्षित सतियों चुपचाप हँसने लगीं ॥ १००८ ॥

अवधीर्याऽऽचार्यरूपं भरतोदितदोषकरणसभुताम् ।

विस्तारितः प्रयोगस्त्वदवस्थितिवाञ्छया तन्व्या ॥ १००९ ॥

नाट्यशास्त्र के आद्य प्रवर्तक आचार्य भरत से कहे नाट्य दोष से उत्पन्न आचार्य के क्रोध को समझ कर, उस कोमलांगी ने आप देर तक बैठे रहें—इस चाह से नाटक का खेल लम्बा कर दिया ( जिससे अधिक समय आपको देख सके ) ॥ १००९ ॥

भग्नेऽपि प्रेक्षणके तदनन्तरभूमिकाश्रयावस्थाः ।

गृह एव निरवसानं वितनोति न नाट्यधर्मेण ॥ १०१० ॥

नाटक के समाप्त हो जाने पर भी उसके आगे की भूमिका को (प्रथम अंक के समाप्त होने पर दूसरे अंक की भूमिका को लेकर), आपने घर में ही सदा करती रहती है, नाटक के रूप में नहीं करती ॥ १०१० ॥

ध्यायत एकं पुरुषं परमात्मविदः शशंस या न पुरा ।

ताननुकुरुते सैव ध्यायन्ती त्वा महापुरुषम् ॥ १०११ ॥

जो मजरी पहले एक पुरुष परमात्मा को जानने वालों की प्रशंसा नहीं करती थी, वही अब आप महापुरुष का ध्यान करती हुई उन्हीं ज्ञानियों का अनुकरण करती है ॥ १०११ ॥

गतमेवमेवमासितमालोकितमेवमेवमालापितम् ।

इति विस्मृतान्यकार्या स्मरति कृशांगी त्वदीयलोलानाम् ॥ १०१२ ॥

राजपुत्र ने इस प्रकार से गमन किया था, राजपुत्र इस प्रकार से बैठा था, इस प्रकार से देखा था, इस प्रकार बातचीत की थी, इस प्रकार से वह कृशांगी अन्य सब कार्यों को भुलाकर आपकी चेष्टाओं का ही स्मरण करती है ॥ १०१२ ॥

नलदूयरो थराहो, रतिरमणो रमण एव किं तेन ।

अनिन्द्योऽपि न बुद्धो त्रिद्वयविहितासु सुरतगोश्रीषु ॥ १०१३ ॥

कुवेर का पुत्र नलदूर वान है ( क्योंकि नारद के शाप से अतुन वृद्ध बना ); रतिरमण-कामदेव नाम मान रो ही रमण है ( अनग होने ने रमण नहीं कर सकता ), कृष्य का पौत्र और प्रयुम्नुन अनिन्द्य चण्ड पुत्रों की सम्भोग शार्त्त में परिश्रुत नहीं ॥ १०१३ ॥

न जयन्तोऽनन्तगुणो, न कुमारो मारकर्मणो वाद्य ।

येन समतां नयामन्तमिति सन्धी बहति मानसं क्लेशाम् ॥ १०१४ ॥

वदन्त-इन्द्रपुत्र में भी बहुत गुण नहीं है ( उन्नत और वा लन पारस्य करके सीता के कुनों पर च्यु प्रहार मित था ), कुमार-कार्तिकेय भी काम के मोहन आदि कर्मों को श्रमी नहीं बनता ( श्रमी कुमार ही है ), आपसी क्लेश राजपुत्र से तुलना की जाये, इसी मानसिक क्लेश वे मेरी चर्चा दुःखी है ॥ १०१४ ॥

उत्तमगानो मजरी अन्य सब कायों को छोड़कर अविदित चित्त से आपसे बारहनामा वाले इस महा स्तोत्र को इच्छित फल प्राप्ति के लिये लगातार जपती है ॥ १०१७ ॥

तामेव गच्छ यस्यामासज्य विलम्बितोऽसि गतलज्ज ।

वेलामियतीमलमलमेतैरधुना शठानुनयै ॥ १०१८ ॥

हे निर्लज्ज ! उसी के पास जा, जिसमें आसक्त होकर मेरे पास आने में इतनी देर की। अब इन धूतता पूर्ण अनुनयों को—खुशामदों को बन्द करो ॥ १०१८ ॥

वदयामि सापराध क्रोधस्फुरदधग्मंचितभ्रूकम् ।

इति विदधाति सुमध्या हृदयेन मनोरथवृत्तिम् ॥ १०१९ ॥

(सन्दानितकम्)

अब स्त्री के साथ प्रेम करने में काव से पड पडाते आठों से एव भ्रुवों टेढा करके इस प्रकार से कहूंगी—ऐसे सरुलों का अभ्यास वह सुभोषी करती है ॥ १०१९ ॥

उत्सहते न द्रष्टु प्रतिबिम्बितमानन, कुत शशिनम् ।

का सकथा मृणाले क्षिपति भुजौ सर्वतो व्यथिता ॥ १०२० ॥

वह अपने मुख का परछाई भी शरीर दर्पण में देखने से डरती है, (चन्द्रमा की भ्राति कहा सन्ताप उत्पन्न न हो जाये, इसलिये दर्पण में मुख भी नहीं देखती), फिर चन्द्रमा का देखने की बात दूर रही। दुःखी होकर वह अपनी बाहुओं को इधर उधर बराबर फँकती है, मृणाल—कमल नालों पर भुजायें रखने का बात ही कहें ॥ १०२० ॥

दूरे कदलीदण्डा ऊर्वोरपि न सहते समाश्लेषम् ।

करसम्पर्काद्विमुखी विश्राम्यति पल्लवेष्विति विरुद्धम् ॥ १०२१ ॥

वह तो अपनी दोना जराओं को भी मिलाकर नहीं रख सकती—फिर केले के स्तम्भ की बात ही क्या (उसकी अपनी जरायें ही केने के समान हैं—अब उनकी ही मिलाकर नहीं रख सकती—फिर केले के स्तम्भ की बात क्या)। वह तो अपने दोनों हाथों को परस्पर मिला ही नहीं सकती, इसलिए कोमल पत्तों पर उसका

१ किं किं वक्तुमुपेत्य सुवसि ब्रह्मान्निलज्जं छज्जान ते,  
वस्त्रान्त शठ मुञ्च मुञ्च, शपथं किं धूतं वाग्वञ्चनै ।  
स्त्रिणाइ त्व रात्रिनागाव तात्तामेव यादि प्रियां  
निर्मावधोऽस्तिपुण्यदामनिकरे का पदपदानां रति ॥



लेटना किसी प्रकार सम्भव नहीं । ( श्रमना स्पर्श भी यह सहन नहीं कर सकती, फिर बाहर की वस्तुओं का स्पर्श कैसे सहेंगी ) ॥ १०२१ ॥

अपि मंजरि, सैव त्वं, विदग्धजनमण्डिता पुरी सैव ।

कुन्मुमायुधः स एव व्यसनं कुत एतदापातम् ॥ १०२२ ॥

हे मंजरी ! तू तो वहाँ पहले वाली है, चतुर जनों से शोभित यह नगरी भी यही है, कामदेव भी वही है, फिर यह आन्त कहां से आ पड़ी ॥ १०२२ ॥

यस्याः कामः कृपणो रागकृष्टिस्तृणोलपप्रख्या ।

साऽपि गता भूमिमिमां, जीवन्त्या नेद्यते किमिह ॥ १०२३ ॥

त्रिसहा काम तीन-अकिञ्चिन्कर निष्फल है, स्नेह का आकर्षण-दूरों आदि लता की भाँति तुच्छ है; उसकी भी ऐसी दशा हो गई। जीवित व्यक्ति को इस लोक में क्या नहीं देखना पड़ता ॥ १०२३ ॥

अभियोगशिक्षितानामशिक्षितानां च मदनचेष्टानाम् ।

सुतनु विशेषप्रहणे सामर्थ्यं तद्विदामेव ॥ १०२४ ॥

हे सुतनु ! अत्यन्त परिश्रम के साथ सीखे एव अशिक्षित पुष्टों में काम चेष्टाओं के भेद को सम्भन्ने का सामर्थ्य-अनुभव शास्त्र से सीखे व्यक्तियों में ही होता है ( इसलिये कष्ट कचनों से भाव को नहीं छिपाया जा सकता, इसलिये हमसे तुम्हाय भाव छिप नहीं सकता ) ॥ १०२४ ॥

व्यथयन्नपि सद्द्रायः परिजनचिन्ताकरोऽपि रमणीयः ।

आघते त्वयि लक्ष्मीमभिनवरागाश्रयोऽधिकाक्षेत्रा ॥ १०२५ ॥

प्रथम उत्पन्न हुई मन की व्याकुलता, मन को पीड़ित करते हुए भी शरीर की शोभा-कान्ति की हानि नहीं पहुँचाती, सलीजनों के क्षिणे चिन्ता का निषय होने पर भी मनोहर होती है। आप में मन की बेचैनी कानानस्याजन्य कर्मनीय शोभा को और भी अधिक बढ़ाती है ॥ १०२५ ॥

एकः स एव जातो भुवनेऽस्मिन्नसमसायस्त्वपर्या ।

तेन शशियिम्बफले मुजन्मना लेखितं निजं नाम ॥ १०२६ ॥

इस ससार में कामदेव का प्रतिद्वन्द्वी एक ही उत्पन्न हुआ है, उस मुक्त्माने चन्द्र विम्ब पर अना नाम लिख दिया है। उसकी कर्त्ति बहुत दूर तक फैली है ॥ १०२६ ॥

पादत्नेन सलीलं विन्यमः सुमगनानिनां मूर्ध्नि ।

सौभाग्यवराकुन्मुमं धनपतिभूतोः कर्त्तितं तेन ॥ १०२७ ॥

उसने सौभाग्य मानने वालों के शिर पर अनायास ही पैर रख दिया (उनको नीचा दिखा दिया), उसने कुवेर के पुत्र-नलकूबर के सौभाग्य के यश, कुमुम को व्यर्थ बना दिया ( मिट्टी में उसका यश मिला दिया ) ॥ १०२७ ॥

नरवंचनपटुबुद्धिः संपादितकपटचाटुसंघटना ।  
त्वमपि विलासिनि गमिता गतिमियती येन सुभगेन ॥ १०२८ ॥  
( अन्तर्विशीपकम् )

हे विलासिनि ! जिस सौभाग्यवान् ने मनुष्यों को ठगने में चतुर बुद्धि; चाटु वचनों से मनुष्यों को बश में करने वाली तुम्हको भी इस ध्वस्त्या में पहुँचा दिया ॥ १०२८ ॥

तद्वद् तस्य स्थानं, यतामहे कार्यसाधनायालम् ।  
कुर्वन्त्येव हि यत्नं भिषजनाः कृच्छ्रसाध्यरोगेऽपि ॥ १०२९ ॥

इसलिये उसका नाम पता बता; जिससे इच्छित समागम के लिये प्रयत्न किया जाये । क्योंकि वैद्य-कष्टसाध्य रोग में भी यत्न करते ही हैं ( 'यापत्कण्ठ-गतप्राणास्तावत्कार्या प्रतिक्रिया' ) ॥ १०२९ ॥

इति गदिते सख्या सा तदभिमुखं चक्षुषी समुन्मील्य ।  
वितरति कृच्छ्रेण चिराद् भावितमक्लिष्टहंकारम् ॥ १०३० ॥

इस प्रकार से सखी के कहने पर उसके सामने कुछ देरी से आँखों को खोल कर-बड़ी कठिनाई से, देर में वह स्पष्ट रूप हँकार करती है-( मुख से कुछ नहीं बोलती ) ॥ १०३० ॥

का पुरुषार्थसमीहा द्योतयतः शर्वरीं शशांकस्य ।  
तर्पयतां भुवमखिलां सलिलमुचां कोऽभिकांचितो लाभः ॥ १०३१ ॥

'रानि को प्रकाशित करते हुए चन्द्रमा को कौन से पुरुषार्थ की-धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष-किसकी चाह है ? सम्पूर्ण पृथ्वी को पानी से सिंचने हुए बादलों को किस लाभ की आकांक्षा रहती है ? ( किसी की नहीं )' ॥ १०३१ ॥

मण्डयितुं वियदुदयति पुरुहूतधनुर्विनैव फलवाञ्छाम् ।  
अनपेक्षितात्मकार्यः परहितकरणग्रहः सतां सहजः ॥ १०३२ ॥

1. किं चन्द्रमाः प्रयुपकारद्विषसया करोति गोभिः कुमुदावबोधनम् ।  
स्वभाव एवोन्नतचेतसा सतां परोपकारव्यसनं हि 'जीवितम् ॥  
'कृष्णादिन्दुरसौ' शिकोति 'जगतीं प्रीयुषणैः' इति;  
कस्माद् वा जलधारयैष धरणीं धाराधरः सिञ्चति ।  
भ्रामं भ्राममयं च नन्दयति वा कस्मात् 'त्रिचोर्द्धा' इति;  
'साधुनां हि परोपकारकरणे' नोपाध्यपेक्षं मनः ॥

इन्द्रधनुष विना किसी पल की आकाशा के ही आकाश को शोभित करने के लिये उदय होता है। सज्जन पुरुष स्वभाव से ही विना किसी स्वार्थ के परानुग्रह तत्पर होते हैं ॥ १०३२ ॥

प्रायेण यन्निदान तन्सेवनमुपशमाय रोगाणाम् ।

स्मरमान्य तु यदुत्थ तदेव स्वलु भेषज यतस्तस्य ॥ १०३३ ॥

प्राय करके रोग का बी कारण होना है, वही उस रोग की शान्ति का उपाय होता है। इसलिये काम बन्य व्याधि बनता जिघ पुरुष विशेष के कारण से तत्पर हुई है, वही पुरुष इस रोग की औषध है ॥ १०३३ ॥

तेन सहायति सुतनुस्त्वत्पादसरोजरेणुसगतये ।

आशीर्विषयोपेते समोगसुरोदये नु नाकाक्षा ॥ १०३४ ॥

( सन्दानितकम् )

इसीसे वह सुगान्नी आपकी चरण धूलि प्राप्त करना चाहती है, आशीर्वाद भूत समोगजन्य सुर का प्राप्ति में उसकी विलकुल चाह नहीं है ॥ १०३४ ॥

प्रमदमुपैति मयूरी परम शब्देन चारिवाहस्य ।

अनिमिषबिलोकितेन प्राप्नोति मयी कृतार्थतामेव ॥ १०३५ ॥

बाल की गचना की सुनकर मयूरी अति प्रसन्न होती है, अग्ने प्रिय को निर्निषेध दृष्टि से देखती हुई मयूरी अग्ने को कृतक मानती है ॥ १०३५ ॥

न घृथान्नुतिमुस्वरतया न च युमल्लोभनाभियोगेन ।

विदधामि तद्गुणाख्या स्वरूपमात्रप्रसंगेन ॥ १०३६ ॥

1. ह्याद शशांकस्य रथ प्रकाशस्तापः कृशानो पवनस्य वेगः ।

परोपकार करुणारतार्ता महाजनानां सदस्य स्वभावः ॥ चेनेन्द्र

१. अग से जलने पर दण्ड उपाय किया जाता है, विरस्यविषभौषधम्—इसीसे माघबनिदान में कहा है—हनुष्याविधिपनेस्त विरस्यस्यार्थंभारियाम् ।

भौषधानविहारामानुषयोगः सुखावदः ॥

हेतुविपरीतार्थंभाती—विषमयानपच्यमान शोथ में विषकारक दण्ड उपाय, वमन रोग में—वमनकारक मैनकज आदि देना, अग्नि से जलने पर अगह का लेप आदि ।

इसी प्रकार नैषध में भी समयन्ती की कामजन्य व्याधि के लिये नख को उपाय कहा है—

स्पाहृत्पां नखद विना न दन्ते तावत्य कोशोरवाः ।

( नखद—अम पृथ नख की प्राप्ति )

मैं उसके गुणों को भिन्ना प्रशसा के रूप में वाचलता के कारण नहीं कह रही, और दूती होने से आपका उसके प्रति आहृष्ट करने के लिये भी नहीं कह रही हूँ। केवल आपकी जानकारी के लिये उसके गुणों का वर्णन करती हूँ ॥ १०३६ ॥

सद्भावबद्धमूले स्मितदृष्टिभ्रुविलासपल्लविते ।

सेवन्ते हृद्यरसा रागतरोमंजरी धन्वा ॥ १०३७ ॥

सद्भाव-शोभन चित्तविकार-रतिभाव के दृढ होने पर, स्नेहभरी दृष्टि से देखने पर, भ्रुवा के विलास से पल्लवित-बूढ़े, राग रूपी वृद्ध के हृदयगम रस शृंगारादि रस का तथा मंजरी का उपयोग भाग्यशाली ही करते हैं ॥ १०३७ ॥

तिष्ठतु तदगसगो विलोकिता येन ऋटिति वरगात्री ।

तस्यान्यो युवतिजन प्रतिभाति मनुष्यरूपेण ॥ १०३८ ॥

उसके अर्गों के स्पर्श की बात छोड़ो—जिसने भी उस भुगात्री का जल्दी में उडती नजर से एक बार भी देख लिया, वह दूसरी युवतियों को मनुष्य समझने लगता है उनको स्त्री नहा समझता ॥ १०३८ ॥

सकृदपि यैरनुभूतस्तत्तनुपरिरम्भसुखरसास्वाद ।

विद्धि नराधिप तेषा दूरीभूत प्रजाकार्यम् ॥ १०३९ ॥

जिसने उसके शरीर व आलिंगन का सुख एक बार भी अनुभव कर लिया है, हे राजन् ! वह सब लोक व्यवहार भूल गया ॥ १०३९ ॥

आस्था का रलु तस्या विषयग्रहदुर्वलेषु पुरुषेषु ।

यस्या विलासजालकपतित शकुनायते कपिल ॥ १०४० ॥

जिस मंजरी के विलास जाल में गिरा कपिल मुनि भी पक्षी की भाँति पँस जाता है, फिर रूप-रस आदि विषयों के ग्रहण में निर्बल पुरुषों की बात ही क्या ? वे तो अमर्य ही उसके विलासा में पँस जायेंगे ॥ १०४० ॥

दग्धोऽपि पुनर्दग्धो नूनमनगो हरेण, ता तन्धीम् ।

दृष्ट्वाऽपि येन तिष्ठसि निराजुल स्वस्थयूत्तेन ॥ १०४१ ॥

१ इयमकुरिता प्रेम्णा, मानान् पक्षवित्ता भवत् ।

सकोरका मणयत स्नेहान् बुसुमिता भवेन् ॥

रागात्प्रभवती मयमनुरागेण भुज्यते ॥

२ आत्मानमन्त हरणे मुनीन्द्रास्तावत्प्रशस्ता परिशीलयन्ति ।

यावन्मुलेन्दु सविद्यासरगे विद्यासिनीनां न विश्लोचयन्ति ॥

यावद्यावदशक्तिं प्रथयति ललना हि मोहनाक्रान्ता ।

तावन्तावत्सुंसासुत्साहः पल्लवान् समुत्सृजति ॥ १०५३ ॥

सुरत सुरत से अभिभूत कामिनी जैसे जैसे चुम्बन आदि में अपनी असमर्थता दिखाती है, वैसे वैसे पुरुषों का उत्साह बाह्य और आन्तरिक सम्भोग में नाना प्रकार से बढ़ता है ॥ १०५३ ॥

इति शून्योऽकृतवेरमनि हरति शनैः सहजमशुकं तस्मिन् ।

दर्शितसाध्वसलज्जा जगाद् मे किं करोषीति ॥ १०५४ ॥

इस प्रकार कहकर दूती के चले जाने पर एकान्त में समरभट द्वारा उसका स्वाभाविक अशुक धीरे धीरे दूर करना प्रारम्भ करने पर वह भय और लज्जा के साथ बोली—मेरे साथ यह क्या कर रहे हो ॥ १०५४ ॥

असि मुग्धे सत् प्रियते पुष्पार्थचतुष्पथस्य परं सारम् ।

इति निगदितसस्मेरं स्मरविधुरित आततान रतिरुलहम् ॥ १०५५ ॥

हे मुग्धे ! मैं वहीं कर रहा हूँ जो वर्म अर्थ काम और मोक्ष पुष्पार्थ चतुष्पथ का सार है । इस प्रकार अपने वचन से ही मुस्कराता हुआ समरभट काम से व्याकुल होकर रति युद्ध करने लगा ॥ १०५५ ॥

१. रत्नरत्ना कल्पयन्मुवच्छने किमपि कुविमुखो सुमुखो नवा ।

इदनेतिमसेति वचोमिपान्मदनदोपनमन्नामिवास्मरत् ॥ इन्मीर काव्य ७।१११.

(ख) बाला तन्दी मृदुरियमिति त्यज्यतामत्र शका,  
कविद् इहा अनरभरतो गंगरी भगवताना ।

तस्मादेपा रहसि भवता निर्दय पीडनीया

मन्दाक्रान्ता विसृजति रसनेषुयष्टि समप्रम् ॥ विकटवितम्बा.

(ग) कविता वनिता गीति, प्रायो नादौ रसप्रदा ।

उद्गिरन्ति रसोद्रेक गायताना पुनः पुनः ॥

२. सहज अशुक का अर्थ—श्री ललमुद्धराम मनमुस्ताम त्रिपाठी जी ने खजना किया

है—परन्तु मेरी दृष्टि में सहज अशुक—से गौनिच्छद् (Hyman) धोत्रि के ऊपर का स्वाभाविक परदा लेना ठीक है—वही वास्तव में स्वाभाविक-जन्मजात अशुक है—उसे ढसने धीरे धीरे जब हटाना प्रारम्भ किया—तब ढसने भय और खजना से कहा गया कर रहे हो ।

३. मुग्धा—मुग्धा नववधुस्तत्र नवधौवनभूरिता ।

मन्दाक्रान्तरहस्यापि खजनाभापरतिर्यया ॥

(ख) नि सारे अगति प्रपचसद्ये सारं कुट्टीदृशा-

मेक भोगमुख परमाभपरमातन्वेन पुत्रय विदुः ॥ अनगरत्न.

(ग) अनिदितमुखदुरं निर्गुण वस्तु किंविज्जहमतिरिह कश्चिन्मोक्षहायाकचक्षे ।

ममस्तु मत्तमन्मस्मेरताहययुष्मन्मइच्छमदिराक्षीशोविमोक्षां हि मोक्षः ॥

(घ) कश्चहकपं सुरतमाचक्षते विनाशमश्वाद् यामसौख्यत्वाच्च कामस्य ।

विहितनमस्कृतिरासनमधितष्टौ' नायकेन निर्दिष्टम् ।

पृष्ठे च देहकुराले विनयान्वितमभ्यधाद् दूती ॥ १०४७ ॥  
दूती नमस्कार करके, समरभट द्वारा श्रृंगुली से बताये आसन पर बैठ गई ।  
शरीर का कुराल मगल पूछने पर दूती ने विनय पूर्वक कहा— ॥ १०४७ ॥

श्रीमन्नद्य श्रेय सम्पन्ना गुरुजनाशिपोऽशोषाः ।

अथ मदन प्रसन्नो, भाग्यचयैरद्य परिणतं फलतः ॥ १०४८ ॥

श्रीमन् ! आज गुरुजना के सब आशीर्वाद कल्याण से युक्त हो गये—सफल हो  
गये । आज कामदेव प्रसन्न है, आज शुभ कर्मों का फल प्राप्त हो गया ॥ १०४८ ॥

अद्य जननी प्रसूता, सौभाग्यगुणोदयोऽद्य निष्पीलितः ।

त्वयि वितरति सन्नेहं निरामयप्रश्नभारती तस्या ॥ १०४९ ॥

( सन्दानितकम् )

आज माता का जन्म देता उपलब्ध हुआ, आज नाना प्रकार से लोभान्त  
का उदय हुआ, स्नेह के साथ आज आपने जो इसका आरोग्य पूछा ॥ १०४९ ॥

उत्कलिकाकुलमनसामुद्रित्तरिरसयाऽभिभूतानाम् ।

श्रीदासीन्य भजता समागता भवति नालिका यूनाप् ॥ १०५० ॥

उत्कण्ठा से वैचैन एव चुम्बन आलिंगन आदि से रमण की इच्छा वाले  
युवा स्त्री पुरुषों को, तीसरे व्यक्ति की उपस्थिति के कारण जो उदासीन बनना  
पडता है, वह उसकी मूर्खता है—तीसरे पुरुष का उस समय उपस्थित होना  
मूर्खता है ॥ १०५० ॥

धृतसुमन शग्धनुपा सहायवान्तिष्ठ दयितया सार्धम् ।

यामो वयं, न राजति विजनस्थितमिथुनसन्निधावपर ॥ १०५१ ॥

पुष्पों का धनुष बाण लिये कामदेव तुम्हारा सहायक है, प्रेयसी के साथ  
बैठो, मैं भी जाती हूँ, एकान्त में बैठे जोड़े के पास दूसरा आदमी अच्छा नहीं  
लगता ॥ १०५१ ॥

एषा नृत्यश्रान्ता मदनेनाथासिताऽतिसुकुमारा ।

त्वमपि रतिसमरशूर, स्वर्गभुव सन्तु कुशलाय ॥ १०५२ ॥

यह मजरी नृत्य करने से थक गई है, काम से विडित है, अति सुकुमार है,  
तुम भी रतियुद्ध में शूर हो, आपके लिये देवता कुशल करें ॥ १०५२ ॥

- १ मद्ये अर्धांशोच भेदस्ये भोजने मियासमने ।  
उच्यते स नाहारिक. अत्रुक्त अपि य दूरे ॥
- २ भोषी चाहरथ, पयोबरहय भूकामुर्क इक्षर  
पीनोरु द्वयमेक रागकवच ताम्रावरं प्रभवजम् ।  
काचीनूपुरशब्दुन्दुभिरव हिकाप्रणादाकुल  
कामिन्या नखदन्तशस्त्रमतुल प्राप्नोत युद्ध भवान् ॥

यावद्यावदशक्तिं प्रथयति ललना हि मोहनाक्रान्ता ।

सावन्तावत्पुसासुत्साह पल्लवान् समुत्सृजति ॥ १०५३ ॥

सुरत सुख से अभिभूत कामिनी जैसे जैसे चुम्बन आदि में अपनी असमर्पण दिखाती है, वैसे वैसे पुरुषों का उत्साह बाध और आभ्यन्तर सम्भोग न नाना प्रकार से उड़ता है ॥ १०५३ ॥

इति शून्योक्तवेदशनि हरति शनै सहजमशुक तस्मिन् ।

दर्शितसाध्वसलजा जगाद् मे कि करोपीति ॥ १०५४ ॥

इस प्रकार कहकर दूती के चले जाने पर एकान्त में समभ्यन्त द्वारा उसका स्वाभाविक अशुक धीरे धीरे दूर करना प्रारम्भ करने पर वह भय और लज्जा के साथ बोली—मेरे साथ यह क्या कर रहे हो? ॥ १०५४ ॥

अयि मुग्धे तत् क्रियते पुरुषार्थचतुष्टयस्य यत् सारम् ।

इति निगदितसस्मेर स्मरनिधुरित आततान रतिकलहम् ॥ १०५५ ॥

हे मुग्धे । मैं वही कर रहा हूँ जो वर्म अर्थ काम और मोक्ष पुरुषार्थ चतुष्टय का सार है । इस प्रकार अपने वचन से ही मुस्कराता हुआ समरभट काम से व्याकुल होकर रति युद्ध करने लगा ॥ १०५५ ॥

१ रत्नकर्णा कलपयसुवसन्धे किमाप कुविमुखो सुमुखी नवा ।  
द्वन्द्वनेतिमनेति वचामिषामद्वन्द्वोपनमन्प्रमिवास्मरत् ॥ इन्मीर काव्य ७।१११

(ख) बाला तन्वो मृदुरियमिति त्यज्यतामत्र शका,  
काचिद् दृष्टा सपरभरतो मंगरी भज्यमाना ।  
तस्माद्देवा रदसि भवता निदय पीडनाया  
मदाशान्ता विमृजति रस नेत्रुयष्टि सममन् ॥ विकटनितम्बा

(ग) कविता यनिवा गीति प्रायो नादी रसप्रदा ।  
उद्गिरन्ति रसोद्भक्त गाद्यमाना पुन पुन ॥

२ सहज अशुक का अर्थ—श्री तनसुखराम मनसुखराम त्रिपाठी जी ने खजना किया है—परन्तु मेरी दृष्टि में सहज अशुक—से योनिबद्ध (Hyman) योनि के ऊपर का स्वाभाविक परदा लेना ठीक है बड़ी वास्तव में स्वाभाविक-जन्मजात धर है—उसे ढलने धीरे धीरे जब हटाना प्रारम्भ किया तब उसने भय और लज्जा से कहा क्या कर रहे हो ।

३ मुग्धा—मुग्धा नववयस्तत्र नवपौवनभूयिता ।  
नवानङ्गहस्त्यार्जवे खजनाभापरतिर्यया ॥

(ख) नि सारे अगति प्रपचसध्वे सार कुरङ्गीदशा  
मेक भीगमुख परमात्मपरमात्-वेन हृत्प विदु ॥ अनगरत्न

(ग) अविदिसमुखदु ख निर्गुणवस्तु किञ्चिजटमत्रिरेह कञ्चि-मोक्षहायावच्छे ।  
ममत्तु मतमनङ्गस्मेरतारुपयधूर्ध्वमदकलमदिरानीनोविमोक्षा हि मोक्ष ॥

(घ) कलहहृत्प सुरतमाचक्षते विवादाभङ्गवाद् वामशास्त्राच्च कामस्य ।

नानासुरतविशेषैराराध्य चकार भुक्तसर्वस्वम् ।

गणिकाऽसौ राजसुत त्वगस्थिरोपं मुमोच नातिचिरात् ॥१०५६॥

उपसहार—नाना प्रकार के सम्भोग विशेषों से इस गणिका ने राजपुत्र को प्रसन्न करके जल्दी से उसका सम्पूर्ण धन ले लिया—केवल त्वचा और अस्थि ही उसके शरीर पर छोड़ी ॥ १०५६ ॥

तद्यन्मयोपदिष्ट कामिजनार्थोत्तिकारणं तेन ।

महतीं समृद्धिमेष्यसि कामुकलोकाहृतेन विज्ञेन ॥ १०५७ ॥

कामिजनों से धन प्राप्त करने के जो उपाय मैंने कहे हैं उनके द्वारा कामुक जनों से खींचे हुए धन से बहुत ऐश्वर्य को प्राप्त करोगी—बहुत धनी पनेगी ॥ १०५७ ॥

इत्युपदेशश्रवणप्रबोधतुष्टा जगाम धाम स्वम् ।

मालत्यपगतमोहा विकरालापादवन्दना वृत्त्वा ॥ १०५८ ॥

विकराला से लिये इस उपदेश को सुनकर, शान होने से प्रसन्न मालती मोहके दूर होने पर विकराला के पैरों में नमस्कार करके अपने घर को चली गई ॥ १०५८ ॥

काव्यमिदं य शृणुते सम्यक् काव्यार्थपालनेनासौ ।

नो वक्ष्यते कदाचिद्विद्वेश्याधूर्तकुट्टनीभिरिति ॥ १०५९ ॥

इस काव्य को जो भली प्रकार सुनता है, और इस काव्य के अर्थों को कार्य रूप में लाता है, वह कभी भी विद्वेश्या, धूर्त और कुट्टनीसे ठगा नहीं जाता ॥ १०५९ ॥

इति श्रीकाश्मीरमहामण्डलमहीमण्डनराजजयापीठमन्त्रिप्रवर-  
दामोदरगुप्तकविचिरचित्त कुट्टनीमत समाप्तम् ।

— ❀ ❀ —

(ङ) शय्यावस्त्रमरते, सुरगाराहेव पौषे भावे ।

वक्ष्यीव वचसुरते या स्यात्सैव विद्वजनपूज्या ॥

१ यद् द्यूतेन युषिाष्टरस्य विहितं, यद् विष्णुना वा बळे

यत्पुण्ड्रेण घनाधिपस्य कञ्चिना राज्ञो नखस्यापि यत् ।

संभूयापि च यस्मुरासुरबलैरुत्सृज्य पाथोनिधे

वेश्या पश्यत स्त्रीस्यैव कुशने तत्तद्गृहे कामिनाम् ॥

(ञ) तावच्च तूष्णं धनमाहरेत् यावत् स रागेण विनष्टस्तु ।

प्रशान्तरागानलशीतलक्षस्तु स छोहपिण्डी कठिनरवमेति ॥

(ग) याचेत् सर्वं सुरतार्त्तिशाले तमूहबन्धेन निरुद्धकायम् ।

प्रायेण वृष्टाय न रोचते हि विनम्रशास्त्रापरिपक्वमाश्रम् ॥

(घ) निषोत्सार विरतापकार क्षुण्णेशुरात्कर्मतिमं त्यजेत्तम् ।

छन्वाधिवासक्षयकारि शुष्क पुष्प स्थजत्येव हि केशपारा ॥